किशोर ग्रन्थमाला

१८

श्रीमद्वरदराजाचार्यविरचिता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेता

व्याख्याकार:

श्री गिरीशकुमार ठक्कुर:, एम० ए०

वाराणसीस्थ-'श्रीभवानीशङ्करसंस्कृतमहाविद्यालय'-प्राचार्य:

प्रस्तावना-लेखक:

आचार्य कृष्णमोहन शास्त्री, एम० ए०

सम्मानित-प्राचार्य:

तारा-योगतन्त्र महाविद्यालय, नेपाली खपड़ा, वाराणसी

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९९८

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : पंचम, वि० सं० २०५५

मूल्य : रू० ४१—००

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

के० ३७/११८, गोपाल मंदिर लेन,

पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)

फोन : ३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

गोलघर (मैदागिन) के पास

पो० बा० नं० १००८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)

आफिस : ३३३४५८

आवास : ३३४०३२ एवं ३३५०२०

प्रस्तावना

(पूर्वाभास)

संस्कृत-भाषा और व्याकरण

संस्कृत को देवभाषा, देववाणी या अमरभाषा कहते हैं। आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में कहा है—

"संस्कृतं नाम दैवीवाग् अन्वाख्याता महर्षिभिः।"

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा और विचारों का क्षेत्र सदा ही विकासमान रहा है। भाषा और विचारों के तारतम्य के इतिहास को बाँधने वाली विद्या व्याकरण है। व्याकरण एक बहुत बड़ा शब्दशास्त्र है, जिसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है और वह अपने आप में सर्वांगपूर्ण है।

विद्वानों ने 'संस्कृत' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकर से की है—

(सम् + कृ + क्त) सम् पूर्वक 'कृ' धातु से क्त-प्रत्यय करने पर "संपरिभ्यां करोतौ भूषणे" पाणिनि सूत्र से भूषण एवं अलङ्करण अर्थ में सुट् का आगम एवं स्वादिकार्य करने पर 'संस्कृतम्' रूप बनता है। जिसका दूसरा पर्यायवाची शब्द परिष्कृत, परिमार्जित एवं अलङ्कृत माना जाता है।

'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरणदृष्टि से इसप्रकार है—भाषन्ते = मनोभावान् प्रकटयन्ति जनाः, जन्तवः, पशवो, बालाः, विद्वांसश्च यया सा भाषा। भाषि व्यक्तायां वाचि (भ्वा. आ. सेट्) धातु से 'गुरोश्च हलः' पाणिनिसूत्र से 'अ' प्रत्यय और 'टाप्' प्रत्यय करने पर भाषा शब्द निष्पन्न होता है।

'संस्कृता या भाषा सा संस्कृतभाषा' इस व्युत्पत्ति से संस्कृतभाषा कही जाती है।

संस्कृत भाषा से प्राकृतभाषा हुई, या प्राकृतभाषा से संस्कृतभाषा हुई ? इन दोनों पक्षों में पाश्चात्य विद्वानों के मत से—प्रकृत्या स्वभावेन

जायमाना भाषा प्राकृतभाषा=जनसाधारणीभाषा, संस्कारसम्पन्ना भाषा संस्कृतभाषा। भारतीय आचार्यों ने तो इस प्रकार कहा है—

संस्कृतभाषापरिज्ञानं पाणिन्यादिविवेकतः।
प्राकृतभाषाविधिज्ञानं वररुच्यादिप्रयत्नतः॥

भरतनाटयशास्त्र में तो ऐसा है—

एतदेव विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृत पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम्॥

—अ० १७ श्लो० १७

हैमव्याकरणकार ने कहा है—

प्रकृतिः संस्कृतम्, तत्र भवं तत आगतं वा संस्कृतम्।

गीतगोविन्द की 'बालमनोरमा' टीका में—

संस्कृतात् प्राकृतम् इष्टं ततोऽपभ्रंशभाषणम्।

प्राकृतमञ्जरीकारने कहा है—

प्रकृतिः संस्कृतम्, ततः प्राकृतम्।
प्रसीदन्तु च वाचस्ता यासां माधुर्यमुच्छ्रितम्।
प्राकृतच्छद्मना चक्रे कात्यायनमहाकविः॥
व्याकर्तुं प्राकृतत्वेन गिरः परिणतिं गताः।
कोऽन्यः शक्तो भवेत्तस्मात् कवेः कात्यायनादृते॥

सर्वप्रथम भाषा अर्थ में 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग—

भाषा अर्थ में संस्कृत शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड में उपलब्ध होता है। वहाँ हनुमान् जी ने जब यह विचार किया कि माता सीता जी से किस भाषा में बातचीत की जाय? तब इसका विचार करते हुए हनुमान् जी ने कहा है—

यदि वाचं प्रदास्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

यदि द्विजाति (—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के समान मैं संस्कृतवाणी बोलूंगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायेगी। द्विजाति लोग उस समय

वेदोक्तसंस्कार से संस्कृत हुआ करते थे, अतः उनकी वाणी भी संस्कृत कहलाती थी। तब से आज तक इस भाषा का संस्कृत नाम से प्रयोग होता चला आ रहा है। रामायण शुद्ध लौकिक संस्कृतभाषा में रचित महाकाव्य है।

लोक-भाषा-संस्कृत

जैसे यूरोप इंगलैंड में अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों के अतिरिक्त लोग व्यावहारिक रूप में अंग्रेजी में बोलचाल करने में अक्षम नहीं होते है, उसी प्रकार रामायण काल में साधारण जनता को संस्कृत का व्यावहारिक ज्ञान अवश्य रखता था।

पाणिनिपूर्व यास्क ने 'भाषायामन्वध्यायञ्च' (नि० १।४); पाणिनि ने भाषायां सदवसस्रुवः (अ० ३।२।१०८।) आदि अनेक स्थलों में लोकव्यवहार में आनेवाली बोली का नाम केवल भाषा कहा है।

'ब्रह्महत्या' शब्द की व्युत्पत्ति करते समय सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित ने स्त्रीलिंग की अनुपपत्ति को देखकर स्त्रीत्व प्रयोग के लिए लिखा है कि—'स्त्रीत्वं लोकात्'। इससे भी स्पष्ट है कि पहले से लोक-भाषा के रूप में संस्कृत-भाषा का प्रचलन व्यवहार रूप में अवश्य था। राजा भोज के समय जोलाहे की कहानी भी प्रसिद्ध ही है। संस्कृत के लिए चन्द्रगुप्त के समय को स्वर्णयुग कहा जाता है।

संस्कृत-भाषा के दो रूप

हमारे सामने संस्कृत भाषा के दो रूप उपस्थित हैं। १ वैदिक २. लौकिक। अर्थात् वेदभाषा तथा लोकभाषा। वैदिकभाषा में संहिता तथा ब्राह्मणों का आविर्भाव हुआ (रचना नहीं हुई)। कहा भी है—

यस्य निःश्वसितं वेदाः यो वेदेभ्योऽखिलं महत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

लौकिक संस्कृत भाषा का प्रारम्भिक प्रयोग वेद के अन्तिम भाग उपनिषद् से ही पाते हैं। बाद में जैसा कहा जा चुका है आदिकाव्य के रूप में महर्षि वाल्मीकि का वाल्मीकीय रामायण है। उक्त दोनों भाषाओं के शब्दरूपों में पर्याप्त अन्तर मिलते हैं। जिसे यहाँ लिखना आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

पाणिनि और संस्कृत भाषा

संस्कृत भाषा को स्थायित्व प्रदान करने का कार्य जो पाणिनि ने किया है, वह अलौकिक तथा अद्भुत है। पाणिनि ने अपने युग तक उपलब्ध साहित्य का विधिवत् परीक्षण करने के बाद अपने व्याकरण ग्रन्थ का प्रणयन किया था। आधुनिक भाषा-विज्ञान-वेत्तागण भाषा-विज्ञान के मूलस्रोत के रूप में पाणिनिकृत अष्टाध्यायी को सहर्ष स्वीकार करते हैं। पाणिनि संस्कृत-भाषा-शब्दों के नियमन करने वाले आचार्य हैं। परन्तु यह देववाणी (संस्कृतभाषा) पाणिनि के व्याकरण से कहीं अधिक विशद, विस्तृत तथा व्यापक है। इसी-लिए तो महाभारत के टीकाकार (१२ वीं शती) देवबोध ने लिखा है—

यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोस्पदे ॥

पाणिनि ने जिस संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा, वह लोकभाषा थी जनता की व्यवहार्य भाषा। सैकड़ों ऐसे सूत्र हैं जिनका उपयोग व्यवहारगम्य शब्दों की सिद्धि के निमित्त ही होता है, किसी शास्त्रीय शब्दों के लिए नहीं।

दूराद्धूते च, है हे प्रयोगे है हयोः, प्रत्यभिवादे शूद्रे, नादिन्याक्रोशे पुत्रे (वाहतजग्धयोः), तस्य वापः, गोपुच्छाट्ठक्, तेन रक्तं रागात्, लाक्षारोचनाट्ठक्, इत्यादि।

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में उस समय की लोकभाषा में प्रचलित संस्कृत मुहावरों का भी प्रयोग किया है।

शय्योत्थायं धावति ३।४।४२। स्कन्धाय कर्म पयः पिबति ३।४।२८।

महावीर तथा गौतम बुद्ध के समय में उत्तर भारत में संस्कृत से इतर भाषाओं का प्रयोग (महावीर के समय में अर्ध मागधी का तथा बुद्ध के समय में मागधी या पाली का) होने लगे थे। पाणिनि के समय में इन लोकभाषाओं का उदय नहीं हुआ था। ऐसी दशा में पाणिनि का समय इन दोनों से प्राचीनतर ही है ऐसा अनेक विद्वानों का मत है—

पाणिनीयं महाशास्त्रं पदसाधुत्वलक्षणम्।
सर्वोपकारकं ग्राह्यं कृत्स्नं त्याज्यं न किञ्चन ॥

अर्थात् पाणिनीयशास्त्र को अक्षरशः पढ़े— अंशमात्र भी न छोड़े।

कात्यायन

कात्यायन (पाणिनि के सतीर्थ्य) ने वार्त्तिकग्रन्थ लिखकर लौकिक संस्कृत भाषा को भी विकसित किया है। वार्त्तिककार के नाम से इनकी प्रसिद्धि है।

पतञ्जलि (ई० पू० १५०)

पतञ्जलि ने लोकभाषा में प्रयोग हेतु 'कृ' धातु का प्रयोग 'पादौ कुरु, पृष्ठं कुरु' रूप में किया है। इसे बनारसी भाषा में लोग कहते हैं—'गोड़ो धयली, मूड़ो कयली, तबहू काहू ना भइल (पैर भी पकड़ा, शिर भी दबाया, और सेवा भी की परन्तु कार्य नहीं हुआ)।

शब्दसाधुत्व के विषय में वैयाकरण तथा सूत का रोचक वर्तालाप महाभाष्य में इस प्रकार है—

१ वैयाकरण	—	इस रथ का प्रणेता कौन है ?
२ सूत	—	आयुष्मन् ! मैं इस रथ का प्राजिता चलाने वाला हूँ।
३ वैयाकरण	—	प्राजिता तो अप शब्द है।
४ सूत	—	देवानां प्रिय ! (बलिरूपपशु) आप प्राप्तिज्ञ हैं इष्टिज्ञ नहीं। यह प्रयोग इष्ट है, यही प्रयोग अभिलषित है।
५ वैयाकरण	—	अहो ! यह दुष्ट सूत ! (दुरूत) हमें बाधा पहुँचा रहा है।
६ सूत	—	आपका 'दुरूत' प्रयोग ठीक नहीं है।

व्याकरणशास्त्र के आदिम स्रष्टा, वक्ता और व्याख्याता

ऋक् तन्त्र १।४ में लिखा है कि इस व्याकरणशास्त्र के ज्ञान को ब्रह्मा ने देवगुरु बृहस्पति से कहा, और वही ज्ञान-परम्परा क्रमशः बृहस्पति से इन्द्र, इन्द्र से भरद्वाज, भरद्वाज से ऋषियों महर्षियों एवं ब्राह्मणों के पास आयी।

महाभाष्यकार ने लिखा है—'बृहस्पतिश्च वक्ता, इन्द्रश्च अध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रम् अध्ययनकालः, शब्दपारायणं प्रोवाच, तथापि नान्तं जगाम'।

दिव्य वर्षसहस्रपर्यन्त शब्दों का पारायण कर इन्द्र को बृहस्पति ने पढ़ाया, तथापि शब्द का अन्त न हो सका।

निरुक्त के वृत्तिकार दुर्गाचार्य ने आठ शाब्दिक आचार्यों का नामोल्लेख किया है—

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥

इनके अतिरिक्त भी सरस्वतीकण्ठाभरणादि ग्रन्थों में व्याकरण शास्त्रकारों के नाम मिलते हैं।

व्याकरणशास्त्र की इस सुदीर्घ-परम्परा के ऐतिहासिक केन्द्रबिन्दु तीन ही आचार्य मुख्यतम इस समय माने जाते हैं—१ पाणिनि, २ कात्यायन और ३ पतञ्जलि।

पाणिनि ने व्याकरण का सारा अस्तित्व और व्याकरण की सारी थाती (वैदिक तथा लौकिक दोनों रूपों में) अष्टाध्यायी में समेट करके एकाकार के रूप में परिणत कर दी है। पाणिनि ने पूर्वाचार्यों के सभी व्याकरण सम्प्रदायों का मन्थन कर उन्हें वैज्ञानिक ढंग से अष्टाध्यायी में बैठाया और पाणिनि के बाद व्याकरण की जितनी भी शाखाएँ प्रचलित हुईं उन सबका मूल उद्गम पाणिनीय व्याकरण ही है।

पाणिनि भूगोल, इतिहास, मुद्राशास्त्र आदि के मर्मज्ञ थे। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने 'पाणिनि के सूत्रों में एक-एक अक्षर भी कहीं निरर्थक नहीं माना है', ऐसा स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा है—

"प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचावकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुं किं पुनरियता सूत्रेणेति (१।१।१ महाभाष्य)।

'इको यणचि' सूत्र के भाष्य में भी स्पष्टरूप से कहा गया है—

वित्ये च यः शाकलभाक् समासतत्तदर्थमेतद् भगवाँश्चकार।
सामर्थ्ययोगान्नहि किञ्चिदत्र पश्यामि शास्त्रेषु यदनर्थकं स्यात्॥ इति

पाणिनि के समय में ही पाणिनि की महत्ता को सुनकर कात्यायन ने आश्चर्यचकित होकर पाणिनि की पराजय के लिए श्रीभगवान् आशुतोष शंकर की आराधना की। थोड़े ही समय में शंकर के प्रसाद से कात्यायन ने पाणिनि के

सूत्रों में उक्तार्थपरिपूरक दुरुक्तपुनरुक्ताद्यर्थनिरासक वार्तिकनामक ग्रन्थ की रचना की। उस अपमान से दुखी होकर पाणिनि ने भगवान् शंकर की पुनः आराधना की। भगवान् नारायण श्री विष्णु की अनुमति से महर्षि पतञ्जलि ने सहस्रमुख होकर महाभाष्य की रचना की। जैसा कि कहा है—

यद् विस्मृतमदृष्टं वा सूत्रकारेण तत्स्फुटम्।
वाक्यकारो ब्रवीत्येव तेनादृष्टं च भाष्यकृत्॥ इति

पाणिनि व्याकरण

आजकल उपर्युक्त विशाल संस्कृत-व्याकरणों में पाणिनि-व्याकरण ही एक मात्र लौकिक-वैदिक शब्दों के साधुत्व के लिए आधार है। 'उणादयो बहुलम्' एक मात्र सूत्र के संकेत से भट्टोजिदीक्षित ने शाकटायनप्रणीत उणादिसूत्रों का सोदाहरण प्रयोग सिद्ध बताया है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में 'लङः शाकटायनस्य' सूत्र की रचना कर अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों के स्मरण में शाकटायन का भी स्मरण किया है।

आगम में कहा गया है कि—

"ब्राह्मणेन निष्कारणेन षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।

आर्यजाति की संस्कृति धर्ममूलक है। समस्त वेद धर्म का मूल है। वेदार्थ को जानने के लिए व्याकरणादि षडङ्गों का अध्ययन परमावश्यक माना गया है। षडङ्गों में वेद-मुख होने के कारण व्याकरण की प्रधानता मानी गयी है। व्याकरणादि षडङ्गों का विवरण इस प्रकार है—

"शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी
श्रोत्रयुक्तं निरुक्तञ्च कल्पः करौ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका
पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः॥

पाणिनिशिक्षा में भी इसी रूप से कहा गया है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य हस्तौ कल्पः प्रचक्षते॥ इति॥

व्याकरण पढ़ने की आवश्यकता अन्यत्र भी बतायी गयी है—

विना व्याकरणेनान्धः वधिरः कोषवर्जितः ।
शिक्षां विना भवेत् पङ्गुः मूकस्तर्कविवर्जितः ।।

सर्वप्रथम व्याकरण पढ़ने की आवश्यकता को भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि में स्पष्ट शब्द से कहा है—

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यक्
ब्राह्म्याः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम् ।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ।।

अन्य आचार्यों ने भी कहा है—

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ।।

महर्षि पाणिनि

लौकिक संस्कृत के पहले वैयाकरण, महर्षि पाणिनि कहे जाते हैं । यद्यपि पाणिनि ने अपने से पहले दो सूत्रकारों पाराशर्य तथा शिलालि के नाम एवं उनके द्वारा विरचित भिक्षुसूत्र एवं नटसूत्र का उल्लेख किया है । ("पाराशर्य-शिलालिभ्यो भिक्षुनटसूत्रयोः"—अष्टाध्यायी) ।

अष्टाध्यायी पाणिनि की प्रमुख कृति है । कहा जाता है कि पाणिनि ने शिवोपासना से अ इ उ ण् आदि १४ माहेश्वरसूत्रों (प्रत्याहारसूत्रों) की उपलब्धि कर अपने बृहद् ग्रन्थ का निर्माण किया । 'रुद्रडमरूद्भवसूत्र-विवरणम्' नामक पाण्डुलिपि जो उपलब्ध है, उससे तथा नन्दिकेश्वरकाशिका से इन १४ सूत्रों से संगीतशास्त्र का उद्गम होने का पता चलता है । महाभाष्यकार ने तो इन १४ सूत्रों को वेदराशि (चारों-वेदों का सार) माना है ।

पुरुषोत्तमदेव के 'त्रिकाण्डशेषकोष' में पाणिनि के छः नाम पर्यायवाची शब्द में दिये गये हैं—१ पाणिनि, २ पाणिन ३ दाक्षीपुत्र ४ शालङ्कि, ५ शालातुरीय और ६ आहिक ।

हरदत्त ने 'पणोऽस्यास्तीति पणी, तस्यापत्यं पाणिनः, पणिनस्यापत्यं पाणिनो युवा पाणिनिः' कहा है इस निरुक्ति के अनुसार पाणिनि के पिता का नाम पाणिन ठहरता है। पतञ्जलि ने 'दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः' कहा, जिससे पता चलता है कि उनकी माता दाक्षी दक्षकुल से उत्पन्न थी।

संग्रहकार व्याडि का नाम भी दाक्षायण नाम से कहा गया है। जिससे प्रतीत होता है कि वे पाणिनि के मामा थे। छन्दः-शास्त्र के प्रणेता पिंगल पाणिनि के भाई थे।

पाणिनि का समय युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार विक्रम संवत् से लगभग २८०० वर्ष प्राचीन सिद्ध होता है। अष्टाध्यायी में 'श्रमण' और 'यवन' शब्द को देखकर कुछ विद्वानों ने पाणिनि को बुद्ध और यवन से परवर्ती माना है।

गणतन्त्रमहोदधि में—'शलातुरो नाम ग्रामः सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीयः, तत्र भवान् पाणिनिः' इस व्युत्पत्ति से शालातुर नामक ग्राम पाणिनि का जन्मस्थान लिखा है, जो इस समय पाकिस्तान में लाहौर नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु आधुनिक खोजों से यह निष्कर्ष निकलता है कि शालातुर पाणिनि का जन्मस्थान न होकर उनके पूर्वजों का निवास स्थान था। पाणिनि का जन्म वाहीक देश अथवा उसके समीप हुआ था। अष्टाध्यायी ४।२।११७।

महर्षि कात्यायन (वररुचि)

पुरुषोत्तमदेव के 'त्रिकाण्डशेष' कोश में कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु, मेधाजित् और वररुचि ये पययांवाची नाम दिये गये हैं। महाभाष्यकार ने मेधाजित् नाम को छोड़कर ४ नाम दिये हैं।

कात्यायन के पितामह का नाम याज्ञयवल्क्य, पिता का नाम कात्यायन और उनका पूरानाम वररुचि कात्यायन था। यही वररुचि कात्यायन अष्टाध्यायी के वार्तिककार हैं। कात्यायन मैथिल या महाराष्ट्री ब्रा०यह अन्वेषणीय है। इनका स्थितकाल मीमांसकजी ने २७०० वर्ष विक्रमपूर्व पाणिनि के समकालिक ही माना है। इनके अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

शेषावतार भगवान् पतञ्जलि

पतञ्जलि से व्याकरणशास्त्र में नये युग का निर्माण हुआ है। पतञ्जलि व्याकरण के क्षेत्र में असामान्य प्रतिभा की छाप आगे की पीढ़ियों के लिए छोड़ गये हैं। पाणिनि के विवेक, व्यक्तित्व और विचारों ने पतञ्जलि को इतना ऊँचा उठाया कि उससे पाणिनि अधिक चमक उठे हैं।

पतञ्जलि को गोनर्दीय, गोणिका-पुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिभृत, चूर्णिकाकार आदि अनेक नामों से कोशकारों ने कहा है।

योगसूत्र-व्यासभाष्य, पर नागेश की टीका, न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका, युक्तिदीपिका टीका, चक्रपाणिकृत चरक टीका का प्रारम्भ, वाक्यपदीय टीका तथा मैक्समूलरकृत 'हिस्ट्री आफ एन्सियेट संस्कृत लिटरेचर' के देखने से पता चलता है कि पतञ्जलि केवल वैयाकरण ही नहीं थे, अपितु उनका सांख्य, योग, न्याय, आयुर्वेद, कोश, रसायन और यहाँ तक कि काव्य आदि विषयों पर भी अधिकार था।

पतञ्जलि का महाभाष्य न केवल व्याकरणशास्त्र का ही प्रामाणिक ग्रंथ है, अपितु समस्त संस्कृत वाङ्मय का आकर ग्रन्थ है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने लिखा है—

कृतेऽथ पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना।
सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने ॥

मन, वाणी और शरीर की शुद्धि के लिए पतञ्जलि ने योगसूत्र, व्याकरण महाभाष्य और चरकसंहिता की रचना की। कैयट ने महाभाष्य की टीका में नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण में उक्त बातों को स्पष्ट किया है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥

युधिष्ठिर मीमांसक जी ने अनेक बाह्य और आभ्यन्तर प्रमाणों को उद्धृत कर यह सिद्ध किया हैं कि पतञ्जलि विक्रमसंवत् १२०० वर्ष पूर्व हुए थे। किन्तु अधिक विद्वान् इसे स्वीकार नहीं करते। वे लोग 'पुष्यमित्रं याजयति' आदि प्रयोग से पुष्यमित्र के समय पतञ्जलि को मानकर ही इनका समय ईसवी सन् का दूसरा शतक मानते हैं। किन्तु यह विचारणीय है।

"'चिदम्बरम्' प्रदेश में पतञ्जलि का उस समय अवतरण हुआ जब उनकी माता भगवान् सूर्य को आर्घ्य दे रही थीं, उनके अंजलि में शेष अवतीर्ण हुए। पतन्=गिरते हुए अञ्जलि में आने से इनका नाम पतञ्जलि पड़ गया।

यह परंपरया जनश्रुति है कि पतञ्जलि ने अपने प्रवचन के समय शिष्यों से बताया था कि प्रवचन के समय जवनिका को हटाकर मुझे कोई देखे नहीं; ऐसा न करने पर उसका कल्याण नहीं होगा। किन्तु विधिविपरीत ही कार्य हुआ। कुतूहलवश एक शिष्य ने जवनिका हटाकर अनेकमुख से बोल रहे शेषावतार को देख लिया। फलस्वरूप नागों की विषज्वाला से वहाँ सभी भस्म हो गये। संयोगवश एक शिष्य उस समय बाहर चला गया था। वह लौटकर अपने गुरुचरणों पर गिरा। पतञ्जलि ने उसे कहा कि तुम निकटस्थ वटवृक्ष पर पिशाचयोनि में आवास करो। 'पचेर्निष्ठायां किं रूपम्' तुम्हारे द्वारा पूछे जाने पर जो 'पक्वम्' उत्तर दे देगा, उसे तुम भाष्य पढ़ा देना। आगे चलकर ऐसा ही हुआ। यह भी आगे कहा जाता है कि महाभाष्य में 'अजाभक्षितमेतेत्' ऐसा यत्र-तत्र पंक्ति मिलती है, इससे यह सिद्ध होता है कि उक्त ब्रह्मराक्षस द्वारा बताने पर लिख रहे शिष्य के कुछ भाष्य-पत्र को बकरियों ने खा लिया होगा, इसीलिए उक्त पंक्ति की जहाँ-तहाँ महाभाष्य में उपलब्धि होती है।

त्रिमुनिव्याकरणम्

इस प्रकार पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ये तीन ही व्याकरणशास्त्र के प्रामाणिक आचार्य माने जाते हैं। भट्टोजिदीक्षित ने अपनी सिद्धान्तकौमुदी के मङ्गलाचरण में उन तीनों मुनियों को नमस्कार कर उनके निर्देशानुसार ही मैं सिद्धान्तकौमुदी की रचना करता हूँ, ऐसा स्पष्ट शब्दों में कहा है—

मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्तीः परिभाव्य च।
वैयाकरणसिद्धान्तंकौमुदीयं विरच्यते ॥

इस सिद्धान्तकौमुदी की टीका 'प्रौढमनोरमा' नाम से प्रसिद्ध है। मनोरमा की ही टीका नागेशभट्टकृत 'शब्देन्दुशेखर' नामक ग्रन्थ है। जिसको पढ़कर ही प्रौढ नवीन वैयाकरण विद्वान् माने जाते हैं।

संस्कृत विद्यार्थियों के प्रारम्भिक व्याकरण पढ़ने हेतु ख्रिष्ट १५ वीं शताब्दी में रामचन्द्र नामक विद्वान् ने पाणिनि सूत्रों को वैज्ञानिक क्रम से क्रमबद्ध कर 'प्रक्रिया कौमुदी' नामक ग्रंथ लिखा। इसी परम्परा से नारायण भट्ट ने १६ वीं शताब्दी में 'प्रक्रियासर्वस्व' और अप्पय दीक्षित (१६ वीं श०) ने 'पाणिनिवादनक्षत्रमाला' नामक ग्रन्थ लिखा।

आचार्य भटोजिदीक्षित ने रामचन्द्रकृत प्रक्रियाकौमुदी और बौद्ध-ग्रन्थ 'रूपावतार' के अनुकरण पर सिद्धान्तकौमुदी लिखी। इन सबके पहले अष्टाध्यायी का ही अध्ययन काशिका के आधार पर लोग किया करते थे। सूत्र-क्रमानुसार अध्ययन में वृत्ति रटने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। सिद्धांत-कौमुदी में सूत्र-वृत्ति दोनों के अभ्यास करने में परिश्रम और समय का अधिक व्यय होता है। उसमें अष्टाध्यायी पढ़े बिना 'पूर्वत्रासिद्धम्' 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' आदि सूत्रों के पूर्वापर्य विचार करने में सिद्धान्तकौमुदी पढ़ने वाले को कठिनता अधिक पड़ती है। भट्टोजिदीक्षित ने 'शब्दकौस्तुभ' नामक ग्रन्थ का महाभाष्यकार की तरह अष्टाध्यायी क्रम से विशदविवेचन किया है। इस मार्ग के अपनाने पर व्याकरणाध्ययन में समय की बचत और अर्थावबोध सुगम अवश्य हो सकेगा।

सिद्धान्तकौमुदी व्याकरणशास्त्र-पठन-पाठन में इसलिए अधिक प्रसिद्ध हुई कि इसमें लौकिक और वैदिक दोनों शब्दों का साधुत्व किया गया है। कृदन्तप्रकरण के अन्त में दीक्षितजी ने स्पष्ट लिखा है कि—

'इत्थं लौकिकशब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम्।
विस्तरस्तु यथाशास्त्रं दर्शितः शब्दकौस्तुभे॥'

वैदिक शब्दों के लिए स्वरवैदिकप्रकरण पृथक् से लिखा है। लौकिक वैदिक शब्दों की सिद्धि के लिए सिद्धान्तकौमुदी को छोड़कर अन्य कोई भी ग्रंथव्याकरणशास्त्र में नहीं है इसीलिए इसका सभी जगह समानरूप से आदर हुआ है।

वरदाज की लघुसिद्धान्तकौमुदी

भट्टोजिदीक्षित के शिष्य वरदराज (१७ वीं श०) ने सिद्धान्तकौमुदी के अतिसंक्षिप्त रूप में पहले लघुसिद्धान्तकौमुदी लिखी। इसे देखकर

गुरु ने इसके प्रचार, प्रसार एवं लोकप्रिय होने का आशीर्वाद दिया। बाद में जब वरदराज ने 'मध्यसिद्धान्त कौमुदी' रचकर गुरु को दिखाया, तब गुरुजी ने कहा कि तुम्हारी इस मध्यसिद्धान्तकौमुदी को पढ़ लेने पर सिद्धान्त-कौमुदी पढ़ने में कोई अधिक समय नहीं दे सकेगा। लघुसिद्धान्तकौमुदी की अपेक्षया तुम्हारी मध्यसिद्धान्तकौमुदी लोकप्रिय नहीं होगी। स्थिति भी ऐसी ही है कि लोग पहले लघुसिद्धान्तकौमुदी पढ़ लेने के बाद उसके आगे सिद्धान्त-कौमुदी ही पढ़ते हैं।

लघुसिद्धान्तकौमुदी की विशेषता

यह ध्रुव सत्य है कि व्याकरण पढ़े बिना संस्कृत भाषा में या शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रौढ़ता नहीं आ सकती है। संस्कृत-जगत् में केवल लघुसिद्धान्त-कौमुदी ही ग्रन्थ विधिवत् अध्ययन कर साधारण संस्कृत के कार्य करने कराने में बहुत प्रवीण मालूम होते हैं। ग्रंथकार ने ग्रंथ के अन्त में लिखा है—

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥

प्रस्तुत संस्करण

वाराणसीस्थ श्रीभवानीशंकर-संस्कृत-महाविद्यालय के प्रधानाचार्य श्री-गिरीशकुमार ठाकुर एम० ए० द्वारा लघुसिद्धान्तकौमुदी की प्रस्तुत संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद देखकर यह सुनिश्चित है कि इससे प्रारंभिक व्याकरण पढ़ाने वालों एवं पढ़ने वालों के लिए यह संस्करण बहुत ही उपकारी सिद्ध होगा। मैं इसके प्रचार-प्रसार हेतु शुभकामनायें व्यक्त करता हूँ—

गंगावशहरा
वि० सं० २०४० — कृष्णमोहन शास्त्री

प्रकरण-सूची

॥ श्रीः ॥

लघुसिद्धान्तकौमुदी

'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेता

अथ संज्ञाप्रकरणम्

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

अइउण् १, ऋऌक् २, एओङ् ३, ऐऔच् ४, हयवरट् ५, लण् ६,

नत्वेति--अहं = ग्रन्थकारः (वरदराजभट्टाचार्यः), लघुसिद्धान्तकौमुदीम्, करोमि = उत्पादयामि (उत्पत्त्यनुकूलव्यापारो हि कृधात्वर्थः) (किं कृत्वा ?) सरस्वतीं = भारतीं, नत्वा=नमस्कृत्य (करद्वयसंयोगानुकूलव्यापारो नमस्कारः । सरस्वतीं कथं भूताम् ? देवीं = दीव्यति प्रलये सर्वान् स्वास्यां निवेश्य क्रीडतीति देवी, ताम्–प्रकाशपूर्णाम् (पुनः कथं भूताम् ?) शुद्धां = शुद्धस्वरूपाम्–दोषरहिताम्, (पुनः कथं भूताम् ?) गुण्यां = शब्दव्युत्पत्तिज्ञानादि–प्रशस्त-गुणैर्युक्ताम्, कस्मै प्रयोजनाय ? पाणिनीयप्रवेशाय=पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्= व्याकरणम्, तस्मिन् बालानां बुद्धेः समावेशाय इत्यर्थः ।

अ इ उ ण्--संहिताऽविवक्षया अत्र सन्धिकार्यं कारप्रत्ययोऽपि न 'वर्णात् कारः' इत्यत्र 'बहुलम्' इत्यनुवर्तनात् । ह य व र ट्--अट् अश् हश् इण् प्रत्याहारेषु हकारग्रहणार्थमत्र हकारोपदेशः । ल ण्--ननु 'अ इ उ ण्' इत्यत्र

नत्वा--मैं (ग्रन्थकार) प्रशस्त गुणों से युक्त, अत्यन्त प्रकाशवती, वीणा-पुस्तकों को धारण की हुई सरस्वती देवी को प्रणाम कर पाणिनि-व्याकरण में प्रवेश के लिये इस 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' नामक पुस्तक की रचना करता हूँ ।

ञमङणनम् ७, झभञ् ८, घढधष् ९, जबगडदश् १०, खफछठथचटतव् ११, कपय्, १२, शषसर् १३, हल् १४।

इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादिसंज्ञार्थानि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः, लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः। **हलन्त्यम्** १।७।३। उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र। **अदर्शनं लोपः** १।१।६०। प्रसक्तस्यादर्शनं लोप-

---

णकारानुबन्धेनैव 'अण्' आदि प्रत्याहारसिद्धौ पुनरत्र णकारानुबन्धो व्यर्थः इति चेन्न 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्' इति परिभाषाज्ञापकत्वेन तस्य सार्थक्यात्।

हल्—नच 'ह य व र ट्' इत्यत्र हकारोपदेशेनैव सिद्धौ पुनरत्र हकारोपदेशः व्यर्थः इति वाच्यम्, 'वल् रल् झल् अल्' प्रत्याहारेषु हकारग्रहणार्थं तस्यावश्यकत्वात्। **इति माहेश्वराणि**—महेश्वरात् आगतानि माहेश्वराणि= सूत्राणि। तदुक्तं नन्दिकेश्वरकाशिकायां—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पञ्च वारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

एषाम्—एषामुदाहृतचतुर्दशसूत्राणाम् अन्त्याः णकारादिवर्णाः इत्संज्ञकाः इत्यर्थः। **हकारादिषु**—हकारादीनां मुखसुखोच्चारणार्थं पुनः पुनः अकारपाठः—'नाऽचं विना व्यञ्जनस्योच्चारणम्' इति भाष्योक्तेः।

लण्मध्ये—'ल ण्' सूत्रघटकोऽकारः इत्संज्ञकः—'र' प्रत्याहारसिद्ध्यर्थमिति भावः। तेन 'उरण् रपरः' इति सूत्रे 'र' प्रत्याहारेण र-लयोर्ग्रहण भवति।

उपदेश आद्योच्चारणम्—आद्यानां = शिव-पाणिनिप्रभृतीनाम्, उच्चारणम् उपदेशः। तदुक्तम्—

धातु-सूत्र-गणोणादि-वाक्यलिङ्गानुशासनम्।
आगमः प्रत्ययाऽऽदेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥

हलन्त्यम्—उपदेशावस्था में अन्त्य हल् की इत्संज्ञा होती है।

अदर्शनं—प्राप्तोच्चारण का जो अदर्शन वह लोप कहा जाता है।

संज्ञं स्यात् । **तस्य लोपः** १।३।९। तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः । **आदिरन्त्येन सहेता** १।१।७१। अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथाऽणिति अइउवर्णानां संज्ञा । एवमक्अच्हल्अलित्यादयः । **ऊकालोज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः** १।२।२७। उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः । वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमात् ह्रस्वनीर्धप्लुतसंज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा । **उच्चैरुदात्तः** १।२।२९। ताल्वादिषु सभागेषु

प्रसक्तस्य—शास्त्रतः अर्थतश्च, प्रसक्तस्य = प्राप्तोच्चारणस्य ।

णादयोऽणाद्यर्थाः—'अण्' आदिर्येषां ते अणादयः, ते अर्थाः प्रयोजनं येषां ते अणाद्यर्थाः । णादयः = 'ण् क् ङ् च्' प्रभृतयः इत्संज्ञकाः वर्णाः अणादि प्रत्याहारप्रयोजकाः इति ।

आदिरन्त्येन सहेता—अन्त्येन इता सह उच्चार्यमाणः आदिः ('अण् अच् इत्यादिरूपः) मध्यगानां, स्वस्य (स्वशब्दस्य प्रधानवाचकतया अकारस्याऽपि = संज्ञकः बोधकः इत्यर्थः ।

ऊकालः—एक–द्वि–त्रि–मात्रिक उकाराणाम् उच्चारणकालसदृश-उच्चारणकालविशिष्टोऽच्, क्रमशः ह्रस्व–दीर्घ–प्लुतसंज्ञको भवतीत्यर्थः ।

ह्रस्वादीनां लक्षणम्—

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चाऽर्धमात्रकम् ॥

उदात्तादिभेदेन—उदात्तत्वेन, अनुदात्तत्वेन स्वरितत्वेन च धर्मविशेषेण

तस्य—जिसकी इत्संज्ञा होती है, उसका लोप हो-जाता है ।

आदि—अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण के साथ उच्चारित आदि वर्ण अपने तथा मध्यवर्ती वर्णों का बोधक है ।

ऊकालो—'उ, ऊ, ऊ३, इन वर्णों के उच्चारण के समान उच्चारण काल हो जिस अच् वर्ण का वह अच् वर्ण यथाक्रम से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतसंज्ञक होता है ।

उच्चैः—तालु आदि स्थानों के अधोभाग से उच्चारित जो 'अच्' वह उदात्त कहलाता है ।

स्थानेषूर्ध्वभागनिष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात्। **नीचैरनुदात्तः** १।२।३०। तात्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधोभागनिष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात्। **समाहारः स्वरितः** १।२।३१। उदात्ताऽनुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात्। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा। **मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः** १।१।८। मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। तदित्थम्—अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः। ऌवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्। एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्। **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** १।१।९। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः

त्रिधा = त्रिभिः प्रकारैर्वर्तत इत्यर्थः। उच्चैः—उच्चैःशब्दः अधिकरणशक्तिप्रधानः = ऊर्ध्वभागे वर्तत इत्यर्थः। नीचैः—नीचैःशब्दः अधिकरणशक्तिप्रधानः= अधोभागे वर्तते इत्यर्थः।

स नव विधोऽपि—१–उदात्तह्रस्वः, २–अनुदात्त–ह्रस्वः, ३–स्वरितह्रस्वः, ४–उदात्तदीर्घः, ५–अनुदात्तदीर्घः, ६–स्वरितदीर्घः, ७–उदात्तप्लुतः, ८–अनुदात्तप्लुतः, ९–स्वरितप्लुतः। इति रीत्या ये एकैकोऽच् स नवविधः स्थितः, इति भावः।

तुल्यास्य—आस्ये = मुखे, भवम् आस्यम् = ताल्वादिस्थानम्, प्रकृष्टो यत्नः = प्रयत्नः, आस्यं च प्रयत्नं च आस्यप्रयत्नौ, तुल्यौ आस्यप्रयत्नौ यस्य (वर्णजालस्य) तत् तुल्यास्यप्रयत्नं परस्परं सवर्णसंज्ञकं स्यादित्यर्थः।

नीचैः—तालु आदि स्थानों के अधोभाग से उच्चारित जो शब्द वह अनुदात्त कहलाता है।

समा—उदात्त और अनुदात्त जिस स्वर वर्ण में सम्मिलित हों उसे स्वरित कहते हैं।

मुखनासिका—मुख और नासिका इन दोनों से जिस वर्ण का उच्चारण हो वह अनुनासिक वर्ण कहा जाता है।

तुल्यास्य—जिस वर्ण का तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न एक हो वह परस्पर सवर्णसंज्ञक होता है।

सवर्णसंज्ञं स्यात् । (ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) अकुहविसर्ज-नीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्धा । लृतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । अमङणनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य । यत्नो द्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् । तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानम् । ईषद्विवृतमूष्मणाम् । विवृतं स्वराणाम् । ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव । बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा—विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति । खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च । हशः संवारा नादा घोषाश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमाः यणश्चाल्पप्राणाः । वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः । कादयो मावसानाः स्पर्शाः यणोऽन्तःस्थाः । शल ऊष्माणः । अचः स्वराः । ⁀क ⁀ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः । ⁀प ⁀फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः । अं अः इत्यचः परावनु-

---

ऋटुरषाणां—'ऋ' इत्यष्टादेशभेदाः, टु=टवर्गः । आ च टुश्च रश्चेति विग्रहः । ऋशब्दस्य प्रथमैकवचने 'आ' इति । 'आ अरौ अरः' इति धातृवद् रूपम् ।

लृतु—'लृ' इति द्वादशभेदाः तु=तवर्गः । आ च तुश्चेति विग्रहः । लृशब्दस्याऽपि प्रथमैकवचने 'आ' इति । 'आ अलौ अलः' इति धातृवद् रूपम् ।

अमङ—चकारेणात्र स्व-स्वर्गीयस्थानसमुच्चयः । **एदैतौः**—उभयत्र तपरकरणमसन्देहार्थम् । **जिह्वा**—क⁀ख इति क-खाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशस्येत्यर्थः । **तत्र**—स्पृष्ट, ईषत् स्पष्ट, ईषद् विवृत्, विवृत संवृत—ऐषु मध्ये इत्यर्थः । **स्पर्शानाम्**—कादिमपर्यन्तानाम् । **अन्तस्थानां**—य-र-ल-वाना-मित्यर्थः ।

प्रयोगे—शास्त्रीयप्रक्रियाभिः परिनिष्ठितानां-रामः, कृष्णः, इत्यादिशब्दानां प्रयोगे क्रियमाणे एव ह्रस्वस्याऽवर्णस्य संवृतमित्यर्थः । **प्रक्रिया**—साधनिका-दशायाम् । **बाह्यप्रयत्नः**—वर्णोत्पत्यन्तरजातो यत्नः प्रयत्नः इति ।

ऋलृ—ऋलृ वर्ण की परस्पर सवर्णसंज्ञा होती है ।

स्वारविसर्गौ । **अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः १।१।६९।** प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । अत्रैवाऽण् परेण णकारेण । कु चु टु तु पु एते उदितः । तदेवम् । अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः । एवं ऌकारोऽपि । एचोद्वादशानाम् । अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा । **परः सन्निकर्षः संहिता १।४।१०९।** वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् । **हलोऽनन्तरा संयोगः १।१।७।** अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः । **सुप्तिङन्तं पदम् १।४।१४।** सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् । **इति संज्ञाप्रकरणम् ।**

—: ० :—

अणुदित्—अणमुद्दिश्य सवर्णग्राहकता अनेन विधीयते । 'तुल्यास्य—' सूत्रवदस्य सवर्णग्राहकत्वं तु न, समानाधिकरणपदोपादानाभावात् ।

अत्रैव—अस्मिन्नेव सूत्रे इत्यर्थः । तदुक्तम्—

पूर्वेणैवाण्ग्रहाः सर्वे परेणैवेण्ग्रहा मताः ।
ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येतदेकं परेण तु ॥

संहिता—स्वभावसिद्धाऽर्धमात्राऽतिरिक्तकालव्यवधानशून्यः संयोगः संहितेति । **संयोगः**—स्वरसंज्ञकवर्णैर्व्यवधानशून्याः वर्णाः संयोगसंज्ञकाः ।

सुप्तिङन्तम्—अत्र वक्ष्यमाण 'ङमो ह्रस्वादचि' इति ङमुट् तु न, आर्षत्वात् । प्रमादाद्वेति तत्त्वविदः ।

इति संज्ञाप्रकरणम् ।

—: ० :—

अणुदित्—जिसका विधान न किया गया हो ऐसा अण् (प्रत्याहार) और उदित् (कु, चु, टु, तु, पु) अपने वर्ण के बोधक हों ।

परः—वर्णों की अत्यन्त सन्निधि की संहितासंज्ञा होती है ।

हलो—अच् वर्ण व्यवधान से रहित हल् (व्यंजन) वर्णों की संयोगसंज्ञा होती है । **सुप्ति**—सुबन्त तथा तिङन्त की पदसंज्ञा होती है ।

संज्ञाप्रकरण समाप्त

—: ० :—

अथ अच्सन्धिप्रकरणम्

इको यणचि ६।१।७७। इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य इति स्थिते। **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** १।१।६६। सप्तमी-निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्। **स्थानेऽन्तरतमः** १।१।५० प्रसंगे सति सदृशतम आदेशः स्यात्। सु ध् य् उपास्यः इति जाते। **अनचि च** ८।४।४७। अचः परस्य यरो: द्वे वा स्तो न त्वचि। **झलां जश् झशि** ८।४।५३। स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः। **संयोगान्तस्य लोपः** ८।२।२३। संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्। **अलोऽन्त्यस्य** १।१।५२। षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्यादेशः स्यात्। इति

इको यणचि—इकः स्थाने यण् स्यात्, असमाने अच्वर्णे परे संहितायाम्, इति फलितार्थः। **स्थानेन्तरतमः**—एकस्य स्थानिनः अनेकादेशप्रसङ्गे सति यः स्थानाऽर्थ–गुण–प्रमाणतः स्थानिना सदृशतमः स एव आदेशो भवतीत्यर्थः। स्थानशब्देनानाऽत्र–ताल्वादिस्थानं गृह्यते, गुणशब्देन–प्रयत्नः (यत्नः), प्रमाण-शब्देन–एकद्विमात्रादिप्रमाणम्। दध्यत्र, 'तृज्वत्क्रोष्टुः', वाग्धरिः, 'अदसो-सेर्दादुदोमः' इति क्रमेण उदाहरणानि। **अलोऽन्त्यस्य**—स्थाने विधीयमानः

इको यणचि—'इक्' के स्थाने में 'यण्' आदेश होता है—अच् वर्ण परे, संहिता के विषय में।

तस्मिन्—सप्तम्यन्त पद का उच्चारण कर के विधीयमान जो कार्य वह वर्णान्तर से अव्यवहित पूर्व के स्थान में होता है।

स्थाने—प्रसंग रहने पर सदृशतम आदेश होता है।

अनचि—अच् से पर यर् को विकल्प से द्वित्व होता है परन्तु उस यर् से पर यदि अच् रहे तो द्वित्व नहीं होता।

झलां—झल् के स्थान से जश् आदेश होता है, झश् के परे।

संयो—जिस पद के अन्त में संयुक्त अक्षर हो, उसके अन्त्य अक्षर का लोप होता है।

अलो—षष्ठ्यन्त पद का निर्देश कर के जहाँ आदेश का विधान किया गया हो, वहाँ अन्त्य वर्ण को आदेश होता है।

घलोपे प्राप्ते **(यणः प्रतिषेधो वाच्यः)** सुध्युपास्यः। मद्ध्वरिः। धात्त्रंशः। लाकृतिः। **एचोऽयवायावः ६।१।७८।** एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि। **यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १।३।१०।** समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः। **वान्तो यि प्रत्यये ६।१।७९।** यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्। **(अध्वपरिमाणे च)** गव्यूतिः। **अदेङ् गुणः १।१।२।**

आदेशः षष्ठीनिर्दिष्टस्य यः अन्त्यः अल् तस्य स्यादित्यर्थः।

यणः प्रतिषेधः—यणः संयोगान्तलोपः प्रतिषेधो वक्तव्यः इत्यर्थः।

सुद्ध्य् पास्यः—'सुधी उपास्यः' इति स्थिते 'इको यणचि' इति 'स्थानेन्तरतमः' इति स्थानतः आन्तरतम्यात् ईकारस्य यणि 'अनचि च' इति धस्य द्वित्वे 'सु ध् ध् य् उपास्यः' इति स्थिते 'झलां जश् झशि' इति प्रथमधकारस्य दकारे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति यलोपे 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति निषेधे 'सद्ध्युपास्यः' इति। द्वित्वाऽभावे 'सुध्युपास्यः' इति।

यथासंख्यम्—संख्याशब्देनाऽत्र-प्रथमत्व-द्वितीयत्वादिरूपाः संख्याघटितधर्माः विवक्षिताः, तान् अनतिक्रम्य यथासंख्यम्। ततश्च—'एचोऽयवायावः' इत्यादिषु प्रथमस्य स्थानिनः प्रथमः, द्वितीयस्य द्वितीयः आदेशः—इत्येवं क्रमेण स्थान्यादेशः—तन्निमित्तानां क्रमेण अन्वयः प्रतिपत्तव्यः इत्यर्थः।

गव्यम्—गोर्विकारो गव्यम्। गोशब्दात् 'गोपयसोर्यत्' इति यतिप्रत्यये 'गो यम्' इति स्थिते 'वान्तो यि प्रत्यये' इति ओकरस्य अवादेशे 'गव्यम्' इति।

अध्वपरिमाणे च—मार्गपरिमाणेऽर्थे ओतः स्थाने वान्तादेशो भवति, यूतिशब्दे परे इत्यर्थः।

यणः—संयोगान्त पद के अन्तिम वर्ण यण् का लोप नहीं होता है।

एचो—एच के परे एच् के स्थान में यथाक्रम से—अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होता है। यथा—सम-सम्बन्धी विधि यथासंख्येन होता है।

वान्तो—यकारादि प्रत्यय के परे ओत्-औत् को अव्, आव् आदेश होता है।

अध्व—मार्ग के परिणाम वाच्य हो तो गो शब्द को यूति शब्द के परे अव् आदेश होता है। **अदेङ्**—ह्रस्व अ और ए-ओ की गुणसंज्ञा होती है।

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्। **तपरस्तत्कालस्य १।१।७०।** तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणो वर्णः समकालस्यैव संज्ञा स्यात्। **आद्गुणः ६।१।६७।** अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्। **उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२** उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोचार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा।

गव्यूतिः—'गो यूतिः' इति स्थिते 'अध्वपरिमाणे च' इति गोशब्दस्य ओकारस्य अवादेशे 'गव्यूतिः' इति। 'गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्' इत्यमरः।

तपरः—अत्र 'तपरः' इत्यावर्तते। तत्र प्रथमः—तः परः यस्मात् 'तपरः। द्वितीयः—तात् परः तपरः। उदाहरणम्—'अद् एङ् गुणः' इति। अत्र अकारात् परो दकारः तेन 'अद्' इत्यनेन ह्रस्वाकारमात्रस्य, दकारात् परः 'एङ्' इति। तेन 'एङ्' इत्यनेन ए-ओ मात्रस्य ग्रहणं भवति।

प्रतिज्ञा--प्रतिज्ञायते = अभ्युपगम्यते इति प्रतिज्ञा, अनुनासिकस्य भावः आनुनासिक्यम्, प्रतिज्ञा आनुनासिक्यं येषां ते प्रतिज्ञानुनासिक्याः--पाणिनिशिष्याः। शिष्यपरम्परया शास्त्रकृतं तथाविधम् उच्चारणम् इदानीन्तनानां सुगममिति यावत्। तदेवं 'लण्' सूत्रे अकारस्य (मुखसहितोच्चारितत्वाऽभावेऽपि) अनुनासिकत्वात् इत्संज्ञा सिद्धेति। **लण्सूत्रस्था**—'लण्' सूत्रे तिष्ठतीति लण्सूत्रस्थः, स चाऽसौ अवर्णश्च लण्सूत्रस्थावर्णः, तत्र सहोच्चार्यमाणः 'र' इत्येवं रूपः रेफः रेफलकारयोः संज्ञेत्यर्थः (एतेन 'र' प्रत्याहारस्य सिद्धिर्भवति)।

तपरः--तकार रहे पर में जिसके अथवा तकार से पर में जो रहे वह अपने समकाल की संज्ञा-बोधक होता है।

आद्—अवर्ण से पर अच् रहे तो पूर्व-पर के स्थान में गुण आदेश होता है।

उपदेशे—उपदेश अवस्था में अनुनासिक विशिष्ट अच् इत्संज्ञक होता है।

प्रतिज्ञा—पाणिनि मुनि के कहे हुए वर्णों का अनुनासिक होना उनकी प्रतिज्ञा सूत्रनिर्देश से जानना चाहिये।

लण्—'लण्' सूत्रस्थ जो अवर्ण तत्सहित उच्चार्यमाण जो रेफ वह र-ल ('र' प्रत्याहार) की संज्ञाबोधक होता है।

उरण् रपरः १।१।५१। ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम् । तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिः । तवल्कारः । लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९। अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽसि परे । पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१। सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धं स्यात् । हर इह, हरयिह । विष्ण इह, विष्णविह । वृद्धिरादैच् १।१।१। आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् । वृद्धिरेचि ६।१।८८। आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः ।

कृष्णर्द्धिः—'कृष्ण ऋद्धिः' इति स्थिते 'ऋकारस्य गुण-वृद्धी अरारावेवेति भाष्योक्त्या 'आद्गुणः' इति अकार-ऋकारयोः स्थाने गुणे अकारे कृते 'उरण् रपरः' इति सूत्रेण रपरः (रेफशिरस्कः) सन् भवति, तेन 'कृष्णर्द्धिः' इति ।

पूर्वत्रासिद्धम्—अधिकारसूत्रमेतत् । 'स्वदेशे वाक्यार्थबोधशून्यत्वे सति, परदेशे वाक्यार्थबोधजनकत्वम्' अधिकारत्वम् । फलमाह—त्रिपाद्यामपीति ।

'हर इह'—'हरे इह' इति स्थिते 'एचोऽयवायावः' इति एकारस्य अयादेशे 'लोपः शाकल्यस्य' इति विभाषया यलोपे 'हर इह' इति जाते 'आद् गुणः' इति गुणे प्राप्ते 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' इत्यनेन त्रिपादिस्थस्य यलोपशास्त्रस्याऽसिद्धत्वाद् गुणाऽभावे 'हर इह' इति । यलोपाभावपक्षे 'दरयिह' इति ।

उरण—ऋ–ऌ वर्ण के स्थान में जायमान जो 'अण्' वह यथाक्रम से रपर और लपर होकर ही प्रवृत्त होता है ।

लोपः—अवर्णपूर्वक पदान्त यकार और वकार का लोप होता है । 'अस्' के परे विकल्प से ।

पूर्वत्रा—सपादसप्ताध्यायीस्थ सूत्र के प्रति त्रिपादीस्थ सूत्र असिद्ध होता है, तथा त्रिपादी में पूर्व सूत्र के पर सूत्र असिद्ध होता है ।

वृद्धिरा—आत्-ऐच् की वृद्धिसंज्ञा होती है ।

वृद्धिरेचि—अवर्ण से पर 'एच्' हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धि रूप एक आदेश हो जाता है ।

कृष्णैकत्वम् । गङ्गौघः । देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठचम् । **एत्येधत्यूठ्सु** ६।१।८९। अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । उपैति । उपैधते । प्रष्ठौहः । एजाद्योः किम्, उपेतः—मा भवान्प्रेदिधत् । (**अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्**) अक्षौहिणी सेना । (**प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु**) प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः । प्रैषः । प्रैष्यः । (**ऋते च तृतीयासमासे**) सुखेन ऋतः सुखार्तः । तृतीयेति किम्, परमर्तः । (**प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे**) प्रार्णम् । वत्सतरार्णमित्यादि । **उपसर्गाः क्रियायोगे** १।४।५९। प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र परा अप सम् अनु अव् निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि

एत्येधत्यूठ्सु—सूत्रमिदं पररूपगुणयोर्बाधकम् । **अक्षा**—अक्षशब्दात् ऊहिनीशब्दे परे पूर्व - परयोः एचोः वृद्धिः स्यादित्यर्थः । **प्रादूहोढः**—प्रेत्युपसर्गात् 'ऊह, ऊढ, ऊढि, एष, ऐष्य'—एतेषु परेषु पूर्वपरयोः अचो वृद्धिरेकादेशः स्यादित्यर्थः । **ऋते च**—तृतीयासमासे अकारात् ऋतशब्दे परे पूर्वपरयोः अचो वृद्धिः स्यादित्यर्थः । **प्रवत्सतर**—पञ्चम्यर्थे षष्ठी । प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन--ऋण--दश--एतेषाम् ऋणशब्दे परे पूर्वपरयोः वृद्धिरेकादेशः स्यादित्यर्थः ।

प्रार्णम्—'प्र ऋणाम्' इति स्थिते 'आद्गुणः' इति गुणे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'प्रवत्सतर-' इति वृद्धौ 'उरण् रपरः' इति सूत्रेण तस्य रपरत्वे 'प्रार्णम्' इति ।

एत्ये—अवर्ण से पर एजादि इण् धातु, एध् धातु तथा ऊठ् हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है ।

अक्षा—अक्षशब्दावयव अवर्ण से पर ऊहिनीशब्दावयव 'अच्' हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है ।

प्रादू—प्रशब्दावयव अवर्ण से पर ऊह, ऊढ ऊढि, एष, ऐष्य शब्दावयव अच् पर में हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश हो जाता है ।

ऋते—अवर्ण से पर ऋतशब्दावयव 'अच्' हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है, तृतीया समास में ।

प्रवत्—प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण तथा दशन शब्दावयव अवर्ण से पर ऋण शब्दावयव 'अच्' पर में हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश हो जाता है । **उप**—क्रिया के योग में प्रादि की उपसर्गसंज्ञा होती है ।

अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप--एते प्रादयः । **भूवादयो धातवः** १।३।१ क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः । **उपसर्गादृति धातौ** ६।१।९१। अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्रार्च्छति । **एङि पररूपम्** ६।१।९४। आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेजते । उपोषति । **अचोऽन्त्यादिटि** १।१।६४। अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् । **(शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्)** तच्च टेः ।

भूवादयः---भूश्च वाश्च भूवौ, आदिश्च आदिश्च आदौ । प्रथम आदिशब्दः प्रभृतिवचनः, द्वितीयस्तु प्रकारवचनः (प्रकारो भेदसादृश्यम्) भूवौ आदौ येषां ते भूवादायः । भूप्रभृतयो वासादृश्यश्च ये ते धातुसंज्ञका इत्यर्थः । वाधातुसादृश्यं च क्रियावाचकत्वेनेति । तदाह्---क्रियावाचिनः इति ।

प्रार्च्छति--'प्र ऋच्छति' इति स्थिते 'ऋच्छति' इत्यस्य क्रियावाचकत्वात् 'भूवादयो धातवः' इति धातुसंज्ञायां 'प्र' इत्यस्य क्रियायोगात् 'उपसर्गाः क्रियायोगे' इत्युसर्गसंज्ञायाम् 'उपसर्गादृति धातौ' इति पूर्वपरयोः स्थाने आरूप वृद्धौ रपरे च कृते 'प्रार्च्छति' इति ।

शकन्ध्वादिषु---शकन्ध्वादिषु विषये तत्सिद्धयर्थं पूर्वपरयोः पररूपं वक्तव्यमित्यर्थः ।

भूवा---क्रियावाची भू आदि की धातुसंज्ञा होती है ।

उप---अवर्णान्त उपसर्ग से पर ऋकारादि धात्ववयव 'अच्' हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है ।

एङि---अवर्णान्त उपसर्ग से पर एङादि धात्ववयव 'अच्' हो तो पूर्व-पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है ।

अचो---अचों के मध्य में जो अन्त्य अच्, वह है आदि में जिसके उस समुदाय की टिसंज्ञा होती है ।

शक---शकन्ध्वादि गणपठित शब्दों की सिद्धि के लिये पूर्व पर के स्थान में पररूप एक आदेश हो और वह पररूप 'टि' को हो ।

शकन्धुः । कर्कन्धुः । मनीषा । आकृतिगणोऽयम् । मार्तण्डः । **ओमाङोश्च** ६।१।९५ ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् । शिवायों नमः । शिव एहि । **अन्तादिवच्च** ६।१।८५। योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत् परस्यादिवत् स्यात् । शिवेहि । **अकः सवर्णे दीर्घः** ६।१।१०१। अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् । दैत्यारिः । श्रीशः । विष्णूदयः । होतृकारः । **एङः पदान्तादति** ६।१।१०९। पदान्तादेङोऽचि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्, हरेऽव । विष्णोऽव । **सर्वत्र विभाषा गोः** ६।१।१२२। लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः स्यात् पदान्ते । गो अग्रम्, गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम्,

---

शकन्धुः—'शक' अन्धुः, इति स्थिते 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति सूत्रं प्रबाध्य 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इति पररूपे 'शकन्धुः' इति । अत्र तच्च पररूपं 'टेः'=टिसंज्ञकस्य, भवति, टिसंज्ञा च 'अचोऽन्त्यादिटि' इत्यकारोत्तरवर्ति अकारस्य चेति ज्ञेयम् ।

शिव ऐहि—'शिव आ इहि' इति स्थिते 'धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्' इति परिभाषया पूर्वम् 'आ इहि' इत्यत्र 'आद्गुणः' इति गुणे एहीति जाते तत्र 'अन्तादिवच्च' इति अन्तवद्भावमादाय 'ओमाङोश्च' इति पररूपे 'शिवेहि' इति ।

सर्वत्र—लोके वेदे चेति भावः ।

प्रकृतिभावः—प्रकृत्या=स्वभावेन=निर्विकारस्वरूपेण अवतिष्ठत इति भावः ।

ओमाङ्—अवर्ण से पर ओङ् अथवा आङ् हो तो पूर्व-पर के स्थान में पररूप एक आदेश होता है ।

अन्ता—जो यह एकादेश होता है, वह पूर्व-पद के अन्त और परपद के आदि जैसा होता है ।

अकः—'अक्' से पर सवर्ण 'अच्' के परे पूर्व-पर के स्थान में सवर्ण दीर्घ एकादश होता है ।

एङः—पदान्त 'एङ्' से पर 'अत्' रहे तो पूर्वरूप एकादेश होता है ।

सर्वत्र—लोक-वेद सर्वत्र 'अत्' के परे गो शब्द को प्रकृतिभाव होता है—**विकल्प से** ।

चित्रग्वग्रम् । पदान्ते किम् गोः । **अनेकाल शित्सर्वस्य** १।१।५५। इति प्राप्ते । **ङिच्च** १।१।५३। ङिदनेकालमप्यन्त्यस्यैव स्यात् । **अवङ् स्फोटायनस्य** ६।१।१२३ पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वा स्यादचि । गवाग्रम्--गोऽग्रम् । पदान्ते किम्, गवि । **इन्द्रे च** ६।१।१२४। गोरवङ् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः । **दूराद्धूते च** ८।२।८४। दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात् । **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** ६।१।१२५। एतेऽचि प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ।

गवाग्रम्---'गो अग्रम्' इति दशायाम् 'एचोऽयवायावः' इति अवादेशे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'सर्वत्र विभाषा गोः' इति प्रकृतिभावे प्राप्ते तमपि परत्वात् प्रबाध्य 'अवङ्स्फोटायनस्य' इति अवङः अनेकाल्वात् 'अनेकालशित्सर्वस्य' इति गो इत्यस्य स्थाने अवङादेशे प्राप्ते तमपि प्रबाध्य 'ङिच्च' इत्यनेन गोशब्दे गकारोत्तरवर्तिनः ओकारस्य विभाषया अवङादेशे अनुबन्धलोपे 'गव अग्रम्' इति जाते 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे 'गवाग्रम्' इति । विकल्पपक्षे 'सर्वत्र विभाषा गोः' इति प्रकृतिभावे 'गो अग्रम्' इति । प्रकृतिभावाभावपक्षे 'एङः पदान्तादिति' इति पूर्वरूपे गोऽग्रम्' इति ।

दूराद्धूते च---यत्र प्रदेशे स्थितस्य प्रथमोच्चारितं शब्दं बोध्यमानो न शृणोति किन्त्वधिकं प्रयत्नमपेक्षते तद् दूरम् । हूतम् = आह्वानम्, तच्च सम्बोधनमत्र विवक्षितम् । 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' (८।२।८२) इति सिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्रमत्राऽधिकृतम् ।

आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति---इति वाक्ये 'कृष्ण अत्र' इति स्थिते

अने---अनेकाल और शित् आदेश संपूर्ण स्थान के स्थान होता है ।

ङिच्च---ङित् आदेश यदि अनेकाल् भी हो तो अन्त्य के स्थान में ही होता है । **अवङ्**---पदान्त एङन्त गो शब्द को अच् के परे विकल्प से अवङादेश होता है । **इन्द्रे**---गो शब्द को इन्द्र शब्द के परे अवङादेश होता है ।

दूरात्---दूर से सम्बोधन विषयक जो वाक्य, तद्वाक्यावयव जो 'टि' वह विकल्प से प्लुतसंज्ञक होता है ।

प्लुत---प्लुतसंज्ञक और प्रगृह्यसंज्ञक को 'अच्' वर्ण के परे प्रकृतिभाव होता है ।

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११ ईदूदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्। हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू। **अदसो मात् १।१।१२।** अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। मात्किम्, अमुकेऽत्र। असति माद्ग्रहणे एकारोऽप्यनुर्वतेत। **चादयोऽसत्त्वे १।४।५७।** अद्रव्यार्थश्चादयो निपाताः स्युः। **प्रादयः। १।४।५८।** एतेऽपि तथा स्युः। **निपात एकाजनाङ् १।१।१४** एकोऽच् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यं स्यात्। इ इन्द्रः। उ उमेशः।

सवर्णदीर्घं प्रबाध्य 'दूराद्धूते च' इति टिसंज्ञकस्य अकारोत्तरवर्त्यकारस्य प्लुतसंज्ञायां 'प्लुतः प्रगृह्या अचि नित्यम्' इति प्रकृतिभावे रूपं सिद्धम्।

ईदूदेद्द्विवचनम्—'द्विवचनम्' इति प्रत्ययत्वेऽपि न तस्मात्तदन्तविधिः, 'संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति' इति तन्निषेधात्।

अमी ईशाः—'अमी ईशाः' इति स्थिते सवर्णदीर्घं प्रबाध्य 'अदसो मात्' इति अदःशब्दसम्बन्धिमकारात् परस्य ईकारस्य प्रगृह्यसंज्ञायां 'प्लुतः प्रगृह्ये' ति प्रकृतिभावे रूपं सिद्धम्।

अमुकेऽत्र—'अदसो मात्' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत्। तद्धि—सूत्रे 'मात्' ग्रहणाऽभावे बाधकाऽभावात् 'अदसः' इति सूत्रे एतोऽप्युनुवृत्तिः स्यात्। ततश्च अदस्--शब्दात् 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राकटेः' इत्यकचि अनुबन्धलोपे 'अदकस्' इति, तस्मात् अदकस्—शब्दात् जसि त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे जसः श्योदेशे गुणे 'अदसोऽसेः' इति उत्वे मत्वे 'अमुके' इति। ततः 'अमुके अत्र' इत्यत्र पररूपं प्रबाध्य एकारस्य प्रगृह्यत्वं स्यात्।

चादयोऽसत्त्वे—सत्त्वशब्देन द्रव्यमुच्यते 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्तमः' इत्यमरः। लिङ्ग--संख्या--कारकान्वितं द्रव्यम्, तद्भिन्नम् अद्रव्यम्। तदाह—अद्रव्येति।

ईदू—ईदन्त, ऊदन्त और एदन्त द्विवचन की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

अद—अदस् शब्दसम्बन्धी मकार से पर ईत् ऊत् की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

चादयो—अद्रव्य (अव्यय) वाची चादि की निपातसंज्ञा होती है।

प्रादयः—अव्ययार्थक प्रादि की भी निपातसंज्ञा होती है।

निपात—'आङ्' वर्जित एकाच् निपात की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

वाक्यस्मरणयोरङित् आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अन्यत्र ङित् । ईषदुष्णम् ओष्णम् । **ओत्** १।४।१५। ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात् । अहो ईशाः । **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** १।१।१६। सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिक इतौ परे । विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति । **मय उञो वो वा** ८।३।३३ मयः परस्य उञो वो वा स्यात् अचि । किम्वुक्तम्, किमु उक्तम् । **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** ६।१।१२७। पदान्ता इको ह्रस्वो वा स्युरस-

---

उ उमेशः—'उ उमेशः' इति स्थिते 'चादयोऽसत्त्वे' इति पूर्वोकारस्य निपातसंज्ञायां 'निपात एकाजनाङ्' इति प्रगृह्यत्वे 'प्लुतः प्रगृह्ये' ति प्रकृतिभावे उक्तं रूपं सिद्धम् ।

अन्यत्र ङित्—ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाऽभिविधौ च यः ।
एकमातं ङितं विद्याद् वाक्य-स्मरणयोरङित् ॥

विष्णो इति—'विष्णो इति' इति स्थिते 'एचोऽयवायावः' इत्यवादेशं प्रबाध्य 'सम्बुधौ शाकल्यस्येतावनार्षे' इति विकल्पेन प्रगृह्यसंज्ञायां 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इति प्रकृतिभावे विष्णो इति' प्रगृह्यसंज्ञाऽभावपक्षे 'एचोऽयवायावः' इति ओकारस्य अवादेशे 'लोपः शाकल्य' इति विभाषया वलोपे 'विष्ण इति' इति । अत्र वलोपे सति 'आद्गुणः' इति गुणस्तु न 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' इति वलोपस्याऽसिद्धत्वात् । वलोपाभावे 'विष्णविति' इति ।

किम्वुक्तम्—'किम् उक्तम्' इति स्थिते 'मय उञो वो वा' इति उकारस्य विभाषया वत्वे 'किम्वुक्तम्' इति । मञः परस्य उकारस्य वत्वाऽभावे 'निपात एकाजनाङ्' इति प्रगृह्यत्वे 'प्लुत प्रगृह्ये'ति प्रकृतिभावे 'किमु उक्तम्' इति ।

ओत्—ओदन्त निपात की भी प्रगृह्यसंज्ञा होती है ।

सम्बुद्धौ—सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार की अवैदिक इति शब्द के परे विकल्प से प्रगृह्यसंज्ञा होती है ।

मय—मय से पर उञ् के उकार को 'व' आदेश होता है अच् के परे, विकल्प से ।

इको—अच् के परे पदान्त इक् को एक साथ ही ह्रस्व और प्रकृतिभाव होते हैं, विकल्प से ।

वर्णेऽचि ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्र्यत्र। पदान्ता इति किम्? **अचो रहाभ्यां द्वे** ८।४।४६। अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ (न समासे) वाप्यश्वः। **ऋत्यकः** ६।१।१२८। ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। पदान्ता किम्, आर्च्छत्।

इत्यच्सन्धिप्रकरणम्।

—: ० :—

चक्रि अत्र—'चक्री अत्र' इति दशायाम् 'इको यणचि' इति सूत्रं प्रबाध्य 'इकोऽसवर्णे–' इति विभाषया ह्रस्वे 'चक्रि अत्र' इति। ह्रस्वविधिसामर्थ्यात् पुनः न यण्। ह्रस्वाभावे तु यणि 'चक्र्यत्र' इति।

गौर्य्यौ—गौरीशब्दात् औविभक्तौ 'गौर्य्यौ' इति। 'गौरी औ' इति स्थिते यणि 'अचो रहाभ्यां द्वे' इति यस्य द्वित्वे 'गौर्य्यौ' इति। 'गौरी औ' इति स्थिते 'इकोऽसवर्णे–' इति प्रकृतिभावस्तु न सूत्रे पदान्तेत्यस्याऽनुवृत्तेः।

ब्रह्मर्षिः—'ब्रह्मा ऋषिः' इति स्थिते 'आद्गुणः' इति गुणं प्रबाध्य 'ऋत्यकः' इति विभाषया आकारस्य ह्रस्वे कृते 'ब्रह्म ऋषिः' इति। अत्र ह्रस्वे कृते ह्रस्वविधिसामर्थ्यात् न गुणः। ह्रस्वाऽभावे गुणे रपरत्वे 'ब्रह्मर्षिः' इति।

आर्च्छत्—'ऋत्यकः' इति सूत्रे 'पदान्ता' इत्यस्याऽग्रहणे तु 'आ ऋच्छत्' इति दशायां ह्रस्वत्वमापद्येत, तन्मा भूदिति 'पदान्ताः' इति। तेनात्र 'आटश्च' इति वृद्धौ सत्याम् 'आर्च्छत्' इति। 'ऋत्यकः' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत्।

न समासे—समासे 'इकोऽसवर्णे–' इति विहितो ह्रस्वसमुचितप्रकृतिभावो नेति तदर्थः। तेन वाप्याम् अश्वः='वाप्यश्वः' इत्यत्र यण्।

इति अच्सन्धिप्रकरणम्।

—: ० :—

अचो—अच् से पर जो रेफ–हकार, उससे पर जो यर् उसको द्वित्व होता है, विकल्प से।

न समा—समास में पदान्त इक् को ह्रस्व या प्रकृतिभाव कुछ भी नहीं होता है। ऋत्य–ऋत् पर में रहने पर पदान्त इक् को ह्रस्व और प्रकृतिभाव विकल्प से होता है। अच्सन्धिप्रकरण समाप्त

—: ० :—

अथ हल्सन्धिप्रकरणम्

स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०। सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः। रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गिञ्जय। **शात् ८।४।४४** शात्परस्य तवर्गस्य श्चुत्वं न स्यात्। विश्नः। प्रश्नः। **ष्टुना ष्टुः ८।४।४१।** स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात्। रामष्षष्ठः। रामष्टीकते। पेष्टा। तट्टीका। चक्रिण्ढौकसे। **न पदान्ताट्टोरनाम् ८।२।४२।** पदान्ताट्टवर्गात्परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात्। षट्सन्तः। षट् ते। पदान्तत्किम्, इट्टे। टोः किम्; सर्पिष्टमम्। (अनाम्-नवति-नगरीणामिति वाच्यम्) षण्णाम्। षण्णवतिः।

स्तोः श्चुना श्चुः--अत्र सूत्रे स्थान्यादेशयोरेव यथासंख्यम्, न तु योगस्य। ततश्च सकारस्य तवर्गस्य च शकारेण चवर्गेण वा यथासम्भवे योगे सकारस्य शकारः, तकारस्य चकारः, दकारस्य जकारः, नकारस्य णकारः इत्याद्येव श्चुत्वमिह भवतीति ज्ञेयम्।

ष्टुना ष्टुः—अत्र सूत्रेऽपि स्थान्यादेशयोरेव यथासंख्यं न तु योगस्य, तेन सस्य षः, तस्य टः, थस्य थः, दस्य डः, नस्य णः—इत्यादेव ष्टुत्वं भवतीति।

सर्विष्टमम्—'सर्पिष् तमम्' इति स्थिते 'ष्टुना ष्टुः' इति तकारस्य ष्टुत्वेन टकारे 'सर्पिष्टमम्' इति। 'न पदान्ताट्टोरनाम्' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत्। तत्र हि टोर्ग्रहणाऽभावे षकारस्याप्यनुवर्तनात् ष्टुत्वनिषेधापत्तेः। न च टोर्ग्रहणसत्वेऽपि 'सपिष् तमम्' इति स्थिते स्वादिष्विति पदत्वात् 'झलां जशोऽन्ते। इति जश्त्वेन डकारे कृते तकारस्य टवर्गपरत्वात् ष्टुत्वनिषेधः कुतो नेति वाच्यम्, 'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते' इति विहितषत्वस्य जश्त्वदिष्टचाऽसिद्धत्वेनजश्त्वाप्राप्तेः'।

अनाम्नवति—ष्टुत्वनिषेधे 'नाम' एव पर्युदासो न भवति, किन्तु—

स्तोश्चु—सकार, तवर्ग के स्थान में शकार या चवर्ग के योग रहने पर सकार के स्थान में शकार और तवर्ग के स्थान में चवर्ग हो जाता है।

ष्टुना—सकार-तवर्ग के स्थान में षकार-टवर्ग के योग रहने पर सकार के स्थान में षकार तथा तवर्ग के स्थान में टवर्ग हो जाता है।

न पदा—पदान्त टवर्ग से पर नामभिन्न सकार और तवर्ग के स्थान में ष्टुत्व नहीं होता है। **आना**—पदान्त टवर्ग से. पर–नाम, नवति तथा नगरी से भिन्न सकार-तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है।

षण्णगर्यः तोः षि ८।४।४३ तवर्गस्य षकारे परे न ष्टुत्वम्। सन्षष्ठः। झलां जशोऽन्ते ८।२।३९। पदान्ते झलां जशः स्युः। वागीशः। यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५। यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात्। एतन्मुरारिः। एतद् मुरारिः। (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) तन्मात्रम्। चिन्मयम्। तोर्लि: ८।४।६०। तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः स्यात्। तल्लयः। विद्वाँल्लिखति। नस्यानुनासिको लः। उदः स्थास्तम्भो पूर्वस्य ७।४।६१। उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात्। यस्मादित्युत्तरस्य

नवति, नगरी-शब्दावयव-नकारस्याऽपि पर्युदासो वक्तव्यः इत्यर्थः।

यरोऽनुनासिके—चवर्गं विहाय वर्गाणां पञ्चमे वर्णे परे पदान्ते वर्तमानस्य, वर्गाणां प्रथमस्य तृतीयस्य च वर्णस्य स्थाने तद्वर्णस्य पञ्चमः तृतीयो वा वर्णो भवतीति निर्गलितोऽर्थः।

एतन्मुरारिः—'एतद् मुरारिः' इति स्थिते 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' इति सूत्रेण 'स्थानेन्तरतमः' इति सहकारात् दन्तस्थानजन्यदकारस्य विभाषया नकारे "एतन्मुरारिः' इति। अनुनासिकाऽभावे 'एतद्मुरारिः' इति।

प्रत्यये भाषायाम्—भाषायां लौकिकप्रयोगे, प्रत्यये विद्यमाने अनुनासिके परतः प्रागुक्तोऽनुनासिको नित्यं स्यादित्यर्थः। खरि च—खरि परे 'ग् ज् ड् द् व्' एतेषां स्थाने 'क् च् ट् त् प्' आदेशाः भवन्तीति निर्गलितोर्थः। इदं सूत्रं पदान्ते अपदान्ते च प्रवर्तते। (अतः 'झलां जशोऽन्ते' इति विहितं जश्त्वं खरि परे न प्रवर्तते, तत्रानेन चर्त्वमेवाऽवगन्तव्यम्)।

तोः षिः—षकार के परे तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है।

झलां—पदान्त झल् के स्थान में जश् आदेश होता है।

यरो—पदान्त यर् को विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है।

प्रत्यय—अनुनासिकादि प्रत्यय के परे लौकिक प्रयोग में पदान्त यर् के स्थान में नित्य ही अनुनासिक आदेश होता है।

तोर्लि—लकार के परे रहते तवर्ग को परसवर्ण हो जाता है।

उदः—उद् से पर स्था और स्तम्भ के स्थान में पूर्णसवर्ण आदेश होता है।

तस्मा—पञ्चम्यन्त पद का उच्चारण करके जिस कार्य का विधान किया

१।१।६७। पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यहितस्य परस्य ज्ञेयम् । **आदेः परस्य** १।१।५४ परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् । इति सस्य थः । **झरो झरि सवर्णे** ८।४।६५। हलः परस्य झरो वा लोपः स्यात् सवर्णे झरि । **खरि च** ८।४।५५। खरि परे झलां चरः स्युः । इत्युदो दस्य तः । उत्थानम् । उत्तम्भनम् । **झयो होऽन्यतरस्याम्** ८।४।६२। झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः स्यात् । नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वर्गचतुर्थः । वाग्घरिः, वाग्हरि । **शश्छोऽटि** ८।४।६३। पदान्तात् झयः परस्य शस्य छो वा स्यादटि ।

उत्थानम्—'उद स्थानम्' इति स्थिते 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' । इति तस्मादित्युत्तरस्येति परिभाषया वर्णान्तराऽव्यवहितस्य 'स्था' इत्यस्य स्थाने पूर्वसवर्णे प्राप्ते 'आदेः परस्य' इति बलात् 'स्था' इत्यस्याऽदिभूतस्य सस्य स्थाने पूर्वसवर्णे थकारे कृते 'उद् थ् थानम्' इति जाते 'झरो झरि सवर्णे' इति दकारोत्तरवर्तिनः थकारस्य विकल्पेन लोपे 'खरि च' इति दस्य चर्त्वे 'उत्थानम्' इति । थलोपाऽभावपक्षे 'उत्थ्थानम्' इति । अत्र प्रथमस्य थस्य चर्त्वन्तु न, चर्त्वं प्रति थकारस्य असिद्धत्वात् ।

वाग्घरिः—'वाक् हरिः' इति दशायां 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वे गकारे कृते 'झयो होन्यतरस्याम्' इति 'झय्' प्रत्याहारान्तःपातिनो गकरात् परस्य हकारस्य पूर्वसवर्णः—गकारसवर्णाः = 'क ख ग घ ङ' प्राप्ताः तत्र हकारेण संवार-नाद-घोष-महाप्राणवता तुल्यः—संवार-नाद-घोष-महाप्राणवान् घकारो विभाषया हकारस्थाने जातः । तेन 'वाग्घारिः' इति रूपं सिद्धं भवति । पक्षे 'वाग्हरिः' इति ।

गया हो, वह कार्य, उस पञ्चम्यन्त से बोधित वर्णान्तर से अव्यवहित पर वर्ण के स्थान में होता है । **आदेः**—पर के स्थान में कहा गया कार्य पर के आदि वर्ण के स्थान में होता है ।

झरो—सवर्ण झर् के परे हल् से पर झर् का विकल्प से लोप होता है ।

खरि—खर् पर में होने पर झर् के स्थान में चर् हो जाता है ।

झयो—झर् से पर हकार को पूर्वसवर्ण विकल्प से होता है ।

शश्छो—अट् वर्ण के परे पदान्त झय् से पर शकार को छकार आदेशः विकल्प से होता है ।

तद् शिवः इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः। तच्छिवः। तच्शिवः। (छत्वममीति वाच्यम्) तच्छ्लोकेन। **मोऽनुस्वारः** ८।३।२३। मान्तस्य पदस्यानुस्वारः स्याद्धलि। हरिं वन्दे। **नश्चापदान्तस्य झलि** ८।३।२३। नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः स्यात्। यशांसि आक्रंस्यते। झलि किम्, मन्यते। **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** ८।४।५८। स्पष्टम्। शान्तः। **वा पदान्तस्य** ८।४।५९। पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे-परसवर्णो वा

तच्छिवः—'तद् शिवः' इति स्थिते 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति दस्य श्चुत्वे जकारे कृते तस्य 'खरि च' इति चर्त्वेन चकारे 'तच् शिवः' इति जाते 'शश्छोऽटि' इति झयन्तःपातिनश्चकरात् परस्य शस्य अट्प्रत्याहारान्तःपातिनि शिवशकारोत्तरवर्तिनि इकारे परे छत्वे 'तच्छिवः' इति। छत्वाऽभावे 'तच्शिवः' इति।

छत्वममीति—शश्छोटीति सूत्रे अटिति विहाय अमीति वक्तव्यमित्यर्थः।

तच्छ्लोकेन—'तद् श्लोकेन' इति स्थिते 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते 'खरि च' इति जकारस्य चर्त्वेन चकारे 'छत्वममीति वाच्यम्' इति शस्य छत्वे 'तच्छ्लोकेन' इति।

नश्च—'श ष स ह' इत्येतेष्वन्यतमेषु कवर्गादिषु वा वर्णेषु परेषु पदमध्यस्थस्य नस्य मस्य च स्थाने अनुस्वारो भवतीति फलितार्थः।

अनुस्वारस्य—कवर्गादिषु परेषु विहितस्य अनुस्वारस्य स्थाने परवर्तिवर्गस्य पञ्चमो वर्णो नित्यं भवतीति फलितार्थः।

छत्व—अम् के परे पदान्त झय् से पर शकार को छकार विकल्प से होता है। **मोऽनु**—हल् वर्ण के परे मान्त पद के मकार के स्थान में अनुस्वार हो जाता है। **नश्चा**—झल् वर्ण के परे पदान्त नकार या मकर के स्थान में अनुस्वार होता है।

अनु—यय् प्रत्याहार के परे अपदान्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण आदेश हो जाता है।

वा पदा—यय् वर्ण के परे पदान्त अनुस्वार के स्थान में विकल्प से परसवर्ण होता है।

स्यात् । त्वङ्करोषि, त्वं करोषि, । **मो राजि समः क्वौ** ८।३।२५। क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । सम्राट् । **हे मपरे वा** ८।३।२६। मपरे हकारे परे मस्य मो वा स्यात् । किम्ह्मलयति, किं ह्मलयति । (**यवलपरे यवला वा**) किय्ँह्यः, किंह्यः । किव्ँह्वलयति, किं ह्वलयति । किल्ँह्लादयति । किं ह्लादयति । **नपरे नः** ८।३।२७। नपरे हकारे परे मस्य नो वा स्यात् । किन्ह्नुते, किं ह्नुते । **ङः सि धुट्** ८।३।२९। ङात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात् । **आद्यन्तौ टकितौ** १। ३।४६। टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः । षट्त्सन्तः, षट्सन्तः । **ङ्णोः कुक् टुक् शरि** ८।३।२८। ङकार-णकारयोः कुक्टुकावागमौ वा स्तः शरि (**चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादे-**

यवलपरे—य-व-ल-परक हकारे परे मस्य 'म' एव वा स्यादित्यर्थः ।

षट्त्सन्तः—'षड् सन्तः' इति स्थिते 'ङः सि धुट्' इति 'आद्यन्तौ टकितौ' इति सहकारात् टित्वात् सस्यादौ धुटि अनुबन्धलोपे 'षड् ध् सन्तः' इति जाते 'खरि च' इति धस्य तकारे डस्य टकारे च कृते 'षट्त्सन्तः' इति । धुडभावे 'खरि चे'ति चर्त्वे 'षट्सन्तः' इति ।

मो राजि—क्विबन्त राज् धातु के परे 'सम्' के मकार को मकार ही आदेश होता है—अनुस्वार नहीं होता है ।

हे मप—मकारपरक हकार के परे रहते मकार के स्थान में विकल्प से मकारादेश होता है ।

यवल—य, व, ल परक हकार के परे रहते मकार के स्थान में यथाक्रम से सानुनासिक—य्ँ, व्ँ ल्ँ आदेश विकल्प से हो जाता है ।

न परे—नकारपरक हकार के परे रहते मकार को नकारादेश विकल्प से होता है ।

ङसि—ङकार से पर सकार के स्थान में विकल्प से धुट् होता है ।

आद्य—जिसके स्थान में टित् आगम कहा गया हो वह टित् उसके आद्यावयव में और कित् अन्त्यावयव में होता है ।

ङ्णोः—ङकार—णकार को कुक्, टुक् का आगम होता है, शर् के परे, विकल्प से । **चयो**—वर्ग के प्रथम अक्षर के स्थान में द्वितीय अक्षर हो जाता है, विकल्प से ।

रिति वाच्यम्) प्राङ्ङ्क्षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः । सुगणठ्षष्ठः, सुगणट्षष्ठः, सुगण्षष्ठः । **नश्च** ८।३।३०। नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात् । सन्त्सः, सन्सः । **शि तुक्** ८।३।३१। पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा स्यात् । सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः । **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्** ८।३।३२। ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो नित्यं ङमुडागमः स्यात् । प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । सन्नच्युतः । **समः सुटि** ८।३।५। समो रुः स्यात् सुटि । **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** ८।३।२ अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा स्यात् **अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः** ८।३।४। अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः स्यात् । **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** ८।१।१५। खरि अवसाने च पदान्तस्य रस्य विसर्गः स्यात् (**सम्पुंकानां सो वक्तव्यः**)

सञ्च्छम्भुः—'सन् शम्भुः' इति स्थिते 'शि तुक्' इति 'आद्यन्तौ टकितौ' इति सूत्रबलात् पदान्तस्य नस्य विभाषया तुकि अनुबन्धलोपे 'सन् त् शम्भुः' इति दशायां 'शश्छोटि' इति शस्य छत्वे 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति तस्य श्चुत्वेन चकारे 'सन च् छम्भुः' इति जाते पुनः 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति चकारयोगात् नस्य श्चुत्वेन ञकारे 'झरो झरि सवर्णे' इति विभाषया चलोपे ,'सञ्छम्भुः' इति । चलोपाभावपक्षे 'सञ्च्छम्भुः' इति । छत्वाभावपक्षे 'सञ्च्शम्भुः' इति । तुगभावपक्षे 'सञ्शम्भुः' इति ।

नश्च—नान्त पद से पर सकार को धुडागम विकल्प से होता है ।

शि तुक्–शकार के परे पदान्त नकार को तुक् का आगम हो, विकल्प से ।

ङमो—ह्रस्व जो ङम्, तदन्त जो पद, उससे पर अच् को नित्य ही ङमुट् का आगम होता है ।

समः—सुट् के परे सम् के मकार के स्थान में रु आदेश होता है ।

अत्रा—इस रु प्रकरण में रु से पूर्व को विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है । **अनु**—अनुनासिक को छोड़ कर रु से पूर्व वर्ण के परे अनुस्वार का आगम होता है ।

खर—अवसान में रेफ हो अथवा पदान्त रेफ के बाद खर् प्रत्याहार का कोई भी वर्ण हो तो रेफ के स्थान में विसर्ग हो जाता है ।

संपुं–सम्, पुम् तथा कान् सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में सकार हो जाता है ।

संस्स्कर्ता-संस्कर्ता। **पुमः खय्यम्परे** ८।३।२ अम्परे खयि पुमो रुः स्यात्। पुँस्कोकिलः-पुंस्कोकिलः। **नश्छव्यप्रशान्** ८।३।७। अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यात्। **विसर्जनीयस्य सः** ८।३।३४। खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात्। चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिं स्त्रायस्व। अप्रशान् किम्, प्रशान्तनोति। पदान्तस्येति किम्, हन्ति। **नॄन् पे** ८।३।१०। नॄनित्यस्य रुर्वा स्यात् पकारे परे। **कुप्वोः ≍क ≍पौ**

संस्स्कर्ता—'सम् कर्ता' इत्यत्र 'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे' इति सुटि अनुबन्धलोपे 'सम् स् कर्ता' इति जाते 'समः सुटि' इति 'अलोऽन्त्यस्य' इति सहकारात् सुट्सम्बन्धिनि सकारे परे मस्य रुत्वे 'सर्स्कर्ता' इति भूते 'अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा' इति रोः पूर्वमनुनासिके 'सँर्स्कर्ता' इति जाते 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इति रेफस्य विसर्गे 'विसर्जनीयस्य सः' इति विसर्गस्य सत्वे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'वा शरि' इति विसर्गस्य विसर्गे प्राप्ते तमपि प्रबाध्य 'सम्पुंकानां सो वक्तव्यः' इति विसर्गस्य सत्वे 'सँस्स्कर्ता' इति। अनुनासिकाऽभावपक्षे अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः' इति मस्यानुस्वारे 'संस्कर्ता' इति।

पुँस्कोकिलः—पुमांश्चासौ कोकिलश्चेति पुँस्कोकिलः। 'पुम् कोकिलः' इति स्थिते 'पुमः खय्यम्परे' इति पुमो मस्य रुत्वे रेफोत्तरवर्ति–उकारलोपे 'पुर् कोकिलः' इति जाते 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' इत्यनुनासिके 'पुँर् कोकिलः' इति जाते 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इति रेफस्य विसर्गे 'कुप्वोः ≍क ≍पौ च' इति जिह्वामूलीये प्राप्ते तं प्रबाध्य 'सम्पुंकानां सो वक्तव्यः' इति विसर्गस्य सत्वे 'पुँस्कोकिलः' इति। अनुनासिकाऽभावे 'अनुनासिकात् परः—' इत्यनुसारे 'पुंस्कोकिलः' इति।

चक्रिँस्त्रायस्व—'चक्रिन् त्रायस्व' इति स्थिते 'नश्छव्यप्रशान्' इति नस्य

पुमः—'अम्' परक खय् के परे पुम् के स्थान में 'रु' आदेश होता है।

नश्छ—अम् परक छव् के परे प्रशान् से भिन्न नान्त पद के स्थान में 'रु' आदेश होता है।

विसर्ज—खर् पर में रहने पर विसर्ग के स्थान में 'स्' आदेश होता है।

नॄन्—नॄन् के नकार के स्थान में पकार के परे विकल्प से 'रु' हो जाता है।

कुप्वोः—कवर्ग या पवर्ग के परे रहते विसर्ग के स्थान में

च ८।३।३७। कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ⌣क⌣पौ स्तः। चाद्विसर्गः। नृः⌣पाहि। नॄँ: पाहि, नॄँ: पाहि, नॄन्पाहि। **तस्य परमाम्रेडितम्** ८।१।२। द्विरुक्तस्य परं रूपमाम्रेडितं स्यात्। **कानाम्रेडिते** ८।३।१२। कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते परे। काँस्कान्, कांस्कान्। **छे च** ६।१।७३। ह्रस्वस्य छे परे

रुत्वे अनुबन्धलोपे 'अत्राऽनुनासिकः'—इति विभाषयाऽनुनासिके 'खरवसानयोः—' इति। रेफस्य विसर्गे 'विसर्जनीयस्य सः' इति विसर्गस्य सत्वे 'चक्रिँस्त्रायस्व' इति अनुनासिकाऽभावे 'अनुनासिकात् परः—' इत्यनुनासिके 'चक्रिंस्त्रायस्व' इति।

नॄन् पे—नॄन् इति द्वितीयान्तं शब्दस्वरूपम्। तच्च षष्ठ्यन्तम्। षष्ठ्याः सौत्री लुक्। नलोपाभावोऽप्यत्र सौत्र एव।

नॄँ:⌣पाहि—'नॄन् पाहि' इति स्थिते 'नॄन् पे' इति विभाषया नस्य रुत्वे अनुन्धलोपे 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य—' इति विभाषया अनुनासिके 'खरवसानयोः—' इति रेफस्य विसर्गे 'कुप्वोः ⌣क⌣पौ च' इति विभाषया उपध्मानीये 'नॄँ:⌣पाहि' इति। अनुनासिकाऽभावे 'अनुनासिकात् परः—' इत्यनुस्वारे 'नॄं:⌣पाहि' इति। उपध्मानीयाऽभावे रुत्वाऽनुनासिकविसर्गेषु कृतेषु 'नॄँ: पाहि' इति। अनुनासिकाभावे अनुस्वारे 'नॄं: पाहि' इति। रुत्वाभावे 'नॄन् पाहि' इति पञ्च रूपाणि सिध्यन्ति।

काँस्कान्—कानित्यस्य वीप्सायां द्विर्वचने'—'कान् कान्' इति स्थिते 'तस्य परमाम्रेडितम्' इति परस्य कानित्यस्य आम्रेडितसंज्ञायां 'कानाम्रेडिते' इति आम्रेडितसंज्ञके परे पूर्वनकारस्य रुत्वे अनुबन्धलोपे 'कार् कान्' इति जाते 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य—' इत्यनुनासिके 'खरवसानयोः—' इति विसर्गे कृते 'कुप्वोः⌣, क⌣पौ च' इति जिह्वामूलीये प्राप्ते तं प्रबाध्य 'सम्पुँकानाम्-' इति

यथाक्रम से जिह्वामूलीय (⌣क⌣), उपध्मानीय (⌣प⌣फ) अथवा चकरात् विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही रह जाता है।

तस्य—जो दो बार कहा गया हो उसके द्वितीय भागोक्त की आम्रेडित संज्ञा होती है।

काना—आम्रेडितसंज्ञक के परे कान् के नकार के स्थान में रुत्व होता है।

छे च—छकार के परे ह्रस्व वर्ण को तुक् होता है।

तुगागमः स्यात् । शिवच्छाया। **पदान्ताद्वा ६।१।७६।** दीर्घात्पदान्ताच्छे परे तुग् वा स्यात् । लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया ।

इति हल्सन्धिप्रकरणम्

—: ० :—

सत्वे कृते 'कांस्कान्' इति । अनुनानिकाऽभावे 'अनुनासिकात् परः' इत्यनुस्वारे 'कांस्कान् इति ।

शिवच्छाया–'शिव छाया' इति स्थिते 'छे च' इति वकारोत्तरवर्त्यकारस्य तुकि उकि गते 'शिव त् छाया' इति जाते 'झलां जशोन्ते' इति तस्य जस्त्वे 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति दस्य श्चुत्वेन जत्वे 'खरि च' इति जस्य चर्त्वे शिवच्छाया इति ।

लक्ष्मीच्छाया—'लक्ष्मी छाया' इति स्थिते 'पादान्ताद्वा' इति तुकि उकि गते तस्य जस्त्वे श्चुत्वे चर्त्वे 'लक्ष्मीच्छाया' इति । तुगभावे 'लक्ष्मीछाया' इति । न च 'उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्' इति परिभाषया छकारस्य अन्त्यावयवस्तुक् स्यादिति वाच्यम्, 'सेनानुराच्छाया' इति सूत्रनिर्देशात्तस्याऽनित्यत्वात् ।

इति हल्सन्धिप्रकरणम् ।

—: ० :—

पदान्ता--छकार के परे पदान्त दीर्घ वर्ण को विकल्प से तुक् होता है ।

हल्सन्धिप्रकरण समाप्त

—: ० :—

अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम्

विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४ खरि विष्णुस्त्राता। **वा शरि** ८।३।३६। शरि विसर्गस्य विसर्गो वा स्यात्। हरिः शेते, हरिश्शेते। **ससजुषो रुः** ८।२।६६। पदान्तस्य सस्य सजुष् शब्दस्य च रुः स्यात्। **अतो रोरप्लुतादप्लुते** ६।१।११३। अप्लुतादतः परस्य रो रुः स्यादप्लुतेऽति। शिवोऽर्च्यः। **हशि च** ३।१।११४। अप्लुतादतः परस्य रो रुः स्याद्धशि। शिवो वन्द्यः। **भोभगो-अघो-अपूर्वस्य योऽशि** ८।३।१७। एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशः स्यादशि। देवा इह,

---

ससजुषो रुः—सकारान्तं सजुष्शब्दान्तं च यद् पदं तस्य रुः स्यादिति सरलार्थः।

शिवोऽर्च्यः—'शिवस् अर्च्यः' इति स्थिते 'ससजुषो रुः' इति सस्य रुत्वे 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इति रोः उत्वे 'आद्गुणः' इति गुणे 'शिवो अर्च्यः' इति स्थिते 'एङः पदान्तादति' इति पूर्वरूपे 'शिवोऽर्च्यः' इति।

देवा इह—'देवास् इह' इति स्थिते 'ससजुषो रुः' इति सस्य रुत्वे 'भो-भगो-अघो-' इति रोर्यादेशे 'देवाय् इह' इति जाते 'लोपः शाकल्यस्य' इति यलोपे 'देवा इह' इति। यलोपे कृते गुणस्तु न, यलोपस्याऽसिद्धत्वात्। यलोपा-भावे 'देवायिह' इति।

विसर्जनी—'खर्' के परे रहते विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होता है।

वा शरि—शर् के परे रहते विसर्ग के स्थान में बिकल्प से विसर्ग आदेश होता है। **सस**—पदान्त सकार तथा सजुष् शब्दसम्बन्धी षकार के स्थान में रुत्व होता हैं।

अतो—अप्लुत अत् से पर रु-सम्बन्धी रेफ के स्थान में उत्त्व होता है—अप्लुत अत् के परे।

हशि—हश् वर्ण के परे रहने पर अप्लुत अत् से पर रु-सम्बन्धी रेफ के स्थान में उत्त्व होता है।

भोभ—अश् वर्ण के परे रहने पर—भो, भगो, अघो और अवर्ण पूर्वक सम्बन्धी रेफ के स्थान में यत्व हो जाता है।

देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते । **हलि सर्वेषाम्** ७।३।२२। भो भगो अघो अपूर्वस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि । **रोऽसुपि** ८।२।६९। अह्नो रेफादेशो न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः । **रो रि** ८।३।१४।रेफस्य रेफे परे लोपः स्यात् । **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** ६।३।१११। ढरेफयोर्लोमनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात् । पुना रमते । हरी रम्यः । शम्भू राजते । अणः किम्, तृढः । वृढः । मनस् रथ इत्यत्र

भो देवाः—'भोस् देवाः' इति स्थिते 'ससजुषो रुः' इति सस्य रुत्वे 'भो-भगो-अघो–' इति रोर्यत्वे 'हलि सर्वेषाम्' इति यलोपे 'भो देवाः' इति ।

ढ्रलोपे—ढ् च रेफश्च इति ढ्रौ तौ लोपयतीति ढ्रलोपः । ण्यन्तात् कर्मण्युपपदे अण्, उभयपदसमासः । ढलोपनिमित्तं रेफलोपनिमित्तं च विवक्षितम् । तच्च ढकार-रेफात्मकमेव । ढो ढे लोपः, रो रि, इति तयोरेव ढलोपनिमित्तत्वात् । तथा च-ढलोपनिमित्ते ढकारे, रेफलोपनिमित्ते रेफे च परतः पूर्वस्याऽणो दीर्घः, इति फलति । तदाह-ढरेफयोरिति ।

शम्भू राजते—'शम्भुस् राजते' इति स्थिते 'ससजुषो रुः' इति सस्य रुत्वे 'रो रि' इति रेफस्य लोपे 'ढ्रलोपे–' इति दीर्घे 'शम्भू राजते' इति ।

तृढः—'ढ्रलोप' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तथाहि—तत्र 'अण्' ग्रहणाऽभावे-ढरेफयोर्लोपनित्तयोः पूर्वस्य दीर्घः' इत्यर्थे तृह् हिंसायाम् इति धातोः निष्ठायां क्तप्रत्यये 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे 'झषस्तथोः–' इति तस्य धत्वे 'ष्टुना ष्टुः' इति धस्य ष्टुत्वेन ढकारे 'तृढ् ढ' इति जाते 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढस्य लोपे 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घः' इति ढलोपनिमित्ते ढकारे परे पूर्वस्य तृ-ऋकारस्य

हलि—हल् वर्ण के परे रहते—भो, भगो, अघो और अवर्णपूर्वक यकार का सभी के मत से (नित्य ही) लोप हो जाता है।

रोऽसु—सप्तमी बहुवचन विभक्ति से भिन्न विभक्ति के परे अहन् . शब्द के नकार के स्थान में रेफ आदेश होता है ।

रो रि—रेफ के परे रेफ का लोप हो जाता है ।

ढ्रलो—ढकार और रेफ लोपनिमित्तक जो ढकार और रेफ उनके परे पूर्व अण् को दीर्घ हो जाता है ।

रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रो रीति लोपे च प्राप्ते। **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** १।४।२। तुल्यबलविरोधे सति परं कार्यं स्यात्। इति लोपे प्राप्ते। पूर्वत्रासिद्धमिति रो रीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव। मनोरथः। **एषसतदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** ६।१।१३२। अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपः स्यात् हलि, न तु नञ् समासे।

एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम्, एषको रुद्रः। अनञ्समासे

दीर्घापत्तेः, तस्मात् सूत्रे 'अण्' ग्रहणमावश्यकम्। कृते त्वण्ग्रहणे तत्सामर्थ्यादत्र पूर्वणकारेणैव 'अण्' प्रत्याहारग्रहणात् दीर्घाऽप्रवृत्त्या कृदन्तत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'तृढः' इति।

विप्रतिषेधे—विप्रतिपूर्वात् सेधतेर्घञि उपसर्गवशात् परस्परविरोधे विप्रतिषेधशब्दः। विरोधश्च तुल्यबलयोरेव लोकसिद्धत्वादाह—तुल्यबलेति।

द्वयोः शास्त्रयोः क्वचिल्लब्धावकाशयोरेकत्र लक्ष्ये युगपत् सम्भवः तुल्यबलविरोधः। कार्यस्य परत्वं परशास्त्रविहितत्त्वम्।

मनोरथः—'मनस् रथः' इति स्थिते 'ससजुषो रुः' इति सस्य रुत्वे कृते 'हशि च' इति रोः उत्वे प्राप्ते 'रो रि' इति रुसम्बन्धिरेफस्य च लोपे प्राप्ते 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इति तुल्यबलविरोधे सति परत्वात् 'रो रि' इति लोपे च प्राप्ते 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' इत्यधिकारसूत्रेण सपादसप्ताध्यायीस्थ 'हशि च' इति सूत्रदृष्टया त्रैपादिकस्य 'रो रि' इति सूत्रस्याऽसिद्धत्वात् 'हशि च' इति रोरुत्वे 'आद्गुणः' इति गुणे 'मनोरथः' इति।

स शम्भुः—'तत् सु शम्भुः' इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' इति सत्वे 'स सु शम्भुः' इति जाते 'एतत्तदोः—' इति सोर्लोपे 'स शम्भुः' इति।

विप्र—तुल्य-बलविरोध होने पर, पर कार्य ही होता है।

एतत्—हल् वर्ण के परे रहते ककार से रहित एतद् और तद् शब्द सम्बन्धी सु का लोप हो जाता है, नञ् समास को छोड़ कर।

किम्, असः शिवः। हलि किम्, एषोऽत्र। **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** ६।१।१३४। स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

इति विसर्गसन्धिप्रकरणम्।

—: ऽ॰ऽ :—

सैष दाशरथी रामः—'सस् एष दाशरथा रामः' इत्यत्र 'सोऽचि लोपे चेद् पादपूरणम्' इति पादपूरणार्थं सलोपे 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ तद् सिद्धम्। सम्पूर्णश्लोकस्त्वित्थम्—

"सैष दाशरथी रमः सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः" ॥

इति विसर्गसन्धिप्रकरणम्

—: ० :—

सोऽचि—सुलोप होने पर ही यदि पाद की पूर्ति होती हो तो अच् वर्ण के परे तत् शब्द-सम्बन्धी सु का लोप हो जाता है।

इति काशीस्थभवानीशङ्करसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यापक पं॰ गिरीशकुमार-ठक्कुरविरचित- 'चन्द्रकला' टीकासंहितं लघुसिद्धान्तकौमुद्याः संज्ञाप्रकरणादि-पञ्चसन्ध्यन्तप्रकरणं समाप्तम्।

—: • :—

अथ अजन्तपुल्लिङ्गप्रकरणम्

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५। धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं न वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रापिपदिकसंज्ञं स्यात्। **कृत्तद्धितसमासाश्च** १।१।४६। कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञाः स्युः। **स्वौजसमौट्छष्टाभ्यां भिस्ङेभ्यां भ्यस्ङसिभ्यां भ्यस्ङसोसाम् ङ्योस्सुप्** ४।१।२। सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट् शस् इति द्वितीया। टा भ्याम् भिस् इति तृतीया ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम्।

अर्थवत्—अर्थोस्यास्तीति अर्थवत्। दधाति=धारयति, अनेकार्थान् इति धातुः, न धातुरधातुः। प्रतीयते=विधीयते, इति प्रत्ययः, न प्रत्ययः अप्रत्ययः। पदं पदं प्रतिपदं, तत्र भवं प्रातिपदिकम्। प्रत्ययः इत्यावर्तते। तत्रैकः प्रत्ययपरः अपरश्च प्रत्ययान्तरपरः। प्रत्ययग्रहणेति परिभाषया तदन्तविधिः। संज्ञाविधाविति परिभाषया तदन्तविधिप्रतिषेधस्तु न, यत्र प्रत्ययस्य संज्ञा तद्विषये एव तस्य प्रवृत्तेः।

कृत्तद्धितेति—कृच्च तद्धितश्च समासश्चेति विग्रहः। पूर्वसूत्रात् प्रातिपदिकमित्यनुवर्तते। बहुवचनान्ततया विपरिणम्यते। प्रत्ययग्रहणेति परिभाषया कृत्तद्धितेति तदन्तविधिः। तदाह—कृत्तद्धितान्तेति। कृत्तद्धितान्तयो प्रत्ययान्तत्वात् पूर्वसूत्रेण अप्राप्ते कृत्तद्धितग्रहणम्।

स्वौजसमौडिति—अत्र सूत्रे मूलोक्तं 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' 'प्रत्ययः' परश्च' इति सूत्रत्रयमधिकृतं, तच्च यथायथं विपरिणम्यते। ततश्च स्वौजेति सूत्रार्थमाह—ङ्यन्तादावन्तादिति। ङी च आप् च प्रातिपदिकश्चैषां समाहारद्वन्द्वः—ङ्याप्प्रातिपदिकं तस्मात्। ङी आप् च प्रत्ययौ, ताभ्यां प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तविधौ—ङ्यन्तादावन्ताच्चेत्यर्थलाभः।

अर्थ—धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त भिन्न अर्थवत् शब्दस्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

कृत्त—कृदन्त, तद्धितान्त और समास की भी प्रातिपादिक संज्ञा होती है।

स्वौज—ङ्यन्त, आबन्त प्रतिपादिक से स्वादि प्रत्यय होता है।

ङ्याप्—ये तीनों अधिकार सूत्र हैं, 'स्वौज' सूत्र के साथ इनका अर्थ हुआ है।

इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् इति सप्तमी। ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४।१।१। प्रत्ययः ३।१।१। परश्च ३।१।२। इत्यधिकृत्य। ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः। सुपः १।४।१०३। सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः। द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२। द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः। विरामोऽवसानम् १।४।११०। वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ। रामः। सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४। एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२। अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात्। इति प्राप्ते। नादिचि ६।१।१०४। आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि।

सुपः इति—'तिङस्त्रीणि त्रीणि' इत्यतः त्रीणि त्रीणीति पदद्वयमनुवर्तते, 'तान्येकवचन–द्विवचन–बहुवचनान्येकशः' इति सूत्रस्य-तानीति पदरहितस्य चाऽनुवृत्तिस्तदाह—सुपस्त्रीणीति।

सरूपाणाम्—'एकविभक्तौ' इति 'सरूपाणाम्' इत्यत्र अन्वेति। समानं रूपं येषां तानि 'सरूपाणि' 'वृद्धो यूना' इत्युक्तसूत्राद् 'एव' इत्यपकृष्यते, शिष्यते इति शेषः, एकश्चासौ शेषश्चेति एकशेषः। एकस्यां विभक्तौ परतः सरूपाणामेव दृष्टानां मध्ये एकः शिष्यते इति फलति। तदाह—एकविभक्तावति।

प्रथमयोः—प्रथमा च प्रथमा चेति प्रथमे; तयोः प्रथमयोः। अत्र एकः 'प्रथमा' शब्द प्रथमाविभक्तिबोधकः, अपरश्च द्वितीयाविभक्तिबोधकः। तदाह—प्रथमा-द्वितीययोरिति।

सुपः—सुप् के तीन-तीन वचन ('सु औ जस्' आदि) क्रमशः एकवचन, द्विवचन संज्ञक होते हैं।

द्व्येक—द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन और एकत्व की विवक्षा में एकवचन होता है। विरा—वर्णों का आभाव अवसान कहा जाता है।

सरू—एक विभक्ति में जहाँ समान रूप देखे गये हों वहाँ उनमें से एक ही बचा रहता है और अन्य का लोप हो जाता है। (यथा—रामश्च रामश्च रामश्च इति 'रामाः')। प्रथ—अक् से पर प्रथमा या द्वितीया सम्बन्धी अच् वर्ण हो तो पूर्णसवर्ण दीर्घ आदेश हो जाता है।

नादि—अवर्ण से पर अच् रहे तो पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है।

रामौ। **बहुषु बहुवचनम्** १।१।२१। बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात्। **चुटू** १।३।७। प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः। **विभक्तिश्च** १।४।१०४। सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः। **न विभक्तौ तुस्माः** १।३।४। विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इतो न स्युः। इति सस्य नेत्त्वम्। रामाः। **एकवचनं सम्बुद्धिः** २।३।४९। सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्। **यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्** १।४।१३। यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादिशब्दस्वरूपं तस्मिन्प्रत्यये परेऽङ्गसंज्ञं स्यात्। **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** ६।१।६९। एङन्तात् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्। हे राम। हे रामौ। हे रामाः। **अमि पूर्वः** ६।१।१०७।

चुटू—'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इत्यतः 'इत्' इति, आदिर्ञिटुडवः' इत्यतः 'आदि' इति, 'षः प्रत्ययस्य' इत्यतः 'प्रत्ययस्य' इति च अनुवर्तते। तदाह—प्रत्ययाद्याविति।

न विभक्तौ तुस्माः—तु स् म एतेषां द्वन्द्वः, 'हलन्त्यम्' इत्यनेन तवर्गसकारयोरित्त्वे प्राप्ते सूत्रारम्भः।

यस्मादिति—अत्र तत् प्रकृतिरूपम् आदिर्यस्य तत् तदादि। सूत्रे तदादिग्रहणं विकरणविशिष्टस्य अङ्गसंज्ञार्थं, तेन भवामि भविष्यामि इत्यादि सिद्धिः। प्रत्ययग्रहणं च प्रत्ययविशिष्टस्य ततोऽप्यधिकस्य च अङ्गसंज्ञाभावार्थम्।

बहु—बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन (ही) होता है।

चूटू—प्रत्यय के आदि चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है।

विभ—सुप्-तिङ् की विभक्ति संज्ञा होती है।

न वि—विभक्ति के तवर्ग, सकार और मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है।

एक—संबोधन में प्रथमा के एकवचन सु की सम्बुद्धिसंज्ञा होती है।

यस्मात्—जो प्रत्यय जिससे विधान किया जाय उस प्रत्यय के परे तदादि शब्दस्वरूप अंगसंज्ञक होता है।

एङ्—एङन्त तथा ह्रस्वान्त अंग से पर सम्बुद्धि के अवयव हल् वर्ण का लोप हो जाता है।

अमि—अक् से पर अम्-सम्बन्धी अच् वर्ण रहे तो पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप हो जाता है।

अकोऽप्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ । **लशक्वतद्धिते** १।३।८। तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः । **तस्माच्छसो नः पुंसि** ६।१।१०३। पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि । **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** ८।४।२ अट् कवर्ग पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् समानपदे । इति प्राप्ते । **पदान्तस्य** ८।४।३७। पदान्तस्य नस्य णत्वं न स्यात् । रामान् । **टाङसिङसामिनात्स्याः** ७।१।१२। अदन्तात्टादीनामिनादयः स्युः । णत्वम् । रामेण । **सुपि च** ७।३।१०२। यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् । रामाभ्याम् । **अतो भिस ऐस्** ७।१।९। अनेकाल्शित्सर्वस्य । रामैः । **ङेर्यः** ७।१।१३। अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः स्यात् । **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** १।१।५६। आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ । इति स्थानिवत्त्वात्सुपि चेति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम् । बहुवचने

रामान्—रामशब्दात् शसि 'लशक्वतद्धिते' इति शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इति दीर्घे 'तस्माच्छसो नः पुंसि' इति सस्य नत्वे 'रामान्' इति । अत्र 'अट्कुप्वाङ्' इति णत्वन्तु न 'पदान्तस्य' इति निषेधात् ।

लश—तद्धित प्रत्यय को छोड़ कर अन्य प्रत्यय के आदि ल्, श्, क् की इत्संज्ञा होती है । **तस्मा**—पुंलिंग में-पूर्वसवर्ण दीर्घ से पर शस् प्रत्यय-सम्बन्धी सकार के स्थान में नकार आदेश हो जाता है ।

अट्—अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम्, इनसे व्यस्थ (पृथक्-पृथक्) व्यवधान रहने पर अथवा यथासंभव मिलित व्यवधान रहने पर भी रेफ, षकार से पर नकार को णत्व हो जाता है—एक पद में ।

पदा—पदान्त नकार को णत्व नहीं होता है ।

टाङ—अदन्त अंग से पर—टा, ङसि, ङस् के स्थान में यथाक्रम से—इन, आत्, स्य आदेश हो जाता है ।

सुपि—यञ् आदि सुप् के परे अदन्त अंग को दीर्घ हो जाता है ।

अतो—अदन्त अंग से पर भिस् के स्थान में ऐस् आदेश हो जाता है ।

ङेर्यः—अदन्त अंग से पर ङे के स्थान में य आदेश होता है ।

स्थानि—अलाश्रय विधि कर्तव्य में स्थानिवद्भाव नहीं होता है ।

बहु—झलादि बहुवचन सुप् के परे अदन्त अंग को एत्व हो जाता है ।

झल्येत् ७।३।१०३। झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः स्यात्। रामेभ्यः। सुपि किम् पचध्वम्। **वाऽवसाने** ८।४।५६। अवसाने झलां चरो वा स्युः। रामात्--रामाद्। रामाभ्याम्। रामेभ्यः। रामस्य। **ओसि च** ७।३।१०४। ओसि परे अतोऽङ्गस्यैकारः। स्यात् रामयोः। **ह्रस्वनद्यापो नुट्** ७।१।५४। ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादावन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः स्यात्। **नामि** ६।४।३। नामि परे अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात्। रामाणाम्। रामे। रामयोः। एत्वे कृते। **आदेशप्रत्यययोः** ७।३।५९। इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशस्य प्रत्ययावयवस्य च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्। ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः। रामेषु। एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः। **सर्वादीनि सर्वनामानि** १।१।२७। सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः। सर्व विश्व उभ उभय डरत डतम अन्य अन्यतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञयाम्, स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्, अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः, त्यद् तद् यद् एतद् इदम्

रामाणाम्—रामशब्दात् आमि विभक्तौ 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्' इति नस्य णत्वे 'रामाणाम्' इति।

वाऽव—अवसान में स्थित झल् के स्थान में विकल्प से चर्त्व हो जाता है।

ओसि—ओस् के परे अदन्त अङ्ग को एत्व होता है।

ह्रस्व—ह्रस्वान्त, नद्यन्त तथा आवन्त अङ्ग से पर जो आम् उसको नुट् का आगम होता है। **नामि**—नाम् के परे रहते अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो जाता है।

आदेः—इण् और कवर्ग से पर अपदान्त आदेशस्वरूप सकार और प्रत्ययावयव सकार के स्थान में षकार आदेश होता है।

सर्वा—सर्वादि गणपठित शब्दों की सर्वनामसंज्ञा होती है।

पूर्व—पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर—इन सातों की व्यवस्था और संज्ञा में सर्वनामसंज्ञा होती है।

स्वम—ज्ञाति तथा धनवाची से भिन्न आत्मा-आत्मीय अर्थ में स्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है।

अन्तर—बाह्य और परिधानी अर्थ में अन्तर शब्द की सर्वनामसंज्ञा होती है।

अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवत् किम् । **जसः शी ७।१।१७** अदन्तात्सर्वनाम्नः परस्य जसः शी स्यात् । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः । सर्वे । **सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४।** अतः सर्वनाम्नो ङे इत्यस्य स्मै स्यात् । सर्वस्मै । **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७।१।१५।** अतः सर्वनाम्नो एतयोरेतौ स्तः । सर्वस्मात् । **आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२।** अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः स्यात् । एत्वषत्वे । सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेषं रामवत् । एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः उभशब्दो द्विवचनान्तः । उभौ २ । उभाभ्याम् ३ । उभयोः २ । तस्येह पाठोऽकजर्थः । डतरडतमौ प्रत्ययौ । "प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति" तदन्ता ग्राह्याः । नेम इत्यर्धे । समः सर्वपर्यायः । तुल्यपर्यायस्तु न, यथासंख्यमनुदेशः समानाम्" इति ज्ञापकात् । **पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४।** एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात् । पूर्वे । पूर्वाः । असंज्ञायां किम्, उत्तराः, कुरवः । स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था । व्यवस्थायां किम्, दक्षिणा गाथकाः । कुशला इत्यर्थः ।

सर्वेषाम्—सर्वशब्दात् आमि 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इति सुटि अनुबन्धलोपे 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वे आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे 'सर्वेषाम्' इति सिद्धम् ।

जसः—अदन्त सर्वनाम से पर जस् के स्थान में शी आदेश होता है ।

सर्व—अदन्त सर्वनाम से पर ङे के स्थान में स्मै आदेश होता है ।

ङसि—अदन्त सर्वनाम से पर ङसि और ङि के स्थान में यथाक्रम से स्मात्, स्मिन् आदेश होते हैं ।

आमि—अवर्णान्त अङ्ग से पर सर्वनाम से विहित आम् को सुट् का आगम होता है ।

उभ—उभ शब्द नित्य द्विवचनान्त है ।

तस्य—उस उभ शब्द का सर्वादिगण में पाठ केवल अकच् प्रत्यय सिद्धि के लिये ही है ।

पूर्व—पूर्वादि सातों की व्यवस्था और असंज्ञा अर्थ में जस् के परे सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होती है ।

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।१।३५। ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा स्यात् । स्वे, स्वाः, आत्मीया आत्मान इति वा । ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः, ज्ञातयोऽर्था वा । **अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः** १।१।३६। बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा स्यात् । अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः बाह्या इत्यर्थः । अन्तरे, अन्तरा वा शाटकाः, परिधानीया इत्यर्थः । **पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा** ७।१।६। एभ्यो नवभ्यो ङसिङ्योः स्मात्—स्मिनौ वा स्तः । पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे । एवं परादीनाम् । शेषं सर्ववत् । **प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च** १।१।३३। एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः । प्रथमे, प्रथमाः । तयः प्रत्ययः । द्वितये, द्वितीयाः शेषं रामवत् । नेमे, नेमाः शेषं सर्ववत् । **(तीयस्य ङित्सु वा)** द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि । एवं तृतीयः । निर्जरः । **जराया जरसन्यतरस्याम्** ७।२।१०१ जराशब्दस्य जरस् वा स्यादजादौ विभक्तौ । **(पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च)**

पूर्वस्मात्—पूर्वशब्दात् ङसि 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इति वैकल्पिकेन ङसेः स्थाने स्मादित्यादेशे पूर्वस्मादिति । स्मादादेशाऽभावपक्षे 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इति ङसेः स्थाने आदादेशे सवर्णदीर्घे जस्त्वे चर्त्वे 'पूर्वात्' इति ।

निर्जरसौ—निर्जरशब्दात् औ 'जराया जरसन्यतरस्याम्' इति जरसादेशे

स्वम—ज्ञाति और धनवाची से भिन्न जो स्व शब्द, उसकी गण सूत्र से विहित जो सर्वनामसंज्ञा, वह जस् के परे विकल्प से होती है ।

अन्तरं—बाह्य और परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा जस् के परे विकल्प से होती है ।

पूर्वा—पूर्वादि शब्दों से पर ङसि और ङि के स्थान में यथाक्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होता है ।

प्रथम—प्रथमादि सातों वचनों की जस् के परे विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है ।

तीय—तीय प्रत्ययान्त को ङित् विभक्ति के परे विकल्प से सर्वनान संज्ञा होती है । **जरा**—अजादि विभक्ति के परे जरा शब्द के स्थान में विकल्प से जरस् आदेश होता है । **पदा**—पदाधिकारी और अंगाधिकारी जो कार्य वह

(निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति) (एकदेशविकृतमनन्यवत्) इति जराशब्दस्य जरस्। निर्जरसौ। निर्जरसः। इत्यादि। पक्षे हलादौ च रामवत्। विश्वपाः। **दीर्घाज्जसि च** ६।१।१०५। दीर्घाज्जसि इति च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिः। विश्वपौ। विश्वपाः। हे विश्वपाः। विश्वपाम्। विश्वपौ। **सुडनपुंसकस्य** ३।१।४३। स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** १।४।१७। कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं पदसंज्ञं स्यात्। **यचि भम्** १।४।१८। यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात्। **आकडारादेका संज्ञा** १।४।१। इत ऊर्ध्वं "कडाराः कर्मधारये" इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया। या पराऽनवकाशा च। **आतो धातोः** ६।४।१४०। आकारान्तो यो

लब्धे, सूत्रे जराशब्दस्य जरसादेशः प्रोक्तो न तु निर्जरशब्दस्य, इति कथमत्र जरसादेशः इति शङ्कायां 'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य' इति अङ्गाधिकारात् तदन्तस्यापि स्यादिति प्राप्ते 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' इति परिभाषया जराशब्दस्यैव जरसादेशः स्यादिति कथमत्र जरशब्दस्य जरस् इति शङ्कायाम् 'एकदेशविकृतमनन्यत्' इति जरसादेशे 'निर्जरसौ' इति। जरसादेशाऽभावपक्षे 'वृद्धिरेऽची'ति वृद्धौ 'निजरौ' इति।

उसको तथा तदन्त को भी होता है।

दीर्घा--दीर्घ से पर जस् अथवा इच् रहे तो पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है।

सुड—सु, औ, जस्, अम्, औट्, इन पञ्च वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है--नपुंसक लिंग को छोड़ कर।

स्वादि—'सु' से लेकर 'कप्' प्रत्यय पर्यन्त सर्वनामस्थान से भिन्न प्रत्यय पर में रहे तो पूर्व की पदसंज्ञा होती है।

यचि—'सु' से लेकर 'कप्' प्रत्यय पर्यन्त जो यादि और अजादि असर्वनामस्थान प्रत्यय, उनके परे पूर्व की भसंज्ञा होती है।

आक--प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद से लेकर 'कडाराः कर्मधारये' सूत्र पूर्व तक एक की एक ही संज्ञा होती है--जो अष्टाध्यायी के क्रम से पर सो या अनवकाश हो। **आतो**—आकारान्त जो धातु, तदन्त जो भसंज्ञक अंगह, उसका लोप होता है।

धातुस्तदन्तस्य लोपः स्यात् । अलोऽन्यस्य । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्या-मित्यादि । एवं शङ्खध्मादयः । धातो किम् ? हाहान् । हरिः । **जसि च** ७।३।१०९। ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसि परे । हरयः । **ह्रस्वस्य गुणः** ७।३।१०८। ह्रस्वस्य गुणः स्यात् सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् । **शेषो घ्यसखि** १।४।७। शेष इति स्पष्टार्थम् । अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात् । **आङो नाऽस्त्रियाम्** ७।३।१२०। घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा प्राचाम् । हरिणा । हरिभ्याम् । हरिभिः **घेर्ङिति** ७।३।१११। घिसंज्ञस्य ङिति सुपि गुणः स्यात् । हरये । **ङसिङसोश्च** ६।१।११०। एङो ङसि ङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेः । हर्योः । हरीणाम् । **अच्च घेः** ७।३।११९। इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् स्यात्, घेरन्ता-

---

विश्वपः—विश्वपाशब्दात् शसि 'लशक्वतद्धितस्य' इति शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति शसादिषु परेषु पूर्वस्य विश्वपाशब्दस्य पदसंज्ञायां 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां च प्राप्तायाम् 'आकडारादेका संज्ञा' इति एकैकसंज्ञा भवतीति नियमात् परत्वादनवकाशत्वाच्च भसंज्ञायां सत्यां 'आतो धातोः' इति पकारोत्तरवर्त्यकारस्य लोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'विश्वपः' इति ।

हरेः—हरिशब्दात् पञ्चम्येकवचने षष्ठ्येकवचने वा अनुबन्धलोपे सति 'हरि अस्' इति स्थिते 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायां 'घेर्ङिति' इति गुणे 'ङसि ङसोश्च' इति पूर्वरूपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'हरेः' इति ।

जसि—जस् के परे ह्रस्वान्त अंग को गुण होता है ।

ह्रस्व—सम्बुद्धि सु के परे ह्रस्वान्त अंग को गुण होता है ।

शेषो—नदीसंज्ञक से भिन्न जो ह्रस्व इकार-उकार, तदन्त जो सखिभिन्न शब्द, वह घिसंज्ञक होता है ।

आङो—घिसंज्ञक से पर आङ् को ना आदेश होता है—स्त्रीलिंग को छोड़कर । घेर्ङि—ङित्, सुप् विभक्ति के परे घिसंज्ञक को गुण होता है ।

ङसि—एङ् से पर ङसि और ङस् सम्बन्धी अकार को पूर्वरूप (एक आदेश) होता है । अच्च—ह्रस्व इ-उ से पर 'ङि' को औत् आदेश होता है और घिसंज्ञक को अकारान्त आदेश हो जाता है ।

देशश्चाकारः । हरौ । हरिषु । एवं कव्यादयः । **अनङ् सौ** ७।१।९३। सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ । **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** १।१।६५। अन्त्यादचः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् । **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** ६।४।८। नान्तस्योपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । **अपृक्त एकाल्प्रत्ययः** १।२।४१। एकाल्प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात् । **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** ६।१।६८। हलन्तात्परं दीर्घो यो ङ्यापो तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते । **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** ८।२।७। प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात् । सखा । **सख्युरसम्बुद्धौ** ७।१।९२ । सख्युरङ्गात्परं

सखा—सखिशब्दात् सौ अनुबन्धलोपे 'सखि स्' इति दशायां 'यस्मात् प्रत्यय–' इति अङ्गसंज्ञायाम् 'अनङ् सौ' इति 'ङिच्चे' ति सूत्रबलात् सखिशब्दघटकखकारोत्तरवर्तिनः इकारस्य अनङि अनुबन्धलोपे 'सखन् स्' इति दशायाम् 'अलोन्त्यात् पूर्वं उपधा' इति उपधासंज्ञायां 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' इति दीर्घे 'सखान् स्' इति दशायाम् 'अपृक्त एकाल् प्रत्ययः' इत्यपृक्तसंज्ञायां 'हल्ङ्याभ्यः–' इति सलोपे 'न लोपः–' इति नलोपे 'सखा' इति ।

अनङ्—सम्बुद्धिभिन्न सु के परे रहते सखिरूपी अंग को अनङ् आदेश होता है ।

अलो—अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण की उपधासंज्ञा होती है ।

सर्व—सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति के परे नान्त उपधा को दीर्घ होता है ।

अपृ—एकाल् प्रत्यय की अपृक्तसंज्ञक होती है ।

हल्—हलन्त से पर जो—सु, ति, सि सम्बन्धी अपृक्तसंज्ञक हल् और दीर्घरूपी ङी, आप्, तदन्त से पर जो सु सम्बन्धी अपृक्तसंज्ञक हल्, उसका लोप होता है ।

न लो—प्रातिपदिक संज्ञक जो पद तदन्त जो नकार उसका लोप होता है ।

सख्यु—सखिरूप अंग से पर जो सम्बुद्धि-भिन्न सर्वनामस्थान वह णिद्वत् होता है ।

सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् । **अचो ञ्णिति** ७।२।११५। अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च परे। सखायौ । सखायः । हे सखे । सखायम् । सखायौ सखीन् । सख्या । सख्ये । **ख्यत्यात्परस्य** ६।१।११२। खितिशब्दाभ्यां खीती-शब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः । सख्युः । **औत्** ७।३।११८ इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत् स्यात् । सख्यौ । शेषं हरिवत् । **पतिः समास एव** १।४।८। पतिशब्दः समास एव घिसंज्ञः । पत्ये । पत्युः २ । पत्यौ । शेषं हरिवत् । समासे तु भूपतये । कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । **बहुगणवतुडति-संख्या** १।१।२३। एते सङ्ख्यासंज्ञाः स्युः । **डति च** १।१।२५। डत्यन्ता सङ्ख्या षट्संज्ञा स्यात् । **षड्भ्यो लुक्** ७।१।२२। षड्भ्यः परयोर्जश्शसोर्लुक् स्यात् । **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** १।१।६१। लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्त-त्तत्संज्ञं स्यात् । **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** १।१।६२। प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं

सख्युः—सखिशब्दात् ङसि अनुबन्धलोपे 'सखि अस्' इति स्थिते 'इको यणचि' इति यणि 'ख्यत्यात्परस्य' इति असोऽकारस्य उत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'सख्युः' इति ।

पत्यौ—पतिशब्दात् ङे विभक्तौ 'पतिः समास एव' इति नियमात् 'शेषो घ्यसखि' इति घित्वाऽभावेन 'अच्च घेः' इत्यस्याऽप्राप्त्या 'औत्' इति ङेरौत्वे 'इको यणचि' इति यणि 'पत्यौ' इति ।

अचो—ञित्-णित् प्रत्यय के परे अजन्त अंग को वृद्धि होती है ।

ख्यत्या—कृतयणादेशक जो ह्रस्व खि, ति और दीर्घ खी, ती शब्द, उससे पर जो ङसि-ङस् सम्बन्धी अकार उसके स्थान में उकार आदेश होता है ।

औत्—ह्रस्व इ, उ से पर ङि को औत् आदेश होता है ।

पतिः—समस्त पति शब्द की ही घिसंज्ञा होती है ।

बहु—बहु, गण तथा वतुप्रत्ययान्त और डतिप्रत्ययान्त शब्द की संख्यासंज्ञा होती है । **डति**—डत्यन्त संख्यावाचक शब्द की षट्संज्ञा होती है ।

षड्भ्यो—षट्संज्ञक से पर जस्-शस् का लुक् होता है ।

प्रत्य—लुक्, श्लु, लुप् शब्द से किया हुआ प्रत्यय का जो अदर्शन वह-लुक्, श्लु, लुप् संज्ञक होता है ।

प्रत्यय—प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्ययाश्रित कार्य होता है ।

कार्यं स्यात् । इति जसि चेति गुणे प्राप्ते । **न लुमताऽङ्गस्य १।१।६३।** लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । कति २ । कतिभिः । कतिभ्यः २ । कतीनाम् । कतिषु । युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २ । **त्रेस्त्रयः ७।१।५३।** त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि । त्रयाणाम् । त्रिषु । गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम् । **त्यदादीनामः ७।२।१०२।** एषामकारोऽन्तादेशः स्याद् विभक्तौ। (**द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः**) द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः २ । पाति लोकमिति पपीः सूर्यः । **दीर्घाज्जसि च ६।१।१०।** दीर्घाज्जसि इति च परे पूर्वसवर्णदीर्घो

कति––किम् शब्दात् 'किमः संख्या परिमाणे' इति डति प्रत्यये कृते कति शब्दो निष्पन्नः । तस्मात् कतिशब्दात् जसि शसि च विभक्तौ 'बहुगणे'ति सूत्रेण डत्यन्तत्वात् कतिशब्दस्य संख्यासंज्ञायां 'डति च' इति षट्संज्ञायां 'षड्भ्यो लुक्' इति जश्शसोर्लुकि जसि 'प्रत्ययलोपे–' इति प्रत्ययलक्षणेन 'जसि च' इति गुणे प्राप्ते 'न लुमताङ्गस्य' इति निषेधे 'कति' इति ।

गौणत्वेऽपि—'इतरपदार्थनिष्ठ विशेष्यतानिरूपित-प्रकारताश्रयत्वम्' गौणत्वम् ।

प्रियत्रयाणाम्—प्रियत्रिशब्दात् आमि 'त्रेस्त्रयः' इति त्रयादेशे 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्' इति णत्वे 'प्रियत्रयाणाम्' इति । नच गौणमुख्य–' न्यायात् प्रियत्रिघटकत्रिशब्दस्य अन्यपदार्थे विशेषणत्वेन गौणत्वात् 'त्रेस्त्रयः' इति त्रयादेशः कथमिति वाच्यम्, गौणमुख्यन्यायस्य पदकार्यविषयत्वात् ।

न लु––लुक्, लुप् शब्द से प्रत्यय का लोप होने पर प्रत्ययलक्षण से तदाश्रित अंग-कार्य नहीं होता है ।

युष्म—युष्मद् अस्मद् और षट्संज्ञक शब्दों के तीनों लिङ्गों में समान रूप होते हैं ।

त्रि––त्रिशब्द बहुत्व संख्यावाचक है अतः नित्य बहुवचनान्त है ।

त्रेयस्त्रयः—आम् विभक्ति के परे त्रिशब्द को त्रय आदेश होता है ।

त्यदा—विभक्ति के परे त्यदादि को अत्व होता है ।

दीर्घा—दीर्घ से पर जस् और इच् रहे तो पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है ।

न स्यात् । पप्यौ । पप्यः । हे पपीः । पपीम् । पपीन् । पप्योः । पपीभ्याम् । पपीभिः । पप्ये । पपीभ्यः २ । पप्यः २ । पप्योः । दीर्घत्वान्न नुट् । पप्याम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । पपी । पप्योः । पपीषु । एवं वातप्रम्यादयः । बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी । **यू स्त्र्याख्यौ नदी** १।४।३। ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः । (प्रथमलिङ्गग्रहणं च) पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः । **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** ७।३।१०७। अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात् सम्बुद्धौ । हे बहुश्रेयसि । **आण् नद्याः** ७।३।११२। नद्यन्तात्परेषां ङितामागमः स्यात् । **आटश्च** ६।१।९० आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । बहुश्रेयस्याः । बहुश्रेयसीनाम् । **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** ७।३।११६। नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दात्परस्य ङेराम् स्यात् । बहुश्रेयस्याम् । शेषं पपीवत् । अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः । अतिलक्ष्मीः । शेषं बहुश्रेयसीवत् । प्रधीः । अचि

बहुश्रेयस्याः—बहुश्रेयसीशब्दात् ङसि अनुबन्धलोपे 'प्रथमलिङ्गग्रहणं च' इति नदीसंज्ञायाम् 'आण्नद्याः' इत्याटि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'इको यणचि' इति यणि सस्य रुत्वे विसर्गे 'बहुश्रेयस्याः' इति ।

बहुश्रेयस्याम्—बहुश्रेयसीशब्दात् ङौ 'प्रथमलिङ्गग्रहणं च' इति नदीसंज्ञायां 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' इति ङेरामि स्थानिवत्त्वेन ङित्त्वमादाय 'आण्नद्याः' इत्याटि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ यणि 'बहुश्रेयस्याम्' इति ।

यू स्त्र्या—ईदन्त, ऊदन्त नित्यस्त्रीलिंग शब्द की नदीसंज्ञा होती है ।

प्रथम—जो शब्द नित्यस्त्रीलिंग हो और समासादि होने पर नित्यस्त्रीलिंग नहीं भी रहे तो भी उसकी नदीसंज्ञा होती है ।

अम्बा—सम्बुद्धि के परे अम्बार्थक और नद्यन्त शब्द की ह्रस्वता होती है ।

आण्—नद्यन्त से पर ङित्प्रत्यय को आट् का आगम होता है ।

आट्—आट् से पर अच् हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धि हो जाती है ।

ङेरा—नद्यन्त, आबन्त और नी शब्द से पर ङी को आम् आदेश होता है ।

अचि—अजादि प्रत्यय के परे श्नु प्रत्ययान्त तथा इवर्णान्त-उवर्णान्त जो धातु तथा भ्रू रूप अंग की इयङ्, उवङ् आदेश होता है ।

श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७। श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते। **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** ६।४।८२। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये। प्रध्यौ। प्रध्यम्। प्रध्यः। प्रध्यि। शेषं पपीवत्। एवं ग्रामीणीः। ङौ तु ग्रामण्याम्। अनेकाचः किम्? नीः। नियौ। नियः। अमि शसि च परत्वादियङ्। नियम्। नियः। ङेराम्। नियाम्। असंयोगपूर्वस्य किम्? सुश्रियौ। यवक्रियौ। **गतिश्च** १।४।६०। प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञा स्युः (**गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते**) शुद्धधियो। **न भूसुधियो** ६।४।८५। एतयोरचि सुपि यण् न। सुधियौ। सुधिय इत्यादि। सुखमिच्छतीति। सुखीः। सुतीः। सुख्यौ। सुत्यौ। सुख्युः। सुत्युः। शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हरिवत्। एवं भान्वादयः। **तृज्वत्क्रोष्टुः** ७।१।९५। असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः। ऋतो

प्रध्यम्—प्रधीशब्दात् द्वितीयैकवचने अमि 'अमि पूर्वः' इति पूर्वरूपे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'अचि श्नुधातु—' इति इयङि प्राप्ते तमपि प्रबाध्य 'एरनेकाचः—' इति यणि 'प्रध्यम्' इति।

ग्रामण्याम्—ग्रामं नयति = नियच्छतीति ग्रामणीः ('अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णत्वं वाच्यम्' इति णत्वम्)। ग्रामणीशब्दात् ङौ अनुबन्धलोपे 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' इति नीशब्दात् परस्य ङेरामि 'एरनेकाचः—' इति यणि 'ग्रामण्याम्' इति।

एरने—अजादि प्रत्यय के परे—धात्ववयव संयोग पूर्व में न हो, ऐसा जो इवर्ण, तदन्त जो धातु, तदन्त जो अनेकाच् अंग उसको यण् होता है।

गतिश्च—क्रिया के योग रहने पर प्रादि की गतिसंज्ञा होती है।

गति—गति-कारक से भिन्न पूर्वपद को यण् नहीं होता।

न भू—अजादि सुप् के परे रहते भू और सुधी शब्दों को यण् नहीं होता है। **तृज्वत्**—असंबुद्धि सर्वनामस्थान के परे क्रोष्टु शब्द के स्थान में क्रोष्टृ आदेश होता है।

ऋतो—ङि और सर्वनामस्थान विभक्ति के परे ऋदन्त अंग को गुण होता है।

ङिसर्वनामस्थानयोः ७।३।११०। ऋदन्ताऽङ्गस्य गुणः स्यात् ङौ सर्वनामस्थाने च। इति प्राप्ते। **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** ७।१।९४। ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ। **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** ६।४।११। अवादीनामुपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। क्रोष्टून्। **विभाषा तृतीयादिष्वचि** ७।१।९७। अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा। क्रोष्टुना। **ऋत उत्** ६।१।१११। ऋतो ङसिङसोरति उकार एकादेशः स्यात्। रपरः। **रात्सस्य** ७।२।२४। रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य। रस्य विसर्गः। क्रोष्टुः।

क्रोष्टा—क्रोष्टुशब्दात् सौ 'तृज्वत् क्रोष्टुः' इति तृज्वद्भावे विहिते 'ऋतो ङी'ति गुणे प्राप्ते 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इति सूत्रबलेन पूर्वविप्रतिषेधात् 'ऋदुशनस्–' इत्यनेन अनङि प्राप्ते 'ङिच्च' इत्यन्तादेशे अनुबन्धलोपे एकदेशविकृतन्यायेन 'अप्-तृन् तृच्–' इति उपधादीर्घे 'हल्ङ्याभ्यः–' इति सलोपे 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे 'क्रोष्टा' इति।

क्रोष्टुः—क्रोष्टुशब्दात् ङसि 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' इति तृज्वद्भावे 'ऋत उत्' इत्युत्वे रपरत्वे 'रात् सस्य' इति सलोपे 'खरवसानयोः–' इति रेफस्य विसर्गे 'क्रोष्टुः' इति। तृज्वद्भावाभावपक्षे 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायां 'घेर्ङिति' इति गुणे 'ङसिङसोश्च' इति पूर्वरूपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'क्रोष्टोः' इति।

ऋदु—सम्बुद्धि से भिन्न सु के परे रहते–ऋदन्त तथा उशनस्, पुरुदंसस् और अनेहस् शब्दों को अनङ् आदेश होता है।

अप्तृन्—असंबुद्धि सर्वनामस्थान के परे अप् तथा तृन्, तृच्, प्रत्ययान्त शब्द और स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षतृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ, शब्दों को दीर्घ होता है।

विभा—अजादि तृतीयादि विभक्ति के परे क्रोष्टु शब्द को विकल्प से क्रोष्टृ आदेश होता है।

ऋत्—ङस् और ङस् सम्बन्धी अकार के परे ऋकार एवं अकार को उत् आदेश होता है।

रात्—रेफ से पर यदि संयोगान्त का लोप हो तो सकार का ही हो।

क्रोष्ट्रोः (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन) क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । हूहूः । हूह्वौ । हूह्वः । हूहूम् । इत्यादि । अतिचमूः । अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः । हे अतिचमु । अतिचम्वै । अतिचम्वाः । अतिचमूनाम् । खलपूः । **ओः सुपि** ६।४।८३। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तौ यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि । खलप्वौ । खलप्वः । एवं सुल्वादयः । स्वभूः । स्वभुवौ । स्वभुवः । वर्षाभूः । **वर्षाभ्वश्च** ६।४।८४। अस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सुपि । वर्षाभ्वावित्यादि । दृन्भूः । (दृन्कारपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः (दृन्भ्वौ । एवं करभूः । धाता । हे धातः । धातारौ । धातारः (ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्) धातॄणाम् । एवं नप्त्रादयः । नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । तेनेह न । पिता । पितरौ ।

क्रोष्टूनाम्—क्रोष्टुशब्दात् आमि 'विभाषे'ति प्राप्ततृज्वद्भावं प्रबाध्य 'नुमचिरे'ति बलात् पूर्वविप्रतिषेधेन 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे 'क्रोष्टूनाम्' इति ।

नप्त्रादिग्रहणमिति—अयम्भावः—'अप्तृन्तृच्' इति सूत्रे उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि, इति पक्षे नप्त्रादीनां समानां तृन्नन्तत्वात् तृजन्तत्वाच्च तृन्तृज्ग्रहणेनैव दीर्घे सिद्धे नप्त्रादिग्रहणं—सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवतीति सिद्धान्तात् तृन्-तृजन्तानां दीर्घश्चेत् तर्हि नप्त्रादीनामेवेति नियमार्थम् । नियमेन च स्वेतर—स्वजातीयव्यावृत्तिः क्रियते इति नप्त्रादीतरोणादिनिष्पन्नतृन्नत-तृजन्तशब्दानां न दीर्घः । इति ।

नुम्—नुम् तथा अच् के परे रभाव एवं तृज्वद्भाव इन तीनों को पूर्वविप्रतिषेध से नुट् बाध लेता है ।

ओः—धात्ववयव संयोग पूर्व में नहीं है, ऐसा जो उवर्ण, तदन्त जो धातु तदन्त जो अनेकाच् अंग, उसको यण् होता है, अजादि विभक्ति के परे ।

वर्षा—अजादि सुप् विभक्ति के परे वर्षाभू शब्द को यण् होता है ।

दृन्—अजादि सुप् विभक्ति के परे दृन्, कर तथा पुनर् पूर्वक 'भू' को यण् होता है ।

ऋव—ऋवर्ण से पर नकार को णत्व होता है ।

पितरः । पितरम् । शेषं धातृवत् । एवं जामात्रादयः । ना । नरौ । **नृ च** ६।४।६। अस्य नामि वा दीर्घः स्यात् । नृणाम्-नॄणाम् । **गोतो णित्** ७।१।९०। ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात् । गौः । गावौ । गावः । **औतोऽम्-शसोः** ६।१।९३। ओतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः स्यात् । गाम् । गावौ । गाः । गवा । गवे । गोः २ । इत्यादि । **रायो हलि** ७।२।८५। रैशब्दस्याकारादेशो हलि विभक्तौ । राः । रायौ । रायः । राभ्यामित्यादि । ग्लौः । ग्लावौ । ग्लावः । ग्लावम् । ग्लावौ । ग्लावः । ग्लौभ्यामित्यादि ।

इत्यजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम् ।

—: ऽ०ऽ :—

नॄणाम्—नृशब्दात् आमि 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घं बाधित्वा 'नृ च' इति विभाषया दीर्घे 'ऋवर्णान्नस्य—' इति णत्वे 'नॄणाम्' इति । दीर्घाभावे 'नृणाम्' इति ।

इत्यजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम् ।

—: ० :—

नृ च—नाम् शब्द के परे 'नृ' के ऋकार को विकल्प से दीर्घ होता है ।

गोतो—गो शब्द से पर सर्वनामस्थान विभक्ति णिद्वत् होता है ।

औतो—ओकार से पर अम् शस् सम्बन्धी अच् के परे पूर्व-पर के स्थान में आकारादेश होता है ।

रायो—हलादि विभक्ति के परे 'रै' शब्द को अकारान्त आदेश होता है ।

अजन्तपुंल्लिग प्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

रमा । **औङ आपः** ७।१।१८। आबन्तादङ्गात् परस्यौङः शी स्यात् । औङित्यकौकारविभक्तेः संज्ञा । रमे । रमाः । **सम्बुद्धौ च** ७।३।१०६। आप एकारः स्यात्सम्बुद्धौ । एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः । हे रमे । रमाः । रमाम् । रमे । रमाः । **आङि चापः** ७।३।१०५। आङि ओसि चाप एकारः स्यात् । रमया । रमाभ्याम् । रमाभिः । **याडापः** ७।३।११३। आपः परस्य ङिद्वचनस्य वृद्धिः । रमायै । रमाभ्याम् । रमाभ्यः । रमायाः । रमयोः । रमाणाम् । रमायाम् । रमासु । एवं दुर्गाम्बिकादयः । **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च** ७।३।११४। आबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः । सर्वस्यै । सर्वस्याः । सर्वासाम् । सर्वस्याम् । शेषं रमावत् । एवं विश्वादय आबन्ताः । **विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ** १।१।२८। अत्र सर्वनामता वा स्यात् । उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै, (तीयस्येति वा संज्ञा) द्वितीयस्यै । एवं तृतीया । अम्बार्थेति

सर्वस्यै—सर्वाशब्दात् ङे विभक्तौ 'याडापः' इति याटं प्रबाध्य 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' इति स्याटि आपो ह्रस्वे अनुबन्धलोपे 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'सर्वस्यै' इति ।

सर्वस्याम्—सर्वाशब्दात् ङिविभक्तौ 'ङे राम्नद्याः—' इति ङेरामि स्थानिवद्भावेन ङित्वमादाय 'सर्वनाम्नः स्याड्—' इति स्याटि आपो ह्रस्वे च विहिते 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे 'सर्वस्याम्' इति ।

औङ्—आबन्त अंग से पर औकार विभक्ति के स्थान में 'शि' आदेश होता है । **सम्बुद्धौ**—सुम्बुद्धि के परे आबन्त अंग को एकार आदेश होता है ।

आङि—आङ् और ओस् के परे आप् को एकारादेश होता है ।

या—आबन्त अंग से पर द्विवचन को याट् का आगम होता है ।

सर्व—आवन्त सर्वनाम से पर द्विवचन को स्याट् और आप् को ह्रस्व होता है । **विभा**—बहुव्रीहि समास में दिग्वाचक शब्दों को सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होता है ।

तीय—तीय प्रत्ययान्त की सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होती है ।

ह्रस्वः । हे अम्ब ! हे अक्क! हे अल्ल ! जरा । जरसौ । इत्यादि । पक्षे हलादौ च रमावत् । गोपा विश्वपावत् । मतिः । मत्या । **ङिति ह्रस्वश्च** १।४।६। इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति । मत्यै । मतये । मत्याः २ । मतेः २ । **इदुद्भ्याम्** ७।३।११७। इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम् स्यात् । मत्याम् । मतौ । शेषं हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः । **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ चतसृ** ७।२।९९। स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ । **अचि र ऋतः** ७।२।१००। तिसृचतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः । तिस्रः ।

मत्याम्—मतिशब्दात् ङिविभक्तौ 'ङिति ह्रस्वश्च' इति नदीसंज्ञायाम् 'इदुद्भ्याम्' इति ङेरामि स्थानिवद्भावेन ङित्वमादाय 'आण्नद्याः' इत्याटि 'आटश्च' इति वृद्धौ 'इको यणचि' इति यणि 'मत्याम्' इति । नदीत्वाऽभावे 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायाम् 'अच्च घेः' इति ङेरौत्वे घेरकारादेशे च कृते 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'मतौ' इति ।

तिस्रः—त्रिशब्दात् जसि अनुबन्धलोपे 'त्रिचतुरोः–' इति त्रिशब्दस्थाने तिसृआदेशे कृते 'ऋतो ङि' ति गुणे प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'प्रथमयोः–' इति पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते तमपि प्रबाध्य 'अचि र ऋतः' इति ऋकारस्य रेफादेशे सस्य रुत्वे विसर्गे 'तिस्रः' इति ।

ङिति—इयङ्-उवङ् का स्थानी हो तथा स्त्रीशब्द से भिन्न हो और नित्य स्त्रीलिंग हो, ऐसा जो दीर्घ ईकारान्त, ऊकारान्त शब्द और चकारात् ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द उनकी ङित् के परे विकल्प से नदीसंज्ञा होती है ।

इदुद्—नदीसंज्ञक ह्रस्व इकार, उकार से पर ङि को आम् आदेश होता है ।

त्रिच—विभक्ति के परे स्त्रीलिंग में वर्तमान त्रि और चतुर् शब्द के स्थान में यथाक्रम से तिसृ, चतसृ आदेश होता है ।

अचि—अच् विभक्ति के परे तिसृ, चतसृ शब्द सम्बन्धी ऋ के स्थान में रेफादेश होता है ।

गुण—'ऋतो ङि' 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घः' 'ऋत उत्' इन तीनों सूत्रों का 'अचि र ऋतः' सूत्र बाधक है ।

तिसृभिः । तिसृभ्यः । तिसृभ्यः । आमि नुट् । **न तिसृचतसृ** ६।४।४ एतयो-र्नामि दीर्घो न स्यात् । तिसृणाम् । तिसृषु । द्वे । द्वे । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः । गौरी । गौर्यौ । गौर्यः । हे गौरि । गौर्यौ । इत्यादि । एवं । नद्यादयः । लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्यादयः । स्त्री । **स्त्रियाः** ५।३।७९। अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे । स्त्रियौ । स्त्रियः । **वाम्शसोः** ६।४।८०। अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात् । स्त्रियम् । स्त्रीम् । स्त्रियः । स्त्रीः । स्त्रियै । स्त्रियाः । परत्वान्नुट् स्त्रीणाम् । स्त्रीषु । श्रीः । श्रियौ । श्रियः । **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** १।४।४ इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री । हे श्रीः । श्रियै, श्रिये । श्रियोः । श्रियः । **वामि** १।४।५।

तिसृणाम्—त्रिशब्दात् 'आमि 'त्रिचतुरोः–' इति तिस्रादेशे 'नुमिचिरे'ति बलात् 'अचि र ऋतः' इति प्राप्तं रेफादेशं प्रबाध्य 'ह्रस्वनद्यापः–' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे प्राप्ते 'न तिसृचतसृ' इति निषेधे ऋवर्णान्नस्य-' इति णत्वे 'तिसृणाम्' इति ।

स्त्रियम्—स्त्रीशब्दात् अमि 'वाऽम्शसोः' इति इयङि अनुबन्धलोपे 'स्त्रियम्' इति । इयङाभावपक्षे 'अमि पूर्वरूपे 'स्त्रीम्' इति ।

स्त्रीणाम्—स्त्रीशब्दात् आमि 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' इति नदीसंज्ञायां 'ह्रस्व नद्यापः–' इति नुटि अनुबन्धलोपे पर्यन्यवल्लक्षणप्रवृत्त्या 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्–' इति णत्वे 'स्त्रीणाम्' इति ।

श्रियै—श्रीशब्दात् ङेविभक्तौ 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' इति नदीसंज्ञायां प्राप्तायां

न तिसृ—तिसृ, चतसृ शब्द को नाम् के परे दीर्घ नहीं होता है।

स्त्रियाः—अणादि प्रत्यय के परे स्त्री शब्द को इयङ् आदेश होता है।

वाऽम्—अम्, शस् विभक्ति के परे स्त्री शब्द को विकल्प से अमादेश होता है।

नेयङ्—इयङ्-उवङ् के स्थानी दीर्घ ईकार-ऊकार की नदीसंज्ञा नहीं होती है—स्त्री शब्द को छोड़ कर।

वामि—आम् विभक्ति के परे इयङ् स्थानी नित्य स्त्रीलिंग जो दीर्घ

इयङुवङ्स्थानी स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री। श्रीणाम्, श्रियाम्। श्रियि, श्रियाम्। धेनुर्मतिवत्। **स्त्रियां च** ७।१।९६। स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** ४।१।५ ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् स्यात्। क्रोष्ट्री। गौरीवत्। भ्रूः श्रीवत्। स्वयम्भूः पुंवत्। **न षट्स्वस्रादिभ्यः** ४।१।१०। षट्संख्यकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप्टापौ न स्तः।

'स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः'' ॥

स्वसा। स्वसारौ। माता पितृवत्। शसि मातॄः। द्यौर्गोवत्। राः पुंवत्। नौग्लौवत्।

इति अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्।

----: ० :----

'नेयङुवङ्–' इति निषेधे 'ङिति ह्रस्वश्च' इति विभाषया नदीसंज्ञायाम् 'आण्नद्याः' इत्यादि 'आटश्च' इति वृद्धौ 'अचिश्नुधातु—' इति इयङि अनुबन्धलोपे 'श्रियै' इति। नदीसंज्ञाऽभावे इयङि 'श्रिये' इति।

श्रीणाम्––श्रीशब्दात् आमि 'वामि' इति नदीसंज्ञायां 'ह्रस्वनद्यापः–' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्–' इति णत्वे 'श्रीणाम्' इति। नदीसंज्ञाभावे इयङि 'श्रियाम्' इति।

इति अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्।

: ० :

ईकारान्त, ऊकारान्त शब्द उनकी नदीसंज्ञा विकल्प से होती है–स्त्रीशब्द को छोड़ कर।

स्त्रियां—स्त्रीवाची क्रोष्टु शब्द पुंल्लिग के समान स्त्रीलिंग में भी ऋकारान्त होता है अर्थात् क्रोष्टु के स्थान में 'क्रोष्टृ' हो जाता है।

ऋन्ने—स्त्रीलिंग में ऋदन्त तथा नान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है।

न षट्—षट्संज्ञक तथा स्वस्रादि गणपठित शब्दों से स्त्रीलिंग में भी ङीप् और टाप् प्रत्यय नहीं होता है।

अजन्तस्त्रीलिंगप्रकरण समास

---- ० ---

अथ अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

अतोऽम् ७।१।२४। अतोऽङ्गात् क्लीबात्स्वमोरम् स्यात्। अमि पूर्वः। ज्ञानम्। एङ्ह्रस्वादिति हल्मात्रलोपः। हे ज्ञान। नपुंसकाच्च ७।१।१९। क्लीबादौङः शी स्यात्। भसंज्ञायाम्। यस्येति च ६।४।१४८। ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः स्यात्। इत्यलोपे प्राप्ते (औङः श्यां प्रतिषेधः) ज्ञाने। जश्शसोः शिः ७।१।२०। क्लीबादनयोः शिः स्यात्। शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२। शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात्। नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२। झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने। मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७। अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तादयवो मित्स्यात्। उपधा-

---

ज्ञाने—'ज्ञान औ' इति स्थिते 'नपुंसकाच्च' इत्यौकारस्य शीत्वे अनुबन्धलोपे 'यचि भम्' इति भत्वात् 'यस्येति च' इत्यकारलोपे प्राप्ते 'औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः' इति निषेधे 'आद्गुणः' इति गुणे 'ज्ञाने' इति।

अतो—अदन्त नपुंसक अंग से पर सु और अम् को 'अम्' आदेश होता है।

नपुं—नपुंसक अंग से पर औङ् के स्थान में शी आदेश होता है।

यस्येति—ईकार और तद्धित प्रत्यय के परे भसंज्ञक इवर्ण और अवर्ग का लोप होता है।

औङः—औङः स्थानिक शी के परे भसंज्ञक इवर्ण और अवर्ण का लोप नहीं होता है।

जश्श—नपुंसक अंग से पर जस्-शस् के स्थान में 'शि' आदेश होता है।

शि सर्व—जस्-शस् के स्थान में आदेश 'शि' की सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है।

नपुं—सर्वनामस्थान विभक्ति के परे झलन्त और अजन्त नपुंसक को नुम का आगम होता है।

मिद—अचों के मध्य में अन्त्य जो अच् उससे पर और उसीके अन्त्यावयव होकर नुमादि कार्य होता है।

दीर्घः । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । एवं धनवनफलादयः । **अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः** ७।१।२५। एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात् । **टेः** ६।४।४३। डिति परे भस्य टेर्लोपः स्यात् । कतरत्, कतरद् । कतरे । कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुंवत् । एवं कतमत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । अन्यतमस्य त्वन्यतममित्येव । (**एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः**) एकतरम् । **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** १।२।४७। क्लीबे प्रातिपदिकस्याजन्तस्य च ह्रस्वः स्यात् । श्रीपम् । ज्ञानवत् । **स्वमोर्नपुंसकात्** ७।१।२३। क्लीबादङ्गात्परयोः स्वमोर्लुक् स्यात् । वारि । **इकोऽचि विभक्तौ** ७।१।७३। इगन्तस्य क्लीबस्य नुम् स्यादचि

ज्ञानानि—ज्ञानशब्दात् जसि 'जश्शसोः शिः' इति जसः स्थाने शित्वे 'शि सर्वनामस्थानम्' इति 'शि' इत्यस्य सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'नपुंसकस्य झलचः' इति 'मिदचोऽन्त्यात् परः' इति सहकारात् अन्त्याज्रूपस्य नस्यान्त्यावयवीभूते नुमि अनुबन्धलोपे 'ज्ञानन् शि' इति जाते शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'सर्वनामस्थाने—' इति दीर्घे 'ज्ञानानि' इति ।

त्रीणि—त्रिशब्दात् जसि 'जश्शसोः शिः' इति जसः स्थाने श्यादेशे 'शि सर्वनामस्थानम्' इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुमागमे मित्वादन्त्यावययादचः परे जाते उभोर्लोपे 'सर्वनामस्थाने—' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्—' इति णत्वे 'त्रीणि' इति ।

अद्ड्—डतर डतमादि पाँचों नपुंसक से पर सु और अम् को अद्ड् आदेश होता है ।

टेः—डित् के परे भसंज्ञक टि का लोप होता है ।

एकत—नपुंसक में वर्तमान एकतर शब्द से पर सु तथा अम् को अद्ड् आदेश नहीं होता है ।

ह्रस्वो—नपुंसक में वर्तमान अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है ।

स्वमो—नपुंसक अंग से पर सु और अम् विभक्ति का लुक् (लोप) होता है ।

इको—आजादि विभक्ति के परे इगन्त नपुंसक को नुम् का आगम होता है ।

विभक्तौ। वारिणी। वारीणि। न लुमतेत्यस्यानित्यत्वपक्षे सम्बुद्धिनिमितो गुणः। हे वारे, हे वारि। आङो ना। वारिणा। घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते (**वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन**) वारिणे। वारिणः। वारिणोः। नुमचिरेति नुट्। वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्। **अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः** ७।१।७५। एषामनङ् स्यात् टादावचि स चोदात्तः। **अल्लोपोऽनः** ६।४।१३४। अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानमजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः स्यात्। दध्ना। दध्ने। दध्नोः। दध्नाम्। **विभाषा ङिश्योः** ६।४।१३६। अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः। दध्नि-दधनि। शेषं वारिवत्।

वारिणे—वारिशब्दात् ङे विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'शेषो घ्यसखि' इति घित्वात् 'घेर्ङिति' इति-गुणे प्राप्ते 'वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावेभ्यः—' इति पूर्वविप्रतिषेधस्य प्रबलत्वात् 'इकोऽचि विभक्तौ' इति नुमि णत्वे च कृते 'वारिणे' इति।

वारीणाम्—वारिशब्दात् आमि 'वारि आम्' इति स्थिते परत्वान्नुटं बाधित्वा 'इकोऽचि विभक्तौ' इति नुमि प्राप्ते 'नुमचिरे'ति पूर्वविप्रतिषेधेन नुटि 'नामि' इति दीर्घे णत्वे च कृते 'वारीणाम्' इति।

दध्ना—दधिशब्दात् टाविभक्तौ 'अस्थिदधि—' इति दधिशब्दस्य इकारस्य अनङि अनुबन्धलोपे 'यचि भम्' इति भत्वात् 'अल्लोपो नः' इत्यनोऽकारस्य लोपे 'दध्ना' इति।

दध्नि—दधिशब्दात् ङिविभक्तौ 'अस्थिदधि—' इत्यनङि 'विभाषा ङिश्योः' इति अन्सम्बन्धिनोऽकारस्य लोपे 'दध्नि' इति। लोपाऽभावपक्षे 'दधनि' इति।

वृद्ध्यौ—वृद्धि, औत्व, तृज्वद्भाव तथा गुण को बाध कर पूर्वविप्रतिषेधेन नुम् ही होता है।

अस्थि—टादि अजादि विभक्ति के परे—अस्थि, दधि, सक्थि तथा अक्षि शब्द को उदात्त अनङ् आदेश होता है।

अल्लो—अंगावयव असर्वनामस्थान यादि तथा अजादि स्वादि प्रत्ययपरक अन् के अकार का लोप होता है।

विभा—'अल्लोपोऽनः' सूत्र से विहित अकार का लोप ङि और शी के परे विकल्प से होता है।

एवमस्थिसक्थ्यक्षि । सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे, हे सुधि । **तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य ७।१।७४।** प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा स्यात् टादावचि । सुधिया, सुधिनेत्यादि । मधु । मधुनी । मधूनि । हे मधो । हे मधु । सुलु । सुलुनी । सुलूनि । सुल्वा, सुलुनेत्यादि । धातृ । धातृणी । धातॄणि । हे धातः । हे धातृ । धात्रा, धातृणा । धातॄणाम् । एवं ज्ञात्रादयः । **एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८।** आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात् । प्रद्यु । प्रद्युनी । प्रद्यूनि । प्रद्युनेत्यादि । प्ररि, प्ररिणी । प्ररीणि । प्ररिणा । एकदेशविकृतमनन्यवत् । प्रराभ्याम् । सुनु । सुनुनी । सुनूनि । सुनुनेत्यादि ।

इति अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

—: ० :—

तृतीयादिष्विति—भाषितः पुमान् येन प्रवृत्तिनिमित्तेन तत् भाषितपुंस्के प्रवृत्तनिमित्तम्, तदस्यास्तीति अर्श आद्यच् ।

सुधिया-सुधिना—सुष्टु ध्यायतीति विग्रहे सुध्यातृत्वस्य शोभनज्ञानवत्वस्य वा प्रवृत्तनिमित्तस्य पुंसि नपुंसके च एकत्वात् पुंवत्वविकल्पः । तेन पुँवद्भावपक्षे अजादौ विभक्तौ परे 'अचि श्नुधातु–' इति इयङि 'सुधिया' इति । पुंवद्भावाभावपक्षे नुमि 'सुधिना' इति ।

प्रराभ्याम्—प्रकृष्टः राः धनं यस्येति विग्रहः । प्रैशब्दस्य 'ह्रस्वो नपुंसके' इति ह्रस्वे प्राप्ते 'एच इग्घ्रः स्वादेशे' इति ऐकारस्य इकारे 'प्ररि' इति । तस्मात् भ्यामि 'एकदेशविकृतन्यायेन 'रायो हलि' इत्यात्वे 'प्रराभ्याम्' इति । इति अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

—: ऽ•ऽ :—

तृती—प्रवृत्तनिमित्त एक निमित्त रहने पर भाषितपुंसक इगन्त क्लीब को पुंवद्भाव होता है, टादि अजादि विभक्ति के परे विकल्प से ।

एच—एच् के स्थान में इक् को ही ह्रस्वविधान होता है ।

अजन्तनपुंसकलिंग समाप्त ।

—: • :—

अथ हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्

हो ढः ८।२।३१। हस्य ढः स्यात् झलि पदान्ते च लिट्, लिड् । लिहौ । लिहः । लिड्भ्याम् । लिट्सु । लिट्त्सु । दादेर्धातोर्घः ८।२।३२। झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्यात् । एचाजो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३। धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् स्यात् से ध्वे पदान्ते च । धुक्, धुग् । दुहौ । दुहः । धुग्भ्याम् । धुक्षु । वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८।२।३३। एषां हस्य वा घः स्यात् झलि पदान्ते । ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्, द्रुहौ, द्रुहः । ध्रुग्भ्याम् । ध्रुड्भ्याम् । ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु । एवं मुह् । धात्वादेः षः सः ६।१।६४। धातोरादेः षस्य सः स्यात् । स्नुट्, स्नुड् स्नुक्, स्नुग् । एवं स्निह् । इग्यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५। यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात् । वाह ऊठ्

लिट्त्सु—लिह् शब्दात् सुपि पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'लिह् सु' इति स्थिते 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे स्वादिष्विति पदत्वात् 'झलां जशोऽन्ते' इति ढस्य डत्वे 'डसि धुट्' इति सस्य धुडागमे अनुबन्धलोपे 'खरि च' इति धस्य चर्त्वेन तकारे पुनः 'खरि च' इति डस्य चर्त्वेन टकारे 'लिट्त्सु' इति । धुडभावपक्षे 'लिट्सु' इति ।

हो ढः—झल् के परे पदान्त हकार के स्थान में ढकारादेश होता है ।

दादे—झल् के परे उपदेशावस्था में दादि धातु सम्बन्धी पदान्त हकार के स्थान में घकारादेश होता है ।

एका—सकार और ध्व शब्द के परे धात्वयव जो झषन्त एकाच, तदवयव जो पदान्त 'बश्' उसको भषभाव होता है ।

वा द्रु—झल् के परे–द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह् धातु के पदान्त हकार को विकल्प से घकारादेश होता है ।

धात्वा—उपदेशावस्था में धातु के आदि षकार को सकारादेश होता है ।

इग्—यण् के स्थान में प्रयुज्यमान 'इक्' सम्प्रसारणसंज्ञक होता है ।

वाह—भसंज्ञक वाह को सम्प्रसारण ऊठ् होता है ।

६।४।१३२। भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ् स्यात्। **सम्प्रसारणाच्च** ६।१।१०८। सम्प्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। वृद्धिः। विश्वौहः। इत्यादि। **चतुरनडुहोरामुदात्तः** ७।१।९८। अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे। **सावनडुहः** ७।१।८२। अस्य नुम् स्यात् सौ परे। अनड्वान्। **अम् सम्बुद्धौ** ७।१।९९। चतुरनडुहोरम्स्यात्संबुद्धौ। हे अनड्वन्। अनड्वाहौ। अनड्वाहः। अनडुहः। अनडुहा। **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** ८।२।७२। सान्तस्य वस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते। अनडुद्भ्यामित्यादि। सान्तेति किम्? विद्वान्। पदान्ते किम्?

विश्वौहः—विश्वाह् शब्दात् शसि शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां 'वाह ऊठ्' इत्यनेन 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' इति बलात् वरूपस्य यणः स्थाने ऊकाररूपे सम्प्रसारणे कृते 'विश्वऊ आह् अस्' इति जाते 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'एत्येधत्यूठ्सु' इति वृद्धौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'विश्वौहः' इति।

अनड्वान्—अनडुह् शब्दात् सौ 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' इत्यामि अनुबन्धलोपे 'सावनडुहः' इति नुमि उमि गते 'हल्ङ्याभ्यः—' इति सोर्लोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति हलोपे अकारोत्तरवर्तिनः उकारस्य यणि 'अनड्वान्' इति। हलोपे कृते 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपस्तु न, 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वात्।

सम्प्र—सम्प्रसारण से अच् पर में रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो जाता है।

चतु—सर्वनामस्थान के परे चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् का आगम होता है।

साव—सु के परे अनडुह् शब्द को नुम् का आगम होता है।

अम्—सम्बुद्धि के परे चतुर् और अनडुह् शब्द को अम् का आगम होता है।

वसु—सान्त जो वस्वन्त और संस्रादि, उसको दकारादेश होता है, पदान्त में।

सूस्तम्, ध्वस्तम् । **सहेः साडः सः** ८।३।५६। साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । तुराषाट् । तुराषाड् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि । **दिव औत्** ७।१।८४। दिवीति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात्सौ । सुद्यौः । सुदिवौ । **दिव उत्** ६।१।१३१। दिवोऽन्तादेशे उकारः स्यात् पदान्ते । सुद्युभ्याम्, इत्यादि । चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः । **षट् चतुर्भ्यश्च** ७।१।५५। षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्च परस्यामो नुडागमः स्यात् । **रषाभ्यां नो णः समानपदे** ८।४।१। एकपदस्थाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् समानपदे । **अचो रहाभ्यां द्वे** ८।४।४६। अचः परभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः । चतुर्ण्णाम्, चतुर्णाम् । **रोः सुपि** ८।३।१६। सप्तमीबहुवचने रोरेव विसर्गः सुपि । षत्वम् । षस्य दित्वे प्राप्ते । **शरोऽचि** ८।४।४९। अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्षु । **मो नो धातोः** ८।२।६४। धातोर्मस्य नः स्यात् पदान्ते । प्रशान् ।

चतुर्ण्णाम्—चतुर् शब्दात् आमि 'षट् चतुर्भ्यश्च' इति आमो नुडागमे टित्वात् आद्यावयवे उटि गते 'रषाभ्यां नो णः–' इति णत्वे 'अचो रहाभ्यां द्वे' इति विभाषया णस्य द्वित्वे 'चतुर्ण्णाम्' इति ।

चतुर्षु—चतुर् शब्दात् सुपि 'चतुर् सु' इति स्थिते 'खरवसानयोः'–' इति रेफस्य विसर्गे प्राप्ते 'रोः सुपि' इति निषेधे 'आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षत्वे 'अचोरहाभ्यां द्वे' इति षस्य द्वित्वे प्राप्ते 'शरोऽचि' इति निषेधे 'चतुर्षुइति' ।

सहेः—साड् रूप सह् के सकारके स्थान में मूर्धन्य षकार आदेश होता है।

दिव—सु के परे दिवन्तप्रातिपदिक के दिव् को औत् आदेश होता है ।

दिव उत्—प्रातिपदिक दिव् को उकारान्तादेश होता है, पदान्त में ।

षट्—षट्संज्ञक और चतुर्शब्द से पर आम् को नुडागम होता है ।

रषा—समान पद (एकपद) में रेफ और षकार से पर नकार को णत्व होता है। **अचो**—अच्-से पर जो रेफ, हकार और उससे पर जो 'यर्' उसको विकल्प से द्वित्व होता है।

रोः—सप्तमी बहुवचन सुप् के परे रु-सम्बन्धी रेफ के स्थान में ही विसर्ग होता है—अन्य रेफ का नहीं ।

मो नो—मान्त धातु के पदान्त मकार को नकरादेश होता है ।

किमः कः ७।२।१०३। किमः कः स्यात् विभक्तौ । कः । कौ । के । इत्यादि । शेषं सर्ववत् । **इदमो मः** ७।२।१०८। इदमो मस्य मः स्यात् सौ परे, त्यदाद्यत्वापवादः । **इदोऽय् पुंसि** ७।२।१११। इदम इदोऽय् स्यात् सौ पुंसि । अयम् । त्यदाद्यत्वे । **अतो गुणे** ६।१।९७। अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः स्यात् । **दश्च** ७।२।१०९। इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । इमौ । इमे । त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः । **अनाप्यकः** ७।२।११२। अककारस्येदम इदोऽन् स्यादापि विभक्तौ । आबिति टा इत्यारभ्य सुपः पकारेण प्रत्याहारः । अनेन । **हलि लोपः** ७।२।११३। अकारस्येदम इदो लोपः स्यादापि हलादौ । **(नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे) आद्यन्तवदेकस्मिन्** १।१।२१। एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् । सुपि चेति दीर्घः ।

अयम्—इदम् शब्दात् सौ 'इदम् स्' इति स्थिते 'त्यादीनामः' इति अत्वं प्रबाध्य 'इदमो मः' इति इदमो मस्य मत्वे 'इदोऽय पुंसि' इति इदमः इद्भागस्य अयादेशे 'हल्ङ्याभ्यः—' इति सलोपे 'अयम्' इति ।

किम—विभक्ति के परे किम् के स्थान में कः आदेश होता है ।

इदमो—'सु' विभक्ति के परे इदम् के मकार के स्थान में मकार ही आदेश होता है ।

इदो—पुंल्लिंग में सु विभक्ति के परे 'इदम्' सम्बन्धी इद् के स्थान में 'अय्' आदेश होता है ।

अतो—अत् से पर गुण सम्बन्धी ए, ओ के रहते पूर्व-पर के स्थान में पररूप आदेश होता है ।

दश्च—'सु' भिन्न विभक्ति के परे इदम् के दकार को मकारादेश होता है।

अना—आप् विभक्ति के परे ककार रहित इदम् के इद् को अन् आदेश होता है ।

हलि—हलादि विभक्ति के परे ककार रहित इदम् के इद् का लोप होता है ।

नान—अनभ्यास विकार में 'अलोन्त्य' परिभाषा की प्रवृति नहीं होती है।

आद्य—असहाय में क्रियमाण जो कार्य वह आदि तथा अन्त्य की तरह होता है ।

आभ्याम् । नेदमदसोरकोः ७।१।११। अककारयोरिदमदसोर्भिस् ऐस् न स्यात् । एभिः । अस्मै । एभ्यः । अस्मात् । अस्य । अनयोः । एषाम् । अस्मिन् । अनयोः । एषु । द्वितीयाटौस्स्वेनः २।४।६४। द्वितीयायां टौसोश्च परतः इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे । किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा "अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति" । "अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति" । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः । एतयोः । राजा । न ङिसम्बुद्ध्योः ८।२।८। नस्य लोपो न स्यात् ङौ सम्बुद्धौ च । हे राजन् । (ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः) ब्रह्माणि निष्ठः, ब्रह्मनिष्ठः ।

आभ्याम्—इदम् शब्दात् भ्यामि 'इदम् भ्याम्' इति स्थिते 'त्यदादीनामः' इत्यत्वे 'अतो गुणे' इति-पररूपे 'इद भ्याम्' इति जाते 'हलि लोपः' इति इद्भागस्य लोपे प्राप्ते 'अलोन्त्यस्य' इति अन्त्यस्य लोपे प्राप्ते 'नानर्थके'ति परिभाषया इद्भागस्यैव लोपे 'अभ्याम्' इति जाते 'सुपि च' इति दीर्घे प्राप्ते परमत्र विद्यमानस्य अकारस्य अदन्तत्वं वर्तते न वेति शङ्कायाम् 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इति एकस्मिन्नेव अकारे अन्तवद्भावेन अदन्तत्वं मत्वा दीर्घे कृते 'आभ्याम्' इति ।

एषाम्—'इदम् आम्' इति स्थिते 'त्यादादीनामः' इत्यत्वे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इति सुटि उटि गते 'इद साम्' इति जाते 'हलि लोपः' इति इद्भागस्य लोपे 'अ साम्' इति स्थिते 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इति एकस्मिन् अकारे अदन्तत्वमानीय 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे 'एषाम्' इति ।

नेद—ककार रहित इदम् तथा अदस् सम्बन्धी भिस् को ऐस् नहीं होता है।

द्विती—अन्वादेश में द्वितीया तथा टा और ओस् विभक्ति के परे इदम् शब्द को एन् आदेश होता है।

किंचित्—किसी कार्य के विधान के लिए जिसका उपादान किया गया हो, उसीका कार्यान्तर विधान के लिए पुनः उपादान करना 'अन्वादेश' कहा जाता है।

न ङि—ङि और सम्बुद्धि के परे नकार का लोप नहीं होता है।

ङावु—उत्तर पदपरक ङी के परे नलोप का प्रतिषेध होता है।

राजानौ। राजानः। राज्ञः। **न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति** ८।२।२। सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र। राजाश्व इत्यादौ। इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न। राजभ्याम्। राजभिः। राजभ्यः। राज्ञि। राजनि। राजसु। यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः। **न संयोगाद्वमन्तात्** ६।४।१३७। वकारमकारान्तसंयोगात्परस्यानोऽकारस्य लोपो न स्यात्। यज्वनः। यज्वना। यज्वभ्याम्। ब्रह्मणः। ब्रह्मणा। **इन्हन्पूषार्यम्णां शौ** ६।४।१२। एषां शावेवोपधाया दीर्घो नाऽन्यत्र इति निषेधे प्राप्ते। **सौ च** ६।४।१३। इन्नादीनमुपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सौ। वृत्रहा। हे वृत्रहन्। **एकाजुत्तरपदे णः** ८।४।१२। एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य

राज्ञः—राजन्-शब्दात् शसि अनुबन्धलोपे 'राजन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'अल्लोपोऽनः' इति असोऽकारस्य लोपे 'स्तो श्चुना श्चुः इति नस्य श्चुत्वे 'जञोर्ज्ञः' 'राज्ञः' इति।

यज्वनः—यज्वन्-शब्दात् शसि अनुबन्धलोपे 'यज्वन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'अल्लोपो नः' इत्यनोऽकारस्य लोपे प्राप्ते 'न संयोगाद् वमन्तात्' इति निषेधे सस्य रुत्वे विसर्गे 'यज्वनः' इति।

नलो—सुप्, स्वर, संज्ञा तथा कृत्य प्रत्यय के परे तुक् विधि कर्तव्य में ही नलोप असिद्ध हो जाता है।

न सं—वकारान्त, मकारान्त संयोग से पर अन् के अकार का लोप नहीं होता है।

इन्—'शि' के परे-इन्, हन्, पूषन् तथा अर्यमन् की उपधा को दीर्घ होता है।

सौ च—असम्बुद्धि सु के परे इनादि की उपधा को दीर्घ होता है।'

एका—एक अच् है उत्तरपद में जिस समास के, उस समास में पूर्वपदस्थ निमित्तक रेफ-षकार से पर प्रातिपदिकान्त नकार, नुमस्थ नकार तथा विभक्तिस्थ नकार को णकार होता है।

प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः स्यात् । वृत्रहणौ । **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** ७।३।४५। ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वं स्यात् । वृत्रघ्नः इत्यादि । एवं शार्ङ्गिन् । यशस्विन्, अर्यमन्, पूषन् । **मघवा बहुलम्** ६।४।१२८। मघवन् शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः स्यात् । ऋ इत् । **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** ७।१।७०। अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे । दीर्घः । मघवान् । मघवन्तौ । मघवन्तः । हे मघवन् । मघवद्भ्याम् । तृत्वाभावे मघवा । सुटि राजवत् । **श्वयुवमघोनामतद्धिते** ६।४।१३३। अन्नन्तानां भसंज्ञकानामेषामतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात् । मघोनः । मघव-

---

वृत्रघ्नः—वृत्रहन्–शब्दात् शसि अनुबन्धलोपे 'वृत्रहन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'अल्लोपोऽनः' इत्यनोऽकारस्य लोपे 'वृत्रहन् अस्' इति स्थिते 'हो हन्तेः–' इति हस्य घत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'वृत्रघ्नः' इति ।

मघवान्—मघवन्–शब्दात् सौ 'मघवा बहुलम्' इति 'तृ' इत्यन्तादेशे अनुबन्धलोपे 'मघवत् सु' इति जाते 'उगिदचाम्–' इति नुमि उमि गते 'मघवन्त सु' इति स्थिते सोरुकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'हल्ङ्याब्भ्यः–' इति सलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति तलोपे 'मघवा बहुलम्' इति बहुलग्रहणात् संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वाऽभावे 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' इति नान्तस्योपधाया दीर्घे 'मघवान्' इति ।

मघोनः—मघवन्–शब्दात् शसि 'मघवन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' इति सम्प्रसारणे 'मघ उ अ न् अस्' इति

हो—ञित्, णित् प्रत्यय के परे तथा नकार के परे हन् के हकार को कुत्व होता है ।

मघ—मघवन् शब्द को विकल्प से 'तृ' अन्तादेश होता है ।

उगि—सर्वनामस्थान विभक्ति के परे धातुभिन्न उगित् तथा नलोपी अञ्च धातु को नुम् का आगम होता है ।

श्वयु—तद्धित से भिन्न प्रत्यय के परे अन्नन्त भसंज्ञक–श्वन्, युवन् तथा मघवन् रूप अंग को सम्प्रसारण होता है ।

भ्याम् । एवं श्वन् । **न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्** ६।१।३७। सम्प्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः सम्प्रसारणं न स्यात् । इति यकारस्य नेत्वम् । अत एव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं सम्प्रसारणम् । यूनः । यूना । युवभ्याम् इत्यादि । अर्वा । हे अर्वन् । **अर्वणस्त्रसावनञः** ६।४।१२७। नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशः स्यात् न तु सौ । अर्वन्तौ । अर्वन्तः । अर्वद्भ्यामित्यादि । **पथिमथ्यृभुक्षामात्** ७।१।८५। एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे । **इतोऽत्सर्वनामस्थाने** ७।१।८६। पथ्यादेरिकारस्याकारः स्यात् सर्वनामस्थाने परे। **थो न्थः** ७।१।८७। पथिमथोस्थस्य न्थादेशः स्यात् सर्वनामस्थाने परे । पन्थाः ।

स्थिते 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'आद्गुणः' इति गुणे सस्य रुत्वे विसर्गे। 'मघोनः' इति तृत्वाभावे रूपं सिद्धम् ।

यूनः—युवन्–शब्दात् शसि 'युवन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' इति वस्य सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'यु उन् अस्' इत्यवस्थायां यकारस्याऽपि 'श्वयुवे'ति सम्प्रसारणे प्राप्ते 'न सम्प्रसारणे–' इति निषेधे सवर्णदीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'यूनः' इति ।

पन्थाः—'पथिन् सु' इति स्थिते 'पथिमथ्यृ–' इति आकारान्तादेशे 'पथि आ सु' इति जाते 'इतोत्सर्वनामस्थाने' इति थकारान्तःपातिनः इकारस्य अकारादेशे 'थो न्थः' इति थस्य न्थादेशे 'सवर्णदीर्घे' सस्य रुत्वे विसर्गे 'पन्थाः' इति ।

न सम्प्र—सम्प्रसारण के परे पूर्व यण् को सम्प्रसारण नहीं होता है ।

अर्व—सु से भिन्नविभक्ति के परे नञ् से रहित अर्वन् शब्द को 'तृ' अन्तादेश होता है ।

पथि—सु विभक्ति के परे पथ्यादि (पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्) शब्दों को अकारान्त आदेश होता है ।

इतो—सर्वनामस्थान के परे पथ्यादि के इकार को आकारान्तादेश होता है

थो—सर्वनामस्थान के परे पथिन्–मथिन् शब्द सम्बन्धी 'थ' को 'न्थ' आदेश होता है ।

पन्थानौ । पन्थानः । **भस्य टेर्लोपः** ७।१।८८। भसंज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात् । पथः । पथा । पथिभ्याम् । एवं मथिन् । ऋभुक्षिन् । **ष्णान्ता षट्** १।१।२४। षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात् । पञ्चन्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । पञ्च । पञ्च । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः । पञ्चभ्यः । नुट् । **नोपधायाः** ६।४।७। नान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् नामि । पञ्चानाम् । पञ्चसु । **अष्टन आ विभक्तौ** ७।२।८४। अष्टन आत्वं वा स्यात् हलादौ विभक्तौ । **अष्टाभ्य औश्** ७।१।१२। कृताकारादष्टदनः परयोर्जश्शसोरौश् स्यात् । अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृताऽऽत्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति । अष्टौ । अष्टाभिः । अष्टाभ्यः२। अष्टानाम् । अष्टासु । आत्वाभावे अष्ट । पञ्चवत् । **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णि-**

अष्टौ—अष्टन्–शब्दात् जसि शसि च विभक्तौ 'अष्टन आविभक्तौ' इत्यनेनाकारान्तादेशे 'अष्ट आ अस्' इति स्थिते सवर्णदीर्घे 'अष्टाभ्यः औस्' इति औशि अनुबन्धलोपे 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'अष्टौ' इति ।

ननु जश्शसोः परतः अष्टन्–शब्दस्य आत्वं न स्यात्, 'अष्टन आ विभक्तौ' इति आत्वविधौ हलीत्यपकर्षस्य उक्तत्वात्, ततश्च जश्शसोरौश्विधौ कृताकारात् अष्टनः इत्यनुपपन्नमिति चेन्न, एकमात्रालाघवेन 'अष्टभ्य औश्' इति वक्तव्ये 'अष्टाभ्यः' इति दीर्घोच्चारणं क्वचिद् अजादावपि 'अष्टन आविभक्तौ' इति सूत्रविहितमात्वं भवतीति ज्ञापनेनादोषात् ।

अष्टानाम्—अष्टन्–शब्दात् आमि 'ष्णान्ता षट्' इति षट्संज्ञायां 'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुटि उटि गते 'अष्टन आ विभक्तौ' इति वैकल्पिके आत्वे सवर्णदीर्घे 'अष्टानाम्' इति । आत्वाभावपक्षेऽपि षट्संज्ञायां नुटि उटि गते 'नोपधायाः' इति दीर्घे नलोपे 'अष्टानाम्' इति ।

भस्य—भसंज्ञक पथ्यादि की 'टि' का लोप होता है ।

ष्णान्ता—षान्त, नान्त संख्यावाचक शब्द की षट्संख्या होती है ।

नोप—नाम् के परे नान्त की उपधा को दीर्घ होता है ।

अष्ट—हलादि विभक्ति के परे अष्टन् शब्द को आत्व होता है ।

अष्टा—कृताकारक अष्टन् शब्द से पर जस्, शस् को औस् आदेश होता है ।

ऋत्विग्—'ऋतु' शब्दपूर्वक-यज्, धृष्, सृज् दिश् तथा उत्पूर्वक स्निह्, अञ्च्, युज् और क्रुञ्च् धातुओं से क्विन् प्रत्यय होता है ।

गञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ३।१।२९। एभ्यः क्विन् स्यात् अञ्चेस्सुप्युपपदे युञ्जिक्रुञ्चयोः केवलयोः क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते। कनावितौ। **कृदतिङ्** ३।१।९३। अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्। **वेरपृक्तस्य** ६।१।६७। अपृक्तस्य वस्य लोपः स्यात्। **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** ८।२।६२। क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः स्यात् पदान्ते। अस्यासिद्धत्वात् 'चोः कुः' इति कुत्वम्। ऋत्विक्, ऋत्विग्। ऋत्विग्भ्याम्। **युजेरसमासे** ७।१।७१। युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे। सुलोपः संयोगान्तलोपः। कुत्वेन नस्य ङः। युङ्।

ऋत्विक्—ऋतौ उपपदे यज् धातोः 'ऋत्विग्'–इति सूत्रेण क्विनि 'लशक्वतद्धिते' इति क्विनः ककारस्य 'हलन्त्यम्' इति नस्य चेत्संज्ञायां लोपे च कृते इकारस्योच्चारणार्थत्वेन तस्मिन् गते वकारस्य 'अपृक्त एकालप्रत्ययः' इति अपृक्तसंज्ञायां 'वेरपृक्तस्य' इति अपृक्तसंज्ञकस्य वस्य लोपे क्विनः सर्वापहारे 'वचिस्वपि-' इति सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'इको यणचि' इति यणि 'ऋत्विज्' इति स्थिते कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ अनुबन्धलोपे 'ऋत्विज् स्' इति स्थिते 'हल्ङ्याभ्यः–' इति सुलोपे 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति जकारस्य आन्तरतम्यात् कुत्वे गकारे कृते 'वाऽवसाने' इति विभाषया गकारस्य चर्त्वेन ककारे 'ऋत्विक्' इति। चर्त्वाभावे 'ऋत्विग्' इति।

युङ्—'युज्' धातोः सुबुत्पत्तेः प्रागेव 'ऋत्विग्-' इत्यादिना क्विनि क्विनः सर्वापहारे 'कृदतिङ्' इति क्विनः कृत्संज्ञायां कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते सोरुकारे गते 'युजेरसमासे' इति नुमि उमि गते 'हल्ङ्याभ्यः–' इति सुलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति ज्लोपे 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' इति नकारस्य कुत्वेन ङकारे 'युङ्' इति।

कृदतिङ्–धात्वधिकार में विहित तिङ्-भिन्न प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है।

वेर—अपृक्तसंज्ञक वकार का लोप होता है।

क्विन्—क्विन् प्रत्यय जिससे विधान किया जाय उसे कवर्गान्त आदेश होता है, पदान्त में।

युजे—सर्वनामस्थान विभक्ति के परे युज धातु को नुमागम होता है। असमास में।

युञ्जौ । युञ्जः । **चोः कुः** ८।२।३०। चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च। सुयुक् । सुयुजौ । सुयुग्भ्याम् । खन् । खञ्जौ । खन्भ्याम् । **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** ८।२।३६। व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्यात् झलि पदान्ते च। जश्त्वचर्त्वे। राट्, राड् । राजौ । राजः। राड्भ्याम् । एवं विभ्राट्, देवेट्, विश्वसृट् । (परौ व्रजेः षः पदान्ते) परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि । परिव्राट् । परिव्राजौ । **विश्वस्य वसुराटोः** ६।३।१२८। विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे। विश्वाराट्, विश्वाराड् । विश्वराजौ । विश्वाराड्भ्याम् । **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** ८।२।२९। पदान्ते झलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः स्कोर्लोपः स्यात् । भृट्। सस्य श्चुत्वेन शः । 'झलां जश् झशि' इति शस्य जः । भृज्जौ । भृड्भ्याम् । त्यदात्वम् । पररूपत्वम् । **तदोः सः सावनन्त्ययोः** ६।२।१०६। त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात्सौ । स्यः । त्यौ । त्ये । सः । तौ । ते । यः । यौ । ये । एषः एतौ । एते । **ङे प्रथमयोरम्** ७।१।२८। युष्मदस्मद्भ्यां परस्य

विश्वाराट्—विश्वोपपदात् राज्धातोः 'सत्सूद्विष–' इति सूत्रेण क्विपि क्विपः सर्वापहारे 'विश्वराज्' इति, तस्मात् कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ 'व्रश्चभ्रस्ज–' इति जस्य षत्वे 'झलां जशोऽन्ते' इति सस्य डत्वे 'वाऽवसाने' इति डस्य टत्वे 'विश्वस्य वसुराटोः' इति दीर्घे 'विश्वाराट्' इति । पक्षे 'विश्वाराड्' इति।

चोः—झल् के परे चवर्ग को कवर्गादेश होता है, पदान्त में।

व्रश्च—झल् के परे व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज तथा भ्राज् धातुओं को तथा छकारान्त और शकारान्त को षकारान्त आदेश होता है, पदान्त में।

परौ—'परि' उपपदक व्रज् धातु से क्विप् प्रत्यय होता है और उपधा को दीर्घ तथा पदान्त में षत्व भी होता है।

विश्व—वसु और राट् शब्द के परे विश्व शब्द को दीर्घ होता है।

स्कोः—पदान्त झल्परक संयोगादि सकार और ककार का लोप होता है।

तदोः—'स' के परे त्यदादि के अनन्त्य तकार-दकार को सकार होता है।

ङे—युष्मद्-अस्मद् शब्द से पर 'ङे' और प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति को 'अम्' आदेश होता है।

ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चाऽमादेशः स्यात्। **त्वाहौ सौ** ७।२।९४। अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्तः सौ परे। **शेषे लोपः** ७।२।९०। आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतो युष्मदस्मदोर्न्त्यस्य लोपः स्यात्। त्वम्। अहम्। **युवावौ द्विवचने** ७।२।९२। द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ। **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** ७।२।८८। इह युष्मदस्मदोराकारोऽन्तादेशः स्यात्। 'औङ्चेतयोरात्वं लोके' युवाम्। आवाम्। **यूयवयौ जसि** ७।२।९३। अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ स्तो जसि। यूयम्। वयम्। **त्वमावेकवचने** ७।२।९७। एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ। **द्वितीयायां च** ७।२।८७। अनयोरात्स्यात्। त्वाम्। माम्। **शसो नः** ७।१।२९। आभ्यां परस्य शसो नः

त्वम् अहम्—'युष्मद् सु, 'अस्मद् सु' इति स्थिते 'ङे प्रथमयोरम्' इति सोरमादेशे 'युष्मद् अम्' 'अस्मद् अम्' इति जाते 'त्वाहौ सौ' इति युष्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वादेशे अस्मदोर्मपर्यन्तस्य च अहादेशे 'त्व अद् अम्, अह अद् अम्' इति जाते 'अतो गुणे' इति पररूपे 'शेषे लोपः' इति दस्य लोपे 'त्व अम्, अह अम्' इत्यवशिष्टे 'अमि पूर्वः' इति पूर्वरूपे त्वम्, अहम्, इति।

त्वाहौ—'सु' के परे युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भाग को 'त्व' और अह आदेश होता है।

शेषे—आत्व तथा यत्व निमित्तेतर विभक्ति के परे युष्मद्-अस्मद् शब्दों की टि का लोप होता है।

युवा—विभक्ति के परे द्वित्वार्थ-प्रतिपादक युष्मद्-अस्मद् के पर्यन्त भाग को युव और आव आदेश होता है।

प्रथ—प्रथमा-द्विवचन के परे युष्मद्-अस्मद् को आत्व होता है, लोक में।

यूय—जस् के परे युष्मद्-अस्मद् शब्द के पर्यन्त भाग को यूय, वय आदेश होता है।

त्वमा—विभक्ति के परे एकत्वार्थ-प्रतिप्रादक युष्मद्-अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को त्व, म, आदेश होता है।

द्विती—द्वितीयादि विभक्ति के परे युष्मद्-अस्मद् को आकारान्त आदेश होता है। शसो—युष्मद्-अस्मद् शब्द से पर शस् के आदि को नकार आदेश होता है।

स्यात् अमोऽपवादः । आदेः परस्य । संयोगान्तलोपः । युष्मान् । अस्मान् । **योऽचि** ७।२।८९। अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः । त्वया । मया । **युष्मदस्मदोरनादेशे** ७।२।८६। अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः । **तुभ्यमह्यौ ङयि** ७।२।९५। अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्तो ङयि । टिलोपः । तुभ्यम् । मह्यम् । **भ्यसोऽभ्यम्** ७।१।३०। भ्यसो भ्यम् अभ्यम् वा आदेशः स्यात् । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् । **एकवचनस्य च** ७।१।३२। आभ्यां ङसेरत् स्यात् । त्वत् । मत् । **पञ्चम्या अत्** ७।१।३१। आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत्स्यात् । युष्मत् । अस्मत् । **तवममौ ङसि** ७।२।९६। अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि । **युष्मदस्मद्भ्यां**

त्वया, मया—युष्मद् टा, अस्मद् टा, इत्यत्र 'त्वमावेकवचने' इति मपर्यन्तस्य युष्मदः त्वादेशे, अस्मदश्च मादेशे त्व अद् टा, म अद् टा, इति जाते 'अतो गुणे' इति पररूपे टागतटकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'योऽचि' इत्यनेन अलोन्त्यपरिभाषया दस्य यकारादेशे त्वया, मया, इति ।

युष्मभ्यम्—'युष्मद्-शब्दात् भ्यसि 'भ्यसो भ्यम्' इति भ्यसो भ्यमादेशे 'शेषे लोपः' इति दकारस्य लोपे 'युष्मभ्यम्' इति । 'भ्यसोऽभ्यम्' इति पक्षे तु 'अतो गुणे' इति पररूपेण तत्सिद्धिर्बोध्या ।

योऽचि—अनादेश अजादि विभक्ति के परे युष्मद्-अस्मद् शब्द को यकारादेश होता है ।

युष्म—अनादेश हलादि विभक्ति के परे युष्मद्-अस्मद् शब्द के अंग को आकारादेश होता है ।

तुभ्य—ङे विभक्ति के परे युष्मद्-अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को तुभ्य-मह्य आदेश होता है ।

भ्यसो—युष्मद्-अस्मद् से पर भ्यस् को भ्यम् वा अभ्यम् आदेश होता है ।

एक—युष्मद्-अस्मद् शब्द से पर ङस् को अत् आदेश होता है ।

पञ्च—युष्मद्-अस्मद् शब्द से पर भ्यस् को अत् आदेश होता है ।

तव—ङस् के परे युष्मद्-अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को तव, मम आदेश होता है ।

युष्म—युष्मद्-अस्मद् से पर ङस् को अश् आदेश होता है ।

ङसोऽश् ७।१।१२७। तव। मम। युवयोः। आवयोः। **साम आकम्** ७।१।३३। आभ्यां परस्य साम आकं स्यात्। युष्माकम्। अस्माकम्। त्वयि। मयि। युवयोः। आवयोः। युष्मासु। अस्मासु। **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ** ८।१।२०। पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्युष्मदस्मदोर्वान्नौ इत्यादेशौ स्तः। **बहुवचनस्य वस्नसौ** ८।१।२१। उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः। **तेमयावेकवचनस्य** ८।१।२२। उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः। **त्वामौ द्वितीयायाः** ८।१।२३। द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः। "श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः। स्वामी ते मेऽपि स हरिः

युष्माकम् अस्माकम्—युष्मद् आम्, अस्मद् आम्, इति स्थिते 'साम आकम्' इति आमि साम्त्वारोपेण आकमादेशे युष्मद् आकम्, अस्मद् आकम् इति जाते 'शेषे लोपः' इति दलोपे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति सवर्णदीर्घे 'युष्माकम्, अस्माकम्' इति।

श्रीशस्त्वाऽवतु—श्रीशः = विष्णुः, त्वा = त्वाम्, मा = माम्, अपि = च अवतु=रक्षतु। अत्र त्वाम्, माम्, इति द्वितीयैकवचनान्तयोः स्थाने 'त्वामौ द्वितीयायाः' इति त्वामादेशौ स्तः।

दत्तात्ते मेऽपि शर्मसः—सः=श्रीशः, ते=तुभ्यम्, मे=मह्यम्, अपि, शर्म= सुखम्, दत्तात्=ददातु। अत्र तुभ्यम् मह्यम्, इति चतुर्थ्येकवचनान्तयोः स्थाने 'तेमये'ति तें मे आदेशौ स्तः।

स्वामी ते मेऽपि स हरिः—सः हरिः ते=तव, मे=मम, स्वामी=प्रभुः।

साम—युष्मद्-अस्मद् शब्द से साम् को आकम् आदेश होता है।

युष्मदस्म--पद से पर अपादादि में स्थित षष्ठी--चतुर्थी--द्वितीयान्त युष्मत् अस्मद् शब्द को यथाक्रम से वाम्, नौ आदेश होता है।

बहु—पद से पर अपादादि में स्थित षष्ठ्यादि बहुवचनान्त युष्मद्-अस्मद् शब्द को यथाक्रम से वस्, नस् आदेश होता है।

तेमया—पद से पर अपादादि में स्थित षष्ठी-चतुर्थ्येकवचनान्त युष्मद्-अस्मद् शब्द को ते, मे आदेश होता है।

त्वामौ—पद से पर द्वितीयैकवचनान्त युष्मद्-अस्मद् शब्द को त्वा, मा आदेश होता है।

पातु वामपि नौ विभुः ॥ सुखं वां नौ ददात्वीशः पथिर्वामपि नौ हरिः ॥ सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः" ॥ (**एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः**) एकतिङ् वाक्यम्, तेनेह न । ओदनं पच तव भविष्यति । इह तु स्यादेव । शालीनां ते ओदनं दास्यामि । (**एते वान्नावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः**) अन्वादेशे तु नित्यं स्युः । धाता ते

अत्र तव मम इति षष्ठ्येकवचनान्तयोः स्थाने 'तेमये'ति ते मे आदेशौ स्तः ।

पातु वामपि नौ विभुः—विभुः = व्यापको हरिः, वाम् = युवाम्, नौ = आवाम्, अपि, पातु=रक्षतु । अत्र युवाम् आवाम् इति द्वितीयाद्विवचनयोः स्थाने 'युष्मदस्मदोः–' इति वां नो आदेशौ भवतः ।

सुखं वां नौ ददात्वीशः—ईशः=प्रभुः, वां = युष्माकम्, सुखं = कल्याणं ददातु इति शेषः । अत्र युवाभ्याम्, इति चतुर्थीद्विवचनान्तयोः स्थाने 'युष्मदस्मदो–' इति वां नौ आदेशौ स्तः ।

पातिर्वामपि नौ हरिः–हरिः=विष्णुः, वाम्=युवयोः, नौ=आवयोः, अपि=च, पतिः=स्वामी । अत्रयुवयोः, आवयोः इति षष्ठीद्विवचनान्तयोः स्थाने 'युष्मदस्मदोः' इति वां नावौ इत्यादेशौ स्तः ।

सोऽव्याद् वो नः—सः=हरिः, वः=युष्मान्, नः=अस्मान्, अव्यात्=रक्षतु । अत्र युष्मान्, अस्मान् इति बहुत्वविशिष्ट-द्वितीयान्तयोः स्थाने 'बहुवचनस्य–' इति वस्नसौ स्तः ।

शिवं वो नः—(सः=हरिः) वः = युष्मभ्यम्, नः = अस्मभ्यम्, शिवं = कल्याणं, दद्यादिति शेषः, अत्र युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम्, इति चतुर्थीबहुवनान्तयोः स्थाने 'बहुवचनस्य–' इति वस्नसौ स्तः ।

सेव्योऽत्र वः स नः–अत्र=लोके, सः हरिः, वः=युष्माकम्, नः=अस्माकम्, सेव्यः=भजनीयः । अत्र युष्माकम्, अस्माकम्, इति षष्ठीबहुवचनान्तयोः स्थाने 'बहुवचनस्य–' इति वस्नसौ स्तः ।

एकवाक्ये—युष्मद्-अस्मद् शब्द को एक वाक्य में ही अनुदात्त तथा पूर्वोक्त वाम्, नौ आदेश होते हैं ।

एक—तिङन्त ही वाक्य कहलाता है (सुप् तिङन्तयो वाक्यम्) ।

एते—ये (पूर्वोक्त) वाम्, नौ आदि आदेश अनन्वादेश में विकल्प से और अन्वादेश में नित्य ही होता है ।

भक्तोऽस्ति । धाता तव भक्तोऽस्ति वा। तस्मै ते नम इत्येव । सुपात्, सुपाद् । सुपादौ । **पादः पत्** ६।४।१३०। पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः स्यात् । सुपदः । सुपदा । सुपाद्भ्याम् । अग्निमत्, अग्निमद् । दग्निमथौ । अग्निमथः । **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** ६।४।२४ हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः स्यात् किति ङिति । नुम् । संयोगान्तस्य लोपः । नस्य कुत्वेन ङः । प्राङ् । प्राञ्चौ, प्राञ्चः । **अचः** ६।४।१३८। लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः स्यात् । **चौ** ६।३।१३८। लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात् । प्राचः । प्राचा । प्राग्भ्याम् । प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रतीचः । प्रत्यग्भ्याम् । उदङ् । उदञ्चौ । **उद ईत्** ६।४।१३९। उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याऽञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् स्यात् । उदीचः । उदीचा ।

प्राचः—प्रोपसर्गात् 'अञ्च्' धातोः 'ऋत्विग्--' इत्यादिना क्विनि क्विनः सर्वापहारे 'अनिदिताम्---' इति उपधानकारस्य लोपे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक-संज्ञायां शसि शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'यचि भम्' इति भत्वात् 'अचः' इति अचः अकारस्य लोपे 'चौ' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'प्राचः' इति ।

प्रतीचः—'प्रति अञ्च अस्' इत्यवस्थायाम् 'अनिदिताम्--' इति नलोपे 'यचि भम्' इति भत्वात् 'अचः' इत्यलोपे 'चौ' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'प्रतीचः' इति ।

उदीचः—'उत्' उपसर्गात् 'अञ्च्' धातोः 'ऋत्विगि'ति क्विनि क्विनः सर्वापहारे 'अनिदिताम्--इत्युपधानकारस्य लोपे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां शशि अनुबन्धलोपे 'उत्' उपसर्गस्य तस्य जश्त्वेन दत्वे 'यचि भम्' इति भसंज्ञा-याम् 'उद ईत्' इत्यचोऽकारस्य ईत्त्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'उदीचः' इति ।

पादः---भसंज्ञक 'पाद्' शब्दान्तावयव पाद् शब्द को पद् आदेश होता है ।

अनि---कित्, ङित् प्रत्यय के परे हलन्त अनिदित् अंग के उपधा नकार का लोप होता है ।

अचः---भसंज्ञक लुप्ताकारक अञ्च् धातु के अकार का लोप होता है ।

चौ---लुप्ताकार-नकारक अञ्च् धातु के परे पूर्व अण् को दीर्घ होता है ।

उद---उत् शब्द से पर लुप्ताकारक अञ्च् धातुसम्बन्धी भसंज्ञक अकार को ईत् आदेश होता है ।

उदग्भ्याम् । **समः समि** ६।३।९३। वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ । सम्यङ् । सम्यञ्चौ । समीचः । सम्यग्भ्याम् । **सहस्य सध्रिः** ६।३।९५। वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे सहस्य सध्र्यादेशः । सध्र्यङ् । **तिरसस्तिर्यलोपे** ६।३।९४। अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः स्यात् । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिरश्चः । तिर्यग्भ्याम् । **नाञ्चेः पूजायाम्** ६।४।३०। पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न स्यात् । प्राङ् । प्राञ्चौ । नलोपाभावादलोपो न । प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् । प्राङ्क्षु । एवं पूजार्थे प्रत्यङादयः । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुङ्भ्याम् । पयोमुक्, पयोमुग् । पयोमुचौ । पयोमुग्भ्याम् । उगित्वान्नुम् । **सान्तमहतः संयोगस्य** ६।४।१०। सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । महान् । महान्तौ महान्तः । हे महन् । महद्भ्याम् । **अत्वसन्तस्य चाधातोः** ६।४।१४। अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे । धीमान् । धीमन्तौ । धीमन्तः । हे धीमन् । शसादौ महद्वत् । भातेर्डवतुः डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । भवान् । भवन्तौ । भवन्तः शत्रन्तस्य भवन् । **उभे अभ्यस्तम्** ६।१।५। षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः । **नाभ्यस्ताच्छतुः** ७।१।७८। अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न स्यात् । ददत् । ददतौ ।

महान्—'महत् सु' इति स्थिते 'उगिदचाम्–' इति नुमि 'सान्तमहतः--' इति दीर्घे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति सलोपे 'हल्ङ्यादिना सुलोपे 'महान्' इति ।

समः—'व' प्रत्ययान्त अञ्च् धातु के परे सम् को सम्यादेशः होता है ।

सह—'व' प्रत्ययान्त अञ्च् धातु के परे सह को सध्रि आदेश होता है ।

तिर—अलुप्ताकारक 'व' प्रत्ययान्त अञ्च् धातु के परे तिरस को तिरि आदेश होता है ।

नाञ्चेः—पूजार्थक अञ्च् धातु के उपधानकार का लोप नहीं होता है ।

सान्त—असम्बुद्धि सर्वनामस्थान के परे सान्त संयोग और महत् शब्द का जो नकार उसकी उपधा को दीर्घ होता है ।

अत्व—सम्बुद्धि से भिन्न सु के परे अत्वन्त तथा धातु भिन्न असन्त की उपधा को दीर्घ होता है ।

उभे—षष्ठाध्याय के द्वित्वप्रकरण में जो द्वित्व विधान किया गया है, वह द्वित्व अभ्यस्तसंज्ञक होता है ।

नाभ्य—अभ्यस्तसंज्ञक से परे शतृप्रत्यय को नुम नहीं होता है ।

ददतः। **जक्षित्यादयः षट्** ६।१।६। षट् धातवोऽन्ये, जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः। जक्षत्, जक्षद्। जक्षतौ। जक्षतः। एवं जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्। गुप्। गुब्। गुपौ। गुपः। गुब्भ्याम्। **त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च** ३।२।६०। त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थाद् दृशेः कञ् स्यात् चात् क्विन्। **आ सर्वनाम्नः** ६।३।९१। सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्यात् दृग्दृश्वतुषु। तादृक्, तादृग्। तादृशौ। तादृशः। तादृग्भ्याम्। व्रश्चेति षः। जश्त्वचर्त्वे। विट्, विड्। विशौ। विशः। विड्भ्याम्। **नशेर्वा** ७।२।६३। नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा स्यात् पदान्ते। नक्, नग्, नट्, नड्। नशौ। नशः। नग्भ्याम्, नड्भ्याम्। **स्पृशोऽनुदके क्विन्** ३।२।५८। अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् स्यात्। घृतस्पृक्, घृतस्पृग्। घृतस्पृशौ। घृतपृशः। दधृक्, दधृग्। दधृषौ। दधृग्भ्याम्। रत्नमुट्, रत्नमुड्। रत्नमुषौ। रत्नमुड्भ्याम्। षट्, षड्। षड्भिः। षड्भ्यः। षण्णाम्। षट्सु। रुत्वं प्रति षत्वस्याऽसिद्धत्वात्ससजुषो-

---

तादृक्—तदुपसर्गात् दृश्–धातोः 'त्यदादिषु' इति चकारात् क्विनि क्विनः सर्वापहारे 'आ सर्वनाम्नः' इति तच्छब्दस्याकारस्य आकारान्तादेशे सवर्णदीर्घे 'कृदतिङ्' इति क्विनः कृत्संज्ञकत्वात् कृदन्तत्वात् सौ हल्ङ्यादिना सुलोपे 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इत्यस्य असिद्धत्वात् 'व्रश्चभ्रस्ज' इति षत्वे षस्य जश्त्वेन डत्वे 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' इति डकारस्य कुत्वेन गकारे तस्य चर्त्वेन ककारे 'तादृक्' इति। चर्त्वाभावे 'तादृग्' इति।

षण्णाम्—षष् शब्दात् आमि ष्णान्ता षट्, इति षट्संज्ञायां 'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुटि उटो लोपे 'झलां जशोऽन्ते' इति षस्य डत्वे 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति डस्य अनुनासिके णकारे 'ष्टुना ष्टुः' इति नामो नकारस्य ष्टुत्वेन णकारे 'षण्णाम्' इति।

जक्षि—जागृ आदि छै धातु और सातवां जक्ष धातु अभ्यस्तसंज्ञक होते हैं।

त्यदा—त्यदादि उपपदक अज्ञानार्थक दृश् धातु से कञ् और क्विन् प्रत्यय भी होते हैं।

आ—दृग्, दृश् और वतु प्रत्यय के परे सर्वनामसंज्ञक शब्द को आकारान्त आदेश होता है।

नशे—नश् धातु को कवर्गान्त आदेश विकल्प से होता है, पदान्त में।

स्पृशो—'उदक' भिन्न सुबन्त उपपद रहने पर स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है।

रुरिति रुत्वम् । **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** ८।२।७६। रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः स्यात् पदान्ते । पिपठीः । पिपठिषौ । पिपठीर्भ्याम् । **नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि** ८।३।५८। एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः । पिपठीष्षु, पिपठिःषु । चिकीः । चिकीर्षौ । चिकीर्भ्याम् । चिकीर्षु । विद्वान् । विद्वांसौ । हे विद्वन् । **वसोः सम्प्रसारणम्** ३।४।१३१। वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात् । विदुषः । वसुस्रंस्विति दः । विद्वद्भ्याम् । **पुंसोऽसुङ्** ७।१।८९। सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात् ।

अत्र 'न पदान्तात्-' इति ष्टुत्वनिषेधः कुतो नेति न शङ्क्यम्, 'अनाम्नवति-' इति वार्तिकेन तन्निषेधात् ।

पिपठीः—पिपठिष्-शब्दात् सौ रुत्वे कर्तव्ये 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' इति षत्वस्याऽसिद्धत्वात् 'ससजुषो रुः' इति रुत्वे अनुबन्धलोपे 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' इति उपधायाः इकारस्य दीर्घे 'हल्ङ्यादिना सुलोपे 'खरवसानयोः–' इति रेफस्य विसर्गे 'पिपठीः' इति ।

विद्वान्—'विद ज्ञाने' अस्माद् धातोः लटः शतरि 'विदेः शतुर्वसुः' इति वस्वादेशे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ 'उगिदचाम्–' इति नुमि 'सान्तमहतः–' इति दीर्घे हल्ङ्यादिना सलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति तलोपे 'विद्वान्' इति ।

विदुषः–विद्वस्-शब्दात् शसि अनुबन्धलोपे 'यचि भम्' इति भत्वात् 'वसोः सम्प्रसारणम्' इति वस्य सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'आदेशप्रत्ययोः' इति सस्य षत्वे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'विदुषः' इति ।

र्वोरु—रेफान्त और वान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होता है, पदान्त में ।

नुम्—नुम्, विसर्ग तथा शर् इनमे से किसी के व्यवधान रहने पर भी इण्, कवर्ग से पर सकार के स्थान में षकार हो जाता है ।

वसोः—वसुप्रत्ययान्त भसंज्ञक को सम्प्रसारण होता है ।

पुंसो—सर्वनामस्थान के परे पुंस् को असुङ् आदेश होता है ।

पुमान् । हे पुमन् । पुमांसौ । पुंसः । पुंभ्याम् । पुंसु । ऋदुशनेत्यनङ् । उशना । उशनसौ । (अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः) हे उशन्, हे उशनन्, हे उशनः । हे उशनशौ । उशनोभ्याम् । उशनस्सु । अनेहा । अनेहसौ । हे अनेहः । वेधाः । वेधसौ । हे वेधः । वेधोभ्याम् । **अदस औ सुलोपश्च** ७।२।१००। अदस औ स्यात्सौ परे सुलोपश्च । तदोरिति सः । असौ । त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । वृद्धिः । **अदसोऽसोऽसेर्दादु दो मः** ८।२।८०। अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्तो दस्य मश्च । आन्तरतम्यात् ह्रस्वस्य उः दीर्घस्य ऊः । अमू । जसः शी । गुणः । **एत ईद्बहुवचने** ८।२।८१। अदसो दात्परस्यैत् ईद् दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ । अमी । पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक् पश्चादु-

---

पुमान्—पुंस् शब्दात् सौ अनुबन्धलोपे 'पुंसोऽसुङ्' इत्यसुङि 'पुम सु ङ्स्' इति जाते 'हलन्त्यम्' इति ङकारस्य 'उपदेशे—' इति उकारस्य च इत्संज्ञायां लोपे च कृते 'पुमस् स्' इति स्थिते 'उगिदचाम्—' इति नुमि उमि गते 'सान्त-महतः—' इति दीर्घे हल्ङ्यादिना सुलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति सलोपे 'पुमान्' इति ।

अमी—अदस् शब्दात् जसि 'त्यादादीनामः' इति अत्वे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'अद् जस्' इति स्थिते 'जसः शी' इति जसः श्यादेशे अनुबन्धलोपे 'आद् गुणः' इति गुणे 'अदे' इति जाते 'एत ईद् बहुवचने' इति एकारस्य ईकारे दस्य च मत्वे 'अमी' इति ।

अस्य—उसनस् शब्द को सम्बुद्धि के परे अनङादेश तथा नकार का लोप विकल्प से होता है ।

अदस—सु के परे अदस् शब्द को औकारान्त आदेश और सुलोप भी होता है ।

अदसो—असान्त अदस् शब्द-सम्बन्धी दकार से पर अकार को उत् ऊत् तथा दकार को मकार होता है ।

एत—असान्त अदस् शब्द सम्बन्धी दकार से पर एकार को ईत् तथा दकार को मकार होता है, बह्वर्थ में ।

त्वमत्वे । अमुम् । अमू । अमून् । मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः । न मु ने ८।२।३। नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः स्यात् । अमुना । अमूभ्याम् । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमुष्य । अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमीषु ।

इति हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम् ।

—: ० :—

अमुना—'अदस् टा' इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते 'अदसोऽसेर्दादुदो मः' इत्यकारस्य उत्वे दस्य च मत्वे 'अमु टा' इति स्थिते नाभावे कर्त्तव्ये 'न मुने' इति मुत्वस्याऽसिद्धत्वाऽभावबोधनात् 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायाम् 'आङो नाऽस्त्रियाम्' इति 'टा' इत्यस्य नादेशे 'अमुना' इति । नन्वत्र मुत्वस्याऽसिद्धत्वात् 'सुपि च' इति दीर्घः कथन्नेति चेन्न 'न मु ने' इत्यनेन कृते च नाभावे मुत्वस्य नासिद्धत्वमित्यर्थस्यापि बोधनात् ।

अमीषाम्—'अदस् आम्' इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इति सुटि उटि गते 'बहुवचने झल्येत्' इत्येत्वे 'आदेशप्रत्ययोः' इति षत्वे 'एत ईद्बहुवचने' इति दात्परस्य एकारस्य उत्वे दस्य च मत्वे 'अमीषाम्' इति ।

इति हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम् ।

X

न मु—नाभाव कर्तव्य हो या कर भी लिया गया हो तो भी मुभाव असिद्ध नहीं होता है ।

हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरण समाप्त ।

—: S०S :—

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

नहो धः ८।२।३४। नहो हस्य धः स्यात् झलि पदान्ते च। **नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ** ६।३।११६। क्विबन्ते पूर्वपदस्य दीर्घः स्यात्। उपानत्, उपानद्। उपानहौ। उपानत्सु। क्विबन्तत्वात् कुत्वेन घः। उष्णिक्, उष्णिग्। उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्। द्यौः। दिवौ। दिवः। द्युभ्याम्। गीः। गिरौ। गिरः। एवं पूः। चतस्रः। चतसृणाम्। का। के। काः सर्ववत्। **यः सौ** ७।२।११०। इदमो दस्य यः स्यात्सौ। इयम्। त्यद्यात्वम्। पररूपत्वम्- अनया आभ्याम्। आभिः। अस्यै। अस्याः। अनयोः। आसाम्। अस्याम्। आसु। त्याद्यत्वम्। टाप्। स्या। त्ये। त्याः। एवं तद्, एतद्। वाक्, वाग्। वाचौ। वाचः। वागभ्याम्। वाक्षु। अप् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। अप्तृन्निति दीर्घः।

उपानत्—'णह बन्धने' इति धातुः। 'णो नः' इति नत्वे, उपनह्यते इति 'उपानत्' सम्पदादित्वात् कर्मणि क्विपि, क्विपः सर्वापहारे 'नहिवृति–' इत्यादिना पूर्वपदस्य दीर्घे, कृदन्तात् उपानह् शब्दात् सौ 'उपानह् सु' इति स्थिते 'नहो धः' इति हस्य धत्वे 'झलां जशोन्ते' इति धस्य दत्वे 'वाऽवसाने' इति चर्त्वे हल्ङ्याभ्यः–' इति सुलोपे 'उपानत्' इति चर्त्वाभावे 'उपानद्' इति।

चतसृणाम्—'चतुर् आम्' इति स्थिते 'त्रिचतुरोः-' इति चतस्रादेशे 'चतसृ आम्' इति जाते 'अचि र ऋतः' इति ऋकारस्य रेफादेशे प्राप्ते 'ननुचिरे'ति पूर्वविप्रतिषेधेन तं प्रबाध्य 'ह्रस्वनाद्यापो नुट्' इति नुटि उटि गते 'चतसृ नाम्' इति स्थिते 'नामि' इति दीर्घे प्राप्ते 'न तिसृचतसृ' इति निषेधे 'ऋवर्णान्नस्य–' इति णत्वे 'चतसृणाम्' इति

अनया—इदम् शब्दात् टाविभक्तौ 'इदम् आ' इति जाते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे स्त्रीत्वात् टापि 'चुटू' इति टकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते सवर्णदीर्घे 'इदा आ' इति जाते 'अनाप्यकः इति इदमः इद्भागस्य अनादेशे 'अना आ' इति जाते

नहो—झल् के परे नह् धातु के हकार को धकार होता है, पदान्त में।

नहि—क्विबन्त नह् आदि धातु के परे पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

यः सौ—स्त्रीलिंग के सु के परे इदम् के दकार को यकार आदेश होता है।

आपः । अपः । **अपो भि ७।४।४८।** अपस्तकारः स्यात् भादौ प्रत्यये । अद्भिः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । दिक् , दिग् । दिशौ । दिशः । दिग्भ्याम् । त्यदादिष्विति दृशः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दृक्, दृग् । दृशौ । दृग्भ्याम् । त्विट्, त्विड् । त्विषौ । त्विड्भ्याम् । ससजुषोरीति रुत्वम् । सजूः । सजुषौ । सजूर्भ्याम् । आशीः । आशिषौ । आशीर्भ्याम् । असौ । उत्वमत्वे । अमू । अमूः । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमूषाम् । अमुष्याम् । अमूषु । इति हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

—: ० :—

'आङि चापः' इत्यावन्तस्यैकारे 'एचोऽयवायावः' इत्ययादेशे 'अनया' इति

अद्भिः—अप्–शब्दात् भिसि 'अप् भिस्' इति स्थिते 'अपो भि' इति पस्य तकारे 'झलां जशोऽन्ते' इति तस्य दत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'अद्भिः' इति ।

दिक्—दिश् अतिसर्जने' तस्मात् 'ऋत्विग्–' इति क्विनि सर्वापहारे कृदन्तत्वात् सौ हल्ङ्यादिना सुलोपे 'दिश्' इति जाते 'व्रश्चभ्रस्ज–' इति षत्वे 'झलां जशोऽन्ते' इति षस्य डत्वे 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' इति डस्य कुत्वेन गत्वे 'वाऽवसाने' इति चर्त्वे 'दिक्' इति । पक्षे दिगिति ।

दृक्—सम्पदादित्वात् दृशेः क्विपि क्विपः सर्वापहारे दृश् इति । तस्मात् सौ 'हल्ङ्यादिना सलोपे 'व्रश्चे'ति शस्य षत्वे तस्य जश्त्वेन डत्वे 'त्यदादिष्विति' दृशेः क्विनोः विधानात् अत्र क्विनोऽभावेऽपि 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' । इति डस्य कुत्वेन गत्वे तस्य 'वाऽवसाने' इति चर्त्वेन कत्वे 'दृक्' इति । चर्त्वाभावे दृगिति ।

अमुष्यै—अदस्–शब्दात् ङे विभक्तौ त्यादद्यत्वे पररूपत्वे स्त्रीत्वाट्टापि सवर्णदीर्घे च कृते अनुबन्धलोपे 'अदा ए' इति जाते 'सर्वनाम्नः—' इति ङेः स्याडागमे टाबन्तस्य ह्रस्वे च कृते 'वृद्धिरेऽचि' इति वृद्धौ 'अदसोऽसेः—' इति उत्वे मत्वे च कृते 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे 'अमष्यै' इति ।

इति हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

—: ० :—

अपो—भकारादि प्रत्यय के परे अप् शब्द को तकारान्त आदेश होता है ।

हलन्तस्त्रीलिङ्ग प्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

स्वमोर्लुक् । दत्वम् । स्वनडुत्, स्वनडुद् । स्वनडुही । चतुरनडुहोरित्याम् । स्वनड्वांहि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । वाः । वारी । वारि । वार्भ्याम् । चत्वारि । किम् । के । कानि । इदम् । इमे । इमानि । (अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः) एनत्, एनद् । एने । एनानि । एनेन । एनयोः । अहः । विभाषा ङिश्योः । अह्नी, अहनी । अहानि । (सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः) हे दण्डिन्, हे दण्डि । अहन् ८।२।६८। अहन्नित्यस्य रुः स्यात् पदान्ते । अहोभ्याम् । दण्डि । दण्डिनी । दण्डीनि । दण्डिना । दण्डिभ्याम् । सुपथि । टेर्लोपः । सुपथी । सुपन्थानि । ऊर्क्, ऊर्ग् । ऊर्जी । ऊर्न्जि । नरजानां संयोगः । तत् । ते । तानि । यत् । ये । यानि । एतत् । एते । एतानि । गवाक् ।

स्वनडुत्—सु = शोभनाः अनड्वाहः यस्य कुलस्येति विग्रहे स्वनडुह् शब्दात् नपुंसकलिङ्गात् सावागते 'स्वनडुह् सु' इति स्थिते 'स्वमोर्नपुंसकात्' इति सुलोपे 'वसुस्रंसुध्वं स्वनडुहां दः' इति हस्य दत्वे 'वावसाने' इति दस्य चर्त्वे 'स्वनडुत्' इति । पक्षे 'स्वनडुद्' इति ।

चत्वारि—चतुर्-शब्दात् जसि शसि च विभक्तौ 'जश्शसोः शिः' इति श्यादेशे कृते 'शि सर्वनामस्थानम्' इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'चतुरनडुहः–' इति आमि अनुबन्धलोपे 'इको यणचि' इति यणि 'चत्वारि' इति ।

एनयोः—इदम्-शब्दात् ओसि विभक्तौ 'अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः' इति एनादेशे त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते 'ओसि च' इति अदन्ताङ्गस्यैकारे अयादेशे सस्य रुत्वे विसर्गे 'एनयोः' इति ।

अहोभ्याम्—अहन्-शब्दात् भ्यामि 'स्वादिष्वि'ति पदत्वात् 'अहन्' इति नस्य रुत्वे 'हशि च' इति इत्युत्वे 'आद्गुणः' इति गुणे 'अहोभ्याम्' इति ।

गवाक्—गामञ्चति = गच्छति, इति विग्रहे क्विनि क्विनः सर्वापहारे

अन्वा—नपुंसक लिंग में इदम् और एतद् शब्द को एनत् आदेश होता है। अन्वादेश में ।

अहन्—पदान्त में अहन् के नकार को रुत्व होता है ।

गोची । गवाञ्चि । पुनस्तद्वत् । गोचा । गवाग्भ्याम् । शकृत् । शकृती । शकृन्ति । ददत् । **वा नपुंसकस्य** ७।१।७९। अभ्यस्तात्परो यः शतः तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने । ददन्ति, ददति । तुदत् । **आच्छीनद्योर्नुम्** ७।१।८०। अवर्णान्तादङ्गात्परोः यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा स्यात् शीनद्योः । तुदन्ती, तुदती । तुदन्ति । **शप्श्यनोर्नित्यम्** ७।१।८१। शप्श्यनोरात्परोः यः । शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः । पचन्ती । पचन्ति । दीव्यत् । दीव्यती

उपपदसमासे सुब्लुकि कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ 'गो अ-ञ्च् सु' इति स्थिते 'अनिदिताम्–' इति नलोपे 'गो अच् सु' इति जाते 'अवङ्स्फोटायनस्य' इत्यवङि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे 'स्वमोर्नपुंसकात्' इति सोर्लुकि 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति चस्य कत्वे 'झलां जशोऽन्ते' इति गत्वे 'वावसाने' इति विभाषया कत्वे 'गवाक्' इति । चर्त्वाभावे 'गवाग्' इति ।

गोचा—गामञ्चति=गच्छति इति विग्रहे क्विनि, क्विनः सर्वापहारे उपपदसमासत्वात् सुब्लुकि समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां टाविभक्तौ अनुबन्धलोपे 'गो अञ्च आ' इति स्थिते 'अनिदिताम्–' इति नलोपे 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'अचः' इत्यकारलोरलोपे 'गोचा' इति । (पूजार्थे तु 'नाञ्चेः पूजायाम्' इति नलोपनिषेधे–अवङि 'गवाञ्चा, प्रकृतिभावे गो अञ्चा, पूर्वरूपे 'गोऽञ्चा' इति ज्ञेयम् ।

दीव्यन्ती—दिव् धातोः लटः शतरि, श्यन्, 'हलि च' इति दीर्घे 'दीव्यत्' इति, तस्मात् औ विभक्तौ 'नपुंसकाच्च' इति औङः श्यादेशे अनुबन्धलोपे 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इति नुमि उमि गते नस्यानुस्वारे परसवर्णे 'दीव्यन्ती' इति ।

वा—सर्वनामस्थान के परे अभ्यस्तसंज्ञक से परे शतृप्रत्ययान्त क्लीबन्त अंग को विकल्प से नुम् होता है ।

आच्छी—शी तथा नदी के परे अवर्णान्त से पर शतृप्रत्ययावयवान्त अंग को विकल्प से नुमागम होता है ।

शप्—शप् और श्यन् सम्बन्धी अकार से पर शतृप्रत्ययावयवान्त अंग को नित्य ही नुमागम होता है, शी और नदी के परे ।

दीव्यन्ति । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम्विसर्जनीयेति षः । धनूंषि । धनुषा । धनुर्भ्याम् । एवं चक्षुर्हविरादयः । पयः । पयसी । पयांसि । पयसा । पयोभ्याम् । सुपुम् । सुपुंसी । सुपुमांसि । अदः । विभक्तिकार्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषं पुंवत् ।

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

×

धनूंषि——'धनुस्' शब्दात् जसि शसि वा विभक्तौ 'यश्शसोः शिः' इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'शि सर्वनामस्थानम्' इति सर्वनामस्थानसंज्ञायाम् 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुमि उमि गते 'सान्तमहतः–' इति दीर्घे 'नश्चापदान्तस्य झलि' इति नस्यानुस्वारे 'नुम्विसर्जनीय–' इति सस्य षत्वे 'धनुंषि' इति ।

अमूनि——'अदस्' जस्' इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे 'यश्शसोः शिः' इति जसः श्यादेशे अनुबन्धलोपे 'शि सर्वनामस्थानम्' इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुमि उमि गते 'सर्वनामस्थाने——' इति दीर्घे 'अदानि' इति जाते 'अदसोऽसेर्दादुदो मः' इति दात् परस्याकारस्य उत्वे दस्य च मत्वे 'अमूनि' इति ।

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

—: ऽ•ऽ :—

नुम्—"नुम्–विसर्जनीय–शर्–व्यवायेऽपि" यह सूत्र का स्वरूप है। अर्थ है–'नुम्, विसर्ग, शर्—इनमें से किसी के व्यवधान होने पर भी कवर्ग से पर सकार को षकार हो जाता है ।

हलन्तनपुंसकलिङ्ग समाप्त ।

—: ० :—

अथ अव्ययप्रकरणम्

स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७। स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञा स्युः। स्वर्। अन्तर्। प्रातर्। पुनर्। सनुतर्। उच्चैस्। नीचैस्। शनैस्। ऋधक्। ऋते। युगपत्। आरात्। पृथक्। ह्यस्। श्वस्। दिवा। रात्रौ। सायम्। चिरम्। मनाक्। ईषत्। जोषम्। तूष्णीम्। बहिस्। अवस्। अजस्। ममया। निकषा। स्वयम्। वृथा। नक्तम्। नञ्। हेतौ। इद्धा। अद्धा। सामि। वत्। ब्राह्मणवत्। क्षत्त्रियवत्। सना। सनत्। सनात्। उपधा। तिरस्। अन्तर्धा। अन्तरेण। ज्योक्। कम्। शम्। सहसा। विना। नाना। स्वस्ति। स्वधा। अलम्। वषट्। श्रौषट्। वौषट्। अन्यत्। अस्ति। उपांशु। क्षमा। विहायसा। दोषा। मृषा। मिथ्या। मुधा। पुरा। मिथो। मिथस्। प्रायस्। मुहुस्। प्रवाहिकम्। प्रवाहिका। आर्यहलम्। अभीक्ष्णम्। साकम्। सार्धम्। नमस्। हिरुक्। धिक्। अथ। अम्। आम्। प्रताम्। प्रशान्। प्रतान्। मा। माङ्। 'आकृतिगणोऽयम्'। च। वा। ह। अह। एव। एवम्। नूनम्। शश्वत्। युगपत्। भूयस्। कूपत्। सूपत्। कुवित्। नेत्। चेत्। चण्। यत्र। क्वचित्। किंचित्। नेह। हन्त। माकिः। माकिम्। नकिः। नकिम्। माङ्। नञ्। यावत्। तावत्। त्वै। द्वै। रै। (श्रौषट्। वौषट्।) स्वाहा। स्वधा। ओम्। तुम्। तथाहि। खलु। किल। अथो। अथ। सुष्ठु। स्म। आदह। 'अपसर्ग-

---

स्वरादि—स्वर आदिर्येषां ते स्वरादयः; ते च ते निपाताश्चेति समाहार-द्वन्द्वः। अव्ययम् इति पृथक् पदम्। 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति स्मरणात्–'स्वरादयो निपाताश्च अव्यसंज्ञाः स्युः' इत्यर्थः।

उपसर्ग—चादिगणसूत्रमेतत्। उपसर्गप्रतिरूपकाः, विभक्त्यन्तप्रतिरूपकाः, अच्प्रतिरूपकाश्च चादिगणे पाठ्याः इत्यर्थः। तत्रोपसर्गप्रतिरूपकमुदाहरति–'अवदत्तम्' इति। अत्र अवेत्युपसर्गप्रतिरूपकम्, न तूपसर्गः। ततश्च 'अत्र उप-सर्गात्तः' इति तो न भवति। तादेशे 'अवत्तम्' इति स्यात्।

स्वरा—स्वरादि और निपात् की अव्ययसंज्ञा होती है।

उपसर्ग—उपसर्गप्रतिरूपक, (सदृश) विभक्त्यन्त प्रतिरूपक तथा स्वर-प्रतिरूपक शब्दों के भी चादिगण में पाठ समझना चाहिए।

'विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च' । अवदत्तम् । अहंयुः । अस्तिक्षीरा । अ । आ । इ । ई । उ । ऊ । ए । ऐ । ओ । औ । पशु । शुकम् । यथाकथाच । पाट् । प्याट् । अङ्ग । हे । है । भोः । अये । द्य । विषु । एकपदे । युत् । आतः । चादिरप्याकृतिगणः । **तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः** १।१।३८। यस्मात् सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात् । परिगणनं कर्तव्यम् । तसिलादयः प्राक् पाशपः । शस् प्रभृतयः । प्राक् समासान्तेभ्यः । अम् । आम् । कृत्वोर्थाः । तसिवतौ । नानाञौ । एदन्तमव्ययम् । अतः इत्यादि ।

कृन्मेजन्तः १।१।३९ कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात् । स्मारंस्मारम् । जीवसे । पिबध्यै । **क्त्वातोसुन्कसुनः** १।१।४०। एतदन्तमव्ययं स्यात् । कृत्वा । उदेतोः । विसृपः । **अव्ययीभावश्च** १।१।४१। अधिहरि ।

अहंयुः—अत्र 'अहम्' इति विभक्त्यन्तप्रतिरूपकम् अहङ्कारे वर्तते । 'अहंशुशमोर्युस्' इति मत्वर्थीयो युस् । अत्र 'अहम्' इति न अस्मच्छब्दस्य प्रथमैकवचनम् । तथा सति 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' इति मपर्यन्तस्य मदादेशे मद्युरित्यापत्तेः ।

अस्तिक्षीरा—अस्ति क्षीरं यस्याः इति बहुव्रीहिः । अत्र अस्तीति तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययम्, नतु तिङन्तम् । तथा सति बहुव्रीह्यनुपपत्तेः—'अनेकमन्यपदार्थे' इति बहुव्रीहिविधौ सुबित्यनुवृत्तेः । स्वरप्रतिरूपकमुदाहरति—अ, आ, इत्यादिना ।

तसिलादयः—वार्तिकमेतत् । 'पञ्चम्यास्तसिल्' इत्यारभ्य 'द्विद्भ्योश्च धमुञ्' इत्यन्ताः इत्यर्थः ।

स्मारं स्मारं—'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च' इति स्मृधातोर्णमुलि, 'अचोञ्णिति' इति वृद्धिः रपरत्वम् । 'नित्यवीप्सयोः' इति द्वित्वं, मान्तकृदन्तत्वादव्ययत्वम् ।

उदेतोः—उत्पूर्वात् इण्धातोः 'भावलक्षणे–इत्यादिसूत्रेण तोसुन् प्रत्यये

तद्धितश्चा—जिससे सभी विभक्तियाँ उत्पन्न नहीं हों, ऐसा जो तद्धितान्त प्रातिपदिक वह भी अव्ययसंज्ञक होता है ।

कृन्मे—मान्त और एजन्त कृत् की अव्यय संज्ञा होती है ।

क्त्वातो—क्त्वा, तोसुन् और क्वसुन् प्रत्ययान्त की भी अव्ययसंज्ञा होती है ।

अव्ययी—अव्ययीभाव समास की भी अव्ययसंज्ञा होती है ।

अव्ययादाप्सुपः २।४।८२। अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात्। तत्र शालायाम्।

"सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्"॥
"वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा"॥

वगाहः। अवगाहः। पिधानम्। अपिधानम्।

इति अव्ययप्रकरणम्।

—:०:—

अनुबन्धलोपे गुणे उतस्तस्य जश्त्वे 'क्त्वातोसुन्कसुनः' इत्यव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' इति सोर्लुकि सस्य रुत्वे विसर्गे 'उदेतोः' इति।

सदृशं—ननु अव्ययानां लिङ्गाऽभावे 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु' इत्यादि आथर्वणश्रुतिविरोधः इत्याशङ्क्य परिहरति–सदृशमिति। त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिषु, सर्वेषु वचनेषु च यत्, न व्येति=विकारं न प्राप्नोति, किन्तु सदृशम्=एकप्रकारकम्, एव भवति, तद् अव्ययम्। इति आथर्वण श्रुतियोजना।

अवगाहः–अत्र भागुरिमते 'अपि' इत्युपसर्गस्य अकारस्य लोपे 'अव्ययादाप् सुपः' इति सुलोपे च कृते 'पिधानम्' इति सिद्धो भवति।

इत्यव्ययप्रकरणम्।

—:०:—

अव्यया—अव्यय से विहित आप् और सुप् को लुक् (लोप) होता है।

उव्ययलक्षण—'सदृशं त्रिषु०' अर्थात् जिस शब्द का तीनों लिंगों में, सभी विभक्तियों में तथा सभी वचनों में समान रूप हो वह अव्यय कहलाता है।

वष्टि—पाणिनिमत के विरुद्ध–'भागुरि' नाम के आचार्य का मत है कि–अव तथा अपि उपसर्ग के आदि 'अ' का लोप हो जाता है। यथा—अव+गाहः=वगाहः। अपि+धानम्=पिधानम्। आचार्य के मत से हलन्त शब्दों से भी स्त्रीलिंग में 'आप्' (टाप्) प्रत्यय होता है। यथा—वाच्+आ=वाचा। निश्+आ=निशा। दिश्+आ=दिशा इति अव्ययप्रकरणम्।

—:०:—

अथ तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम्

लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लृङ्। एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः। **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** ३।४।६९। लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च। **वर्तमाने लट्** ३।२।१२३। वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्। अटावितौ। उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम्। भू सत्तायाम्।१। कर्तृविवक्षायां भूल् इति स्थिते। **तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्** ३।४।७८। एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः। **लः परस्मैपदम्** १।४।९९। लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः। **तङानावात्मनेपदम्** १।४।१०० तङ् प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः। पूर्वसंज्ञाऽपवादः। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** १।३।१२। अनुदात्तेतः ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्। **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** १।३।७२। स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले।

तिप्तस्—तिप् तस् झि, सिप् थस् थ, मिप् वस् मस्। त आताम्, झ, थास् आथाम् ध्वम्, इड्, वहि, महिङ्। एषां समाहारद्वन्द्वात् प्रथमैकवचनम्।

लः कर्मणि—सकर्मक धातु से कर्म और कर्ता में तथा अकर्मक धातु से भाव और कर्ता में लकार होता है।

वर्त—वर्तमान क्रियावृत्ति धातु से लट् लकार होता है।

तिप्तस्—लकार के स्थान में तिबादि १८ आदेश होते हैं और लकार के स्थान में तिबादि अष्टादश की परस्मैपद संज्ञा होती है।

तङा—तङ् प्रत्याहार और शानच् तथा कानच् प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा होती है।

लः परस्मै—अनुदात्तेत् जो धातु और उपदेश अवस्था में जो ङित् तदन्त जो धातु उससे पर लकार के स्थान में आत्मनेपद होता है।

स्वरित—स्वरितेत् और ञित् धातु से आत्मनेपद होता है कर्तृगामी क्रियाफल रहने पर।

शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८। आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् । **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः** १।४।१०१ तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः । **तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः** १।४।१०२। लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः । **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** १।४।१०५। तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः स्यात् । **अस्मद्युत्तम** १।४।१०७। तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः । **शेषे प्रथमः** १।४।१०८। मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् । भू ति इति जाते । **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** ३।४।११३। तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः । **कर्तरि शप्** ३।१।६८। कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् स्यात् । **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** ७।४।८४। अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । अवादेशः ।

तिङ्वाच्येति–तिङ्वाच्यम्=तिङर्थं, यत् कारकम्=कर्ता कर्म च, तद्वाचके युष्मत् शब्दे अप्रयुज्यमाने प्रयुज्यमाने च मध्यमः पुरुषः इति निकृष्टोऽर्थः ।

तथाभूते—तिङ्वाच्यकारकवाचिनि अस्मदि अप्रयुज्यमाने प्रयुज्यमाने च उत्तमः पुरुषः इत्यर्थः ।

शेषात्—आत्मनेपद के निमित्त से रहित जो धातु, उससे कर्ता में परस्मैपदसंज्ञा होती है । **तिङः**—'तिङ्' सम्बन्धी आत्मनेपद तथा परस्मैपद के जो तीन तीन वचन हैं वे यथाक्रम से प्रथम, माध्यम तथा उत्तम संज्ञकहोते हैं ।

तान्ये—लब्धप्रथमादि संज्ञक जो 'तिङ्' के तीन-तीन वचन वे प्रत्येक यथाक्रम से एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक होते हैं ।

युष्मत्—तिङ्वाच्य कारकवाची जो युष्मत् शब्द वह प्रयुज्यमान या अप्रयुज्यमान भी हो तो धातु से मध्यम पुरुष होता है ।

अस्मद्—तिङ्वाच्य कारकवाची जो अस्मद् शब्द वह प्रयुज्यमान अथवा अप्रयुज्यमान भी हो तो धातु से उत्तम पुरुष ही होता है ।

शेषे—शेष अर्थात् मध्यम और उत्तम पुरुष के अविषय में प्रथम पुरुष ही होता है । **तिङ्**—धात्वधिकार में उक्त तिङ् और शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है । **कर्तरि**–कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे धातु से शप् प्रत्यय होता है ।

सार्व—सार्वधातुक, आर्धधातुक के परे इगन्त अंग को गुण होता है ।

भवति । भवतः । **झोऽन्तः** ७।१।३ प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः स्यात् । अतो गुणे । भवन्ति । भवसि । भवथः । भवथ । **अतो दीर्घो यञि** ७।३।१०१। अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् यञादौ सार्वधातुके परे । भवामि । भवावः । भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः । यूयं भवथ ।

भवति—'भू सत्तायां धातुः' तस्मात् 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इति खले कपोतन्यायेन भूधातोः वर्तमानक्रियावृत्तित्वाल्लटि 'भू लट्' इति स्थिते 'हलन्त्यम्' इति टस्य 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इति लकारोत्तरवर्तिनः अकारस्य च इत्संज्ञायां लोपे च कृते 'भू ल्' इति जाते लस्येत्यधिकृत्य 'तिप्तस्झि–' इत्येते अष्टादश लादेशाः प्राप्ताः 'लः परस्मैपदम्' इति अष्टादशानामपि एषां परस्मैपदसंज्ञा संजाता, 'तङानावात्मनेपदम्' इति तङ्प्रत्याहारान्तःपातिनां नवानाम्, आत्मनेपदसंज्ञा संजाता, एवं तिबादयः परस्मैपदसंज्ञिनः प्रत्ययाः स्युः, किमुत आत्मनेपदसंज्ञिनः इत्याशङ्कायां 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' इत्यनेनाऽस्य भूधातोः आत्मनेपदनिमित्तहीनत्वात् कर्तरि परस्मैपदं प्राप्तं, परस्मैपदसंज्ञिनां नवानां मध्यात् कतमेन भाव्यमित्याकाङ्क्षायाम् 'तिङस्त्रीणि त्रीणि—' इत्यनेन क्रमात् त्रयाणां त्रिकाणां प्रथम-मध्यमोत्तमसंज्ञासु च लब्धप्रथमादिसंज्ञानां तिङ्स्त्रयाणां वचनानां प्रत्येकम्-एकवचन-द्विवचन-बहुवचनसंज्ञासु अत्र प्रथमेन भाव्यम्, उत मध्यमेन उत उत्तमेन, इति शङ्कायां 'शेषे प्रथमः' इति प्रथमपुरुषो भवितुं युक्तस्तथापि त्रीणि वचनानि, एषां मध्यात् कतमेन भाव्यमित्याकाङ्क्षायां 'द्व्येकयोः–' इत्यनेनाऽत्र एकवचनस्य विवक्षायां प्रथमपुरुषे तिपि अनुबन्धलोपे 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' इति तिपः सार्वधातुकसंज्ञायां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे प्राप्ते 'भूसुवोस्तिङि' इति गुणनिषेधे 'कर्तरि शप्' इति शपि अनुबन्धलोपे शित्वात् 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' इति शपोऽकारस्य सार्वधातुकसंज्ञायां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति भूवः ऊकारस्य गुणे 'एचोऽयवायावः' इत्यवादेशे 'भवति' इति ।

भवति—(सरलसाधनप्रकारः–) भूधातोः 'वर्तमाने लट्' इति लटि अनुबन्धलोपे 'तिप्तस्झि–' इति लः स्थाने तिपि पकारस्येत्संज्ञायां लोपे 'भू ति'

झो—प्रत्ययावयव 'झ' के स्थान में 'अन्त' आदेश होता है ।

अतो—यञादि सार्वधातुक के परे अदन्त अंग को दीर्घ होता है ।

अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः । **परोक्षे लिट्** ३।२।११५। भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य तिबादयः । **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** ३।४।८२। लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयो नव स्युः । 'भू अ' इति स्थिते । **भुवो वुग् लुङ् लिटोः** ६।४।८८। भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि । **लिटि धातोरनभ्यासस्य** ६।१।८। लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्त आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । 'भूव् भूव् अ' इति स्थिते । **पूर्वोऽभ्यासः** ६।१।४। अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् । **हलादिः शेषः** ७।४।६०। अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपः । **ह्रस्वः** ७।४।५९। अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् । **भवतेरः** ७।४।७३। भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि । **अभ्यासे चर्च** ८।४।५४। अभ्यासे

इति जाते 'कर्तरि शप्' इति शपि अनुबन्धलोपे 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' इति शपोऽकारस्य सार्वधातुकसंज्ञायां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे 'एचोऽयवायावः' इत्यवादेशे 'भवति' इति ।

णलदायः—णल्, अतुस् उस् । थल्, अथुस्, अ । णल्, व, म, इत्येते नव यथासंख्यं स्युः, इत्यर्थः ।

परो—भूत अनद्यतन और परोक्षार्थ वृत्ती धातु से लिट् लकार होता है ।

परस्मै-लिट् सम्बन्धी तिबादि ९ के स्थान में णलादि ९ आदेश होते हैं ।

भुवो—लुट्-लिट् सम्बन्धी अच् के परे भू को वुक् का आगम होता है ।

लिटि—लिट् के परे द्वित्ववर्जित अनभ्यास धात्ववयव प्रथम एकाच् तथा आदिभूत अच् से पर द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है ।

पूर्वो—षाष्ठ द्वित्व प्रकरण में जो द्वित्व विधान किये गये है, उनमें पूर्व की अभ्याससंज्ञा होती है ।

हलादिः—अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है और अन्य हल् का लोप हो जाता है ।

ह्रस्वः—अभ्यास सम्बन्धी अच् को ह्रस्व हो जाता है ।

भव—लिट् के परे भूधातु के अभ्यास के उकार को अकार आदेश होता है ।

अभ्यासे—अभ्यास में झष् के स्थान में जश् और खय् के स्थान में चर् हो जाता है ।

झलां चरः स्युर्जशश्च । "झलां जशः खयां चरः" इति विवेकः । बभूव । बभूवतुः । बभूवुः । **लिट् च** ३।४।११५। लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् । **आर्द्धधातुकस्येड् वलादेः** ७।२।३५। वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात् । बभूविथ । बभूवथुः । बभूव । बभूविव । बभूविम । **अनद्यतने लुट्** ३।३।१५। भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात् । **स्यतासी लृलुटोः** ३।१।३३। धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः । शपाद्यपवादः । लृ इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम् । **आर्धधातुकं शेषः** ३।४।११४ तिङ्शिद्भ्योन्यो धातोरिति विहितः प्रत्ययः एतत्संज्ञः स्यात् । इट् । **लुटः प्रथमस्य डारौरसः** २।४।८५। डारौरस्

बभूव—भूधातोः 'परोक्षे लिट्' इति लिटि अनुबन्धलोपे लः स्थाने 'तिप्तस्झि–' इति तिपि तत्स्थाने 'परस्मैपदानां–' इति णलि अनुबन्धलोपे 'भू अ' इति स्थिते गुणवृद्धी बाधित्वा 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः' इति भूधातोः वुगागमे अनुबन्धलोपे 'भूव् अ' इति जाते 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे 'भूव् भूव् अ' इति जाते 'पूर्वोऽभ्यासस्य' इति पूर्वस्य 'भूव्' इत्यस्य अभ्याससंज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति वलोपे 'ह्रस्वः' इति ह्रस्वे भु भूव् अ इति जाते 'भवतेरः' इत्यभ्यासोकारस्य अकारे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बकारे 'बभूव' इति ।

बभूविथ—भूधातोः 'परोक्षे लिट्' इति लिटि अनुबन्धलोपे लः स्थाने 'तिप्तस्झि-' इति सिपि तस्य 'लिटि च' इत्यार्धधातुकसंज्ञायां 'परस्मैपदानाम्–' इति सिपः स्थाने थलादेशे अनुबन्धलोपे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति इटि टस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः' इति वुगागमे अनुबन्धलोपे

लिट्—लिडादेश तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा होती है ।

आर्ध—वलादि आर्धधातुक को इडागम होता है ।

अन—भविष्यत् अनद्यतन अर्थ में धातु से लुट् लकार होता है ।

स्यतासी—लृ, लृङ् तथा लुट् के परे यथाक्रमेण धातु से स्य और तासि प्रत्यय होता है ।

आर्ध—तिङ्-शित् से शेष (भिन्न) धात्वधिकार में विहित प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा होती है ।

लुटः—लुट् लकार सम्बन्धी प्रथम पुरुष के स्थान में यथाक्रमेण डा, रौ, रस् आदेश होता है ।

एते क्रमात्स्युः । डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । भविता । **तासस्त्योर्लोपः** ७।४।५०। तासेरस्तेश्च लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे । **रि च** ७।४।५१। रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः । भवितास्मः । **लृट् शेषे च** ३।३।१३। भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट्स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा । स्यः । इट् । भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविस्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः । **लोट् च** ३।३।१६२ विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् ।

'लिटि धातोः–' इति भूव् इत्यस्य द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इत्यभ्याससंज्ञायां 'ह्रस्वः' इति ह्रस्वे 'भवतेरः' इति अभ्यासोकारस्य अकारे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बकारे 'बभूविथ' इति ।

भविता—भूधातोः 'अनद्यतने लुट्' इति लुटि तस्य स्थाने 'तिप्तस्झिः' इति तिपि अनुबन्धलोपे 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' इति सार्वधातुकसंज्ञायां 'कर्तरि शप्' इति शपि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'स्यतासी लृलुटोः' इति तास् प्रत्यये 'आर्धधातुकं शेषः' इति तासः आर्धधातुकत्वे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति इटि अनुबन्धलोपे 'भू इ तास् ति' इति जाते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' इति तिपो डादेशे अनुबन्धलोपे डित्वसामर्थ्यात् अभस्याऽपि टेर्लोपे 'भविता' इति ।

लृट् शेषे च—'धातोः' इत्यधिक्रियते, 'भविष्यति गम्यादयः' इत्यतो 'भविष्यति' इत्यनुवर्तते, 'तुमुनण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' इति सूत्रोपात्तक्रियायां क्रियायार्थायामित्यतो भिन्नः इति शेषः । क्रियायां क्रियार्थायाम् असत्यामिति लभ्यते । चकारात् क्रियायां क्रियार्थायां सत्यामित्यपि लभ्यते । तदाह-क्रियार्थायामिति । क्रियार्थकक्रिया यथा–'पठितुं इच्छति' इति-पिपठिषति ।

तास—सादि प्रत्यय के परे तास् और अस्ति सम्बन्धी सकार का लोप होता है । **रि च**—रादि प्रत्यय के परे भी तास् और अस्ति सम्बन्धी सकार का लोप होता है ।

लृट्—भविष्यत् के अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है, क्रियार्थक क्रिया रहे या न रहे । **लोट्**—विध्यादि अर्थ में धातु से लोट् लकार होता है ।

आशिषि लिङ् लोटौ ३।३।१७३। **एरुः** ३।४।८६। लोट इकारस्य उः स्यात्। भवतु। **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** ७।१।३५।आशिषि तुह्योस्तातङ् वा स्यात् परत्वात्सर्वादेशः। भवतात्। **लोटो लङ् वत्** ३।४।८५। लोटो लङ इव कार्यं स्यात्। लोटस्तामादयः। सलोपश्च। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** ३।४।१०१। ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः। भवताम्। भवन्तु। **सेर्ह्यपिच्च** ३।४।८७। लोटः सेर्हिः स्यात् सोऽपिच्च। **अतो हेः** ६।४।१०५। अतः परस्य हेर्लुक् स्यात्। भव। भवतात्। भवतम्। भवत। **मेर्निः** ३।४।८९। लोटो मेर्निः स्यात्। **आडुत्तमस्य पिच्च** ३।४।९२। लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च। "हिन्योरुत्वं न इत्त्वोच्चारणसामर्थ्यात्"। भवानि। **ते प्राग्धातोः** १।४।८०। ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः। **आनि लोट्** ८।४।१६। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि (**दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः**) दुःस्थितिः। दुर्भवानि (अन्तः-

---

आशिषि—आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होता है।

एरुः—लोट् लकार सम्बन्धी इकार को उकार हो जाता है।

तुह्यो—आशीर्वाद अर्थ में तु और हि के स्थान में तातङ् आदेश होता है—विकल्प से। **लोटो**—लोट् के स्थान में लङ् के समान तामादि आदेश होता है।

तस्थ–ङित् लकार सम्बन्धी तसादि के स्थान में तामादि आदेश होता है।

सेर्ह्य—लोट् लकार सम्बन्धी सि के स्थान में हि आदेश होता है और वह अपित् कहाता है। **अतो**—अदन्त अंग से पर हि का लोप हो जाता है।

मेर्निः—लोट् लकार सम्बन्धी मि के स्थान में नि आदेश हो जाता है।

आडु—लोट् सम्बन्धी उत्तम पुरुष को आट् का आगम होता है और वह आट् पित् कहाता है।

ते प्रा–गति तथा उपसर्ग संज्ञक प्रादि का धातु से पूर्व ही प्रयोग होता है।

आनि—उपसर्ग निमित्त से पर लोट् के स्थान में हुए आनि के नकार को णकार होता है।

दुरः—षत्व तथा णत्व के विषय में दुर् की उपसर्गसंज्ञा नहीं होती है।

अन्तः–आङ् विधि, कि विधि तथा णत्व विधि के विषय में अन्तर शब्द को भी उपसर्ग संज्ञा होती है।

शब्दस्याङ्कविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्) अन्तर्भवाणि । नित्यं ङितः ३।४।९९। सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः स्यात् । अलोऽन्त्यस्येति सलोपः । भवाव । भवाम । **अनद्यतने लङ् ३।२।१११।** अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् । लुङ्-लङ्-लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१। एष्वङ्गस्याट् स्यात् स च उदात्तः । **इतश्च ३।४।१००।** ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः स्यात् । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम । **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१।** एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात् । **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३।** लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च । **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९।**

विधिनिमन्त्रणेति--विधः = प्रेरणम्-भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् । यथा-भवान् पुस्तकं पठतु पठेत् वा । निमन्त्रणं = नियोगकरणम्-आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम् । यथा-अद्य मातामहश्राद्धे दौहित्रादयो भवन्तः भुञ्जताम् भुञ्जीरन् वा । अधीष्टः=सत्कारपूर्वको व्यापारः । यथा-मम पुत्रं भवान् पाठयतु पाठयेत् वा । सम्प्रश्नः = सम्प्रसारणम् । यथा-किं भो व्याकरणं भवान् अधीयीत । प्रार्थनं=यच्ञा । यथा-भवान् मे वस्त्रं ददातु दद्यात् वा ।

नित्यं—ङित् लकार सम्बन्धी सकारान्त उत्तम पुरुष के सकार का नित्य ही लोप होता है ।

अन—अनद्यतन भूतार्थवृत्ति धातु से लङ् होता है ।

लुङ्—लुङ्, लङ्, लृङ्, के परे अंग को अट् का आगम होता है तथा वह उदात्त होता है ।

इतश्च—ङित् लकार सम्बन्धी इकारान्त परस्मैपद के अन्त इकार का लोप होता है ।

विधि—विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न तथा प्रार्थना अर्थो में धातु से लिङ् लकार होता है ।

यासुट्—लिङ् लकार सम्बन्धी परस्मैपद को यासुट् का आगम होता है । और वह ङित् कहलाता है ।

लिङः—सार्वधातुक लिङ् सम्बन्धी अनन्त्य सकार का लोप होता है ।

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः स्यात् । इति प्राप्ते । **अतो येयः** ७।२।८०। अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य तास् इत्यस्य इय् स्यात् । गुणः । **लोपो व्योर्वलि** ६।१।६६। वकारयकारयोर्लोपः स्याद्वलि । भवेत् । भवेताम् । **झेर्जुस्** ३।४।१०८। लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम । **लिङाशिषि** ३।४।११६। आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् । **किदाशिषि** ३।४।१०४। आशिषि लिङो यासुट् कित् । स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः । **ग्क्ङिति च** १।१।१५। गित्किङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः । भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म ।

भवेत्—भूधातोः 'विधिनिमन्त्रण–' इति लिङि अनुबन्धलोपे लः स्थाने 'तिप्तस्–' इति तिपि पस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' इति सार्वधातुकसंज्ञायां 'कर्तरि शप्' इति शपि अनुबन्धलोपे शित्वात् 'तिङ्शिते'ति सार्वधातुकसंज्ञायां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे 'एचोऽयवायावः' इत्योकारस्य अवादेशे 'इतश्च' इति इकारलोपे 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' इति यासुटि उटि गते 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति यासः सस्य लोपे प्राप्ते 'अतो ये यः' इति यासः स्थाने इयादेशे 'आद्गुणः' इति गुणे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'भवेत्' इति ।

भूयास्ताम्—भूधातोः 'आशिषि लिङ्लोटो' इति लिङि तत्स्थाने 'तिप्तस्–' इति तसि 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' इति तसः स्थाने तामादेशे 'लिङाशिषि' इति आर्धधातुकत्वात् 'कर्तरि शप्' इत्यस्याऽप्रवृत्तौ 'भू ताम्' इति स्थिते 'यासुट् परस्मैपदेषु–' इति यासुटि उटि गते 'सुट् तिथोः' इति सुटि उटि गते 'भू यास् ताम्' इति जाते 'किदाशिषि' इति कित्वात् गुणनिषेधे 'स्कोः—' इति यासुटः सस्य लोपे 'भूयास्ताम्' इति ।

अतो—अत् से पर सार्वधातुकावयव यास् को इय् होता है ।

लोपो—यकार-वकार का लोप हो, वल् के परे ।

झेर्जुस्—लिङ् लकार सम्बन्धी झि के स्थान में जुस् होता है ।

लिङ—आशिष अर्थ में लिङादेश तिङ् को आर्धधातुकसंज्ञा होती है ।

किदा—आशिष अर्थ में लिङ सम्बन्धी यासुट् किट् होता है ।

ग्क्ङि—गित्, कित् और ङित् निमित्तक इग्लक्षण गुण वृद्धि नही होती है ।

लुङ् ३।२।११०। भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् । **माङि लुङ्** ३।३।१७५। सर्वलकारापवादः । **स्मोत्तरे लङ् च** ३।३।१७६। स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् । च्लि लुङि ३।१।४३। शबाद्यपवादः । **च्लेः सिच्** ३।१।४४। इचावितौ । **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** २।४।७७। एभ्यः सिचो लुक् स्यात् । गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते । **भूसुवोस्तिङि** ७।३।८८। भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न स्यात् । अभूत् । अभूताम् । अभुवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम । **न माङ्योगे** ६।४।७४। अडाटौ न स्तः । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् । मा स्म भूत् । **लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ** ३।३।१३९। हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभिष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्, इत्यादि । अत

अभूत्—भूधातोः 'लुङ्' इति सूत्रेण भूतार्थे लुङिः, लुङः स्थाने 'तिप्तस्झि–' इति तिपि अनुबन्धलोपे 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'इतश्च' इति सिपः इकारलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'च्लेः सिच्' इति च्लेः सिचि 'गातिस्थे'ति सिचो लुकि 'भूसु वोस्तिङि' इति गुणनिषेधे 'अभूत्' इति ।

अभूवन्—भूधातोः 'लुङ्' इति भूतार्थे लुङिः लुङः स्थाने 'पिप्तस्झि—' इति झौ 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लिलुङि' इति च्लौ 'च्लेः सिच्' इति सिचि 'गातिस्थे'ति सिचो लुकि 'झोऽन्तः' इति झस्य अन्तादेशे 'इतश्च' इतीकारलोपे 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः' इति वुगागमे अनुबन्धलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति तलोपे 'अभूवन्' इति ।

लुङ्—भूतार्थवृत्ति धातु से लुङ् लकार होता है ।

माङि—माङ् उपपद रहने पर धातु से लुङ् और स्म उत्तर पद में रहने पर लङ् लकार होता है। **च्लि**—लुङ् के परे धातु से च्लि प्रत्यय होता है।

च्लेः—च्लि के स्थान में सिच् हो जाता है ।

गाति—इणादेश गा, स्था तथा घुसंज्ञक धातु एवं पा और भूधातुओं से पर जो सिच् उसका लोप हो जाता है, परस्मैपद के परे ।

भूसु—भूसु तथा सु धातुओं को गुण नहीं होता है, सार्वधातुक ङित् के परे ।

न माङ्—माङ् के योग में अंग को अट् या आट् का आगम नहीं होता है ।

लिङ्—हेतु—हेतुमद्भावादि अर्थं रहने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से लङ्

सातत्यगमने ॥ २ ॥ अतति । **अत आदेः** ७।४।७०। अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् । आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत । आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति । अततु । **आडजादीनाम्** ६।४।७२। अजादेरङ्गस्याट् स्यात् लुङ्-लङ्-लृङ्क्षु । आतत् । अतेत् । अत्यात् । अत्यास्ताम् । लुङि सिचि इडागमे कृते । **अस्तिसिचोऽपृक्ते** ७।३।९६। विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः स्यात् । **इट ईटि** ८।२।२८। इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे । (**सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः**) आतीत् । आतिष्टाम् । **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** ३।४।१०९। सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस् स्यात् । आतिषु । आतीः । आतिष्टम् । आतिष्ट । आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । आतिष्यत् । षिध गत्याम् ॥३॥

ह्रस्वं लघु १।४।१०। ह्रस्वं लघुसंज्ञं स्यात् ।

आतीत्—अत्-धातोर्लुङि लुङस्तिपि 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'च्लेः सिच्' इति सिचि इचि गते 'आडजादीनाम्' इत्यादि 'आटश्च' इति वृद्धौ सिचः सस्य आर्धधातुकत्वात् 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति इटि 'आति स् ति' इति जाते 'इतश्च' इति तिपः इकारलोपे तिपः 'तः' इत्यस्य 'अपृक्त एकाल् प्रत्ययः' इत्यपृक्तसंज्ञायाम् 'अस्ति सिचोऽपृक्ते:' इति ईडागमे 'इट ईटि' इति सलोपे 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः' इति वार्तिकेन सिज्लोपस्य असिद्धत्वाऽभावेन सवर्णदीर्घे 'आतीत्' इति ।

लकार होता है—क्रिया की अनिष्पत्ति यदि गम्यमान हो ।

अत—अभ्यास के आदि अत् को दीर्घ होता है ।

आड—लुङ् लङ् तथा लृङ् के परे अजादि अंग को आट् का आगम होता है । **अस्ति**—विद्यमान सिच् और अस् धातु से पर अपृक्त हल् को ईडागम होता है । **इट**—इट् से पर सकार का लोप होता है, ईट् के परे ।

सिज्लोप—सिच् सम्बन्धि सकार के लोप होने पर (दीर्घ) एकादेश की असिद्धता नहीं होती है । **सिज्**—सिच् तथा अभ्यस्त संज्ञक से पर एवं विद् धातु से पर ङित् सम्बन्धी झि को जुस् आदेश होता है ।

ह्रस्वः—ह्रस्व वर्ण की लघुसंज्ञा होती है ।

संयोगे गुरुः १।४।११। संयोगे परे ह्रस्वं गुरुसंज्ञं स्यात् । **दीर्घं च १।४।१२।** दीर्घं च गुरुसंज्ञं स्यात् । **पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६।** पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः स्यात् सार्वधातुकार्धधातुकयोः । धात्वादेरेति सः । सेधति । षत्वम् । सिषेध ।

असंयोगाल्लिट् कित् १।२।५। असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् । सिषिधतुः । सिषिधुः । सिषेधिथ । सिषिधथुः । सिषिध । सिषेध । सिषिधिव । सिषिधिम । सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । एवं चिती संज्ञाने ॥ ४ ॥ चेतति । चिचेत । चेतिता । चेतिष्यति । चेततु । अचेतत् । चेतेत् । चित्यात् । अचेतीत् । अचेतिष्यत् । शुच शोके ॥५॥ शोचति । शुशोच । शोचिता । शोचिष्यति । शोचतु । अशोचत् । शोचेत् । शुच्यात् । अशोचिष्यत् । गद व्यक्तायां वाचि ॥६॥ गदति ॥ **नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ८।४।१७।** उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य नेर्णः स्यात् गदादिषु परेषु । प्रणिगदति । **कुहोश्चुः ७।४।६२।** अभ्यासकवर्गहकारयोश्च चवर्गादेशः स्यात् । **अत उपधायाः ७।२।११६।** उपधाया अतो वृद्धिः स्यात्

संयो—संयुक्त वर्ण पर में रहने पर ह्रस्व वर्ण की भी गुरुसंज्ञा होती है ।

दीर्घ—एवं दीर्घ वर्ण की भी गुरुसंज्ञा होती है ।

पुगन्त—सार्वधातुक प्रत्यय के परे पुगन्त लघुपधाङ्गावयव इक् को गुण होता है ।

असं—संयोग से पर अपित् लिट् कित् होता है ।

नेर्गद्—गद, नदादि धातु के परे उपसर्गस्थ निमित्त रेफ-षकार से पर नि के न को णत्व होता है ।

कुहो—अभ्यास सम्बन्धी कवर्ग और हकार को चुत्व (चवर्ग) होता है ।

अत—ञित् णित् प्रत्यय के परे उपधा सम्बन्धी अत् को वृद्धि होती है ।

णल—उत्तम पुरुष सम्बन्धी णल् को विकल्प से णिद्वद्भाव होता है ।

ञिति णिति च प्रत्यये परे । जगाद । जगदतुः । जगदुः । जगदिथ । जगदथुः । जगद । **णलुत्तमो वा** ७।१।९१। उत्तमो णल्वा णित्स्यात् । जगाद, जगद । जगदिव । जगदिम । गदिता । गदिष्यति । गदतु । अगदत् । गदेत् । गद्यात् ।
अतो हलादेर्लघोः ७।२।७। हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वा स्यादिडादौ परस्मैपदे सिचि । अगादीत्, अगदीत् । अगदिष्यत् । णद अव्यक्ते शब्दे ।। ७ ।। **णो नः** ६।१।६५। धात्वादेर्णस्य नः स्यात् । णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथनाधनन्दनक्कनॄनृतः
उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८।४।१४। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः स्यात् । प्रणदति । प्रणिनदति । नदति । ननाद ।
अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०। लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्वं स्यादभ्यासलोपश्च किति लिटि ।

जगाद—गद्धातोर्लिटः तिपि 'परस्मैपदानाम्—' इति तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातो—' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इति लोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासगकारस्य चुत्वेन जकारे 'जगद् अ' इति स्थिते 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'जगाद' इति । (उत्तमपुरुषे तु 'णलुत्तमो वा' इति णलो विभाषया णित्वे 'जगाद—जगद' इति रूपद्वयं भवति ।

अगादीत्— गद्धातोर्लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे 'लुङ्लङ—' इत्यडागमे 'च्लि लुङि' इति च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्य वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्ति सिचः—' इति तस्य च ईटि अनुबन्धलोपे 'इट ईटि' गति सलोपे 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः' इति सिज्लोपस्यासिद्धत्वाभावेन सवर्णदीर्घे 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धौ 'अगादीत्' इति । वृद्ध्यभावे 'अगदीत्' इति ।

अतो—इडादि परस्मैपदपरक सिच् के परे हलादि सम्बन्धी लघु अकार को विकल्प से वृद्धि होती है ।

णो नः— धातु के आदि णकार को नकार होता है ।

उप—पद समस्त हो या असमस्त हो, उपसर्गस्थ निमित्त (रेफ-षकार) से पर णोपदेश धातुसम्बन्धी नकार को णत्व होता है ।

अत—लिट् निमित्तक आदेश नहीं हुआ हो, ऐसा जो अंग तदवयव जो असंयुक्त हल्मध्यस्थ अकार उसको एत्व और अभ्यास का लोप होता है, कित्, लिट् के परे ।

नेदतुः । नेदुः । थलि च सेटि ६।४।१२१। प्रागुक्तं स्यात् । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद, ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत् । अनदिष्यत् । टुनदि समृद्धौ ॥८॥ आदिर्ञिटुडवः १।३।५। उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः । इदितो नुम् धातोः ७।१।५८। नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । नन्द्यात् । अनन्दीत् । अनन्दिष्यत् । अर्च पूजायाम् ॥९॥ अर्चति । तस्मान्नुड् द्विहलः ७।४।७१। द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतात्परस्य नुट् स्यात् । आनर्च । आनर्चतुः । अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चतु । आर्चत् । अर्चेत् । अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् । व्रज गतौ ॥१०॥ व्रजति । वव्राज । व्रजिता । व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् । वदव्रजहलन्तस्याचः ७।२।३। वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाङ्गस्य वृद्धिः स्यात् सिचि परस्मैपदेषु । अव्राजीत् । अव्रजिष्यत् । कटे वर्षावरणयोः ॥११॥ कटति । चकाट । चकटतुः । कटिता । कटिष्यति । कटतु । अकटत् । कटेत । कट्यात् । ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७।१।५। ह्म्यन्तस्य

नेदतुः—णद्-धातोर्लिटः तसि 'णो नः' इति धातोर्णस्य नत्वे तसोऽतुसि 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति लोपे 'अत एक हल्मध्ये' इति एत्वे अभ्यासलोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'नेदतुः' इति ।

आनर्च—अर्च् धातोर्लिटि लिटस्तिपि 'परस्मैपदानाम्–' इति तिपो णलि द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इति हलो लोपे 'अत आदेः' इत्यभ्यासाकारस्य दीर्घे 'तस्मान्नुड्द्विहलः' इति नुटयनुबन्धलोपे 'आनर्च' इति ।

थलि—सेट् थल् के परे भी उपर्युक्त एत्वाऽभ्यास लोप होता है ।

आदि—उपदेश अवस्था में धातु के आदि में वर्तमान ञि, टु, डु को इत्संज्ञा होती है ।

इदि—इदित् धातु को नुमागम होता है ।

तस्मा—द्विहल् धातु को दीर्घीभूत आकार से पर नुडागम होता है ।

वद—परस्मैपदपरक सिच् के परे वद, व्रज् और हलन्त धातु के अच् को वृद्धि होती है ।

ह्म्यन्त—परस्मैपदक सिच् के परे ह्मान्त, मान्त और यान्त धातु तथा क्षण्, श्वस्, जागृ धातु और ण्यन्त धातु एवं श्वि धातु के अच् को वृद्धि होती है ।

क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्न स्यादिडादौ सिचि। अकटीत्। अकटिष्यत्। गुपू रक्षणे। ॥१२॥ **गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः** ३।१।२८। एभ्य आयः प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे। **सनाद्यन्ता धातवः** ३।१।३२। सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः स्युः। धातुत्वाल्लडादयः। गोपायति। **आयादय आर्धधातुके वा** ३।१।३१। आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः। **(कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः)**, लिटि आस्कासोराम्-विधानान्मस्य नेत्वम्। **अतो लोपः** ६।४।४८ आर्धधातुकोपदेशे यदन्दन्तं तस्यातो लोपः स्यादार्धधातुके। **आमः** २।४।८१। आमः परस्य लुक् स्यात्। **कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि** ३।१।४०। आमन्तााल्लिटपराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते। तेषां द्वित्वादि। **उरत्** ७।४।६६। अभ्यास ऋवर्णस्याऽत् स्यात् प्रत्यये परे। रपरः हलादिः शेषः। वृद्धिः।

अकटीत्—कट्धातोर्लुङास्तिपि अनुबन्धलोपे 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे 'च्लि लुङि' इति च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्ति सिचः–' इति तस्य च ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'ह्म्यन्तक्षण–' इति तन्निषेधे सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'अकटीत्' इति।

गुप्—गुप्, धूप् विच्छ्, पण् तथा पन् धातुओं मे स्वार्थ में आय प्रत्यय होता।

सना—सनादि अर्थात् सन् से लेकर 'कमेर्णिङ्' सूत्रविहित णिङ् प्रत्ययान्तों की धातुसंज्ञा होती है।

आया—आर्धधातुक की विवक्षा में आय, इयङ् और णिङ् प्रत्यय विकल्प से होता है।

कास्य—लिट् के परे कास् तथा अनेकाच् धातुओं से आम् प्रत्य होता है।

अतो—आर्धधातुक के परे उपदेशावस्था में अदन्त आर्धधातुक के अकार का लोप होता है।

आमः—आम् से पर लिट् का लोप होता है।

कृञ्चानु—आमन्त से पर कृ, भू, अस् धातुओं का अनुप्रयोग होता है।

उरत्—प्रत्यय के परे अभ्यास सम्बन्धी ऋवर्ण के स्थान में अत् आदेश होता है।

गोपायाञ्चकार । द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते । **द्विर्वचनेऽचि १।१।५९।** द्वित्वनिमित्तेऽचि परे अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये । गोपायाञ्चक्रतुः । **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०।** उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येण्न स्यात् ।

"ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः ।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाऽचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः" ॥

कान्तेषु शक्लेकः । चान्तेषु पच्मुच्रिच्वच्विच्सिचः षट् । छान्तेषु प्रच्छेकः ।

गोपायाञ्चकार—गुप् धातोः आर्धधातुकविवक्षायामेव 'आयादय आर्धधातुके वा' इति विभाषया आयप्रत्यये 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'सनाद्यन्ता–' इति धातुत्वात् लिटि 'कास्यनेकाच्–' इति आमि आमो मकारस्य इत्संज्ञायां लोपे च प्राप्ते लिटि आस्कासोराम्विधानसामर्थ्यात् मकारस्य इत्त्वाभावेन लोपाऽभावे 'गोपाय आम् लिट्' इति जाते, 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'आमः' इति सूत्रेण लिटो लुकि लिटः कित्वात् प्रत्ययलक्षणेन गोपायामित्यस्य कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुबुत्पत्तौ 'कृन्मेजन्तः' इति अव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' इति तस्यापि लुकि 'गोपायाम्' इत्यवशिष्टे 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे लिटस्तिपि तिपो णपि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इति अभ्यासऋवर्णस्य अकारे रपरे च कृते 'गोपायाम् कर् कृ अ' इति भूते 'हलादिः शेषः' इति रलोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासककारस्य चुत्वेन चकारे मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धिं परत्वाद् बाधित्वा 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे रपरत्वे च कृते 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'गोपायाञ्चकार' इति । आयप्रत्ययाऽभावे 'जुगोप' इति ।

द्विर्वच—द्वित्व कर्तव्य रहे तो द्वित्वनिमित्तक अच् के परे अजादेश नहीं होता है ।

एका—उपदेश अवस्था में एकाच् अनुदात्त धातु से पर आर्धधातुक को इट् नहीं होता है ।

ऊदृ—दीर्घ ऊकारान्त और दीर्घ ॠकारान्त धातु यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रि, वृङ्, और वृञ् धातु से भिन्न जो एकाच् और अजन्त धातु वे अनुदात्त हैं ।

जान्तेषु त्यज्निजिर्भज्भञ्ज्भुज्भ्रस्ज्मस्ज्यज्युज्रुज्रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्जि-सञ्ज् सृजः पञ्च् दश। दान्तेषु अद्क्षुद्खिद्तुद्नुद्पद्यभिद्विद्यतिर्विनद्विन्द्शद्-सद्स्विद्यस्कन्दहदः षोडश। धान्तेषु क्रुध्क्षुध्बुध्बन्ध्युध्रुधराध्व्यध्शुध्साध्-सिध्या एकादश। नान्तेषु मन्यहनौ द्वौ। पान्तेषु आप्क्षुप्क्षप्तपतिप्तृप्यदृप्य-लिप्लुप्वप्शप्स्वप्सृपस्त्रयोदश। भान्तेषु यभ्रभ्लभस्त्रयः। मान्तेषु गम्नम्-यम्रमश्चत्वारः। शान्तेषु क्रुश्दंश्दृश्दिश्मृश्रिश्रुश्लिश्विश्स्पृशो दश। षान्तेषु कृष्त्विष्तुष्द्विष्दुषपुष्यपिष्विष्शिष्शुषश्लिष्या एकादश। सान्तेषु घसूवसती द्वौ। हान्तेषु दुह्दिह्दुह्नह्मह्रुह्लिह् वहोऽष्टौ।

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम्।

गोपायाञ्चकर्थ। गोपायाञ्चक्रतुः। गोपायाञ्चक्र। गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चकृव। गोपायाञ्चकृम। गोपायांबभूव। गोपायामास। जुगोप। जुगुपतुः। जुगुपुः। **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७।२।४४।** स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्। जुगोपिथ, जुगोप्थ। गोपायिता, गोपिता, गोप्ता। गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्। गोपाय्यात्। गुप्यात्। अगोपायीत्। **नेटि ७।२।४।** इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न स्यात्। अगोपीत्, अगोप्सीत्। **झलो झलि ८।२।२६।** झलः परस्य सस्य

अगोपायीत्—गुप्धातोः 'आयादय आर्धधातुके वा' इति आयप्रत्यये 'सनाद्यन्ता' इति धातुसंज्ञायां लुङि 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे लुङः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ च्लेः सिचि इचि गते आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्तिसिचः–' इति तस्य च ईटि अनुबन्धलोपे 'अतो लोपः' इति अलोपे 'इट ईटि' इति सलोपे सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'पुगन्ते' ति गुणे 'अगोपायीत्' इति। पक्षे 'अगोपीत्–अगोप्सीत्' इति।

अगोपीत्—'आयादये'ति आयप्रत्ययाऽभावे गुप्धातोर्लुङः तिपि अटि च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'स्वरतिसूति–' इति विभाषया सस्य इटि 'अस्तिसिचः–'

अनु—हलन्त धातुओं में एक सौ तीन धातु अनुदात्त है।

स्वरति—स्वरत्यादि और ऊदित् धातुओं से पर वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम विकल्प से होता है।

नेटि—इडादि सिच् के परे हलन्तलक्षण को वृद्धि नहीं होती है।

झलो—झल् के परे झल् से पर सिच् के सकार का लोप होता है।

लोपः स्याज्झलि। अगोप्ताम्। अगोप्सुः। अगोप्सीः। अगोप्तम्। अगोप्त। अगोप्सम्। अगोप्स्व। अगोप्स्म। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्। क्षि क्षये॥ १३॥ क्षयति। चिक्षाय। चिक्षियतुः। चिक्षियुः। एकाच इति निषेधे प्राप्ते **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७।२।१३।** क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात्। **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७।२।६१।** उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण् न स्यात्। **उपदेशेऽत्वतः ७।२।६२।** उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण् न स्यात्। **ऋतो भरद्वाजस्य ७।२।६३।** तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेड् भारद्वाजस्य मते। तेन अन्यस्य स्यादेव। अयमत्र संग्रहः—

इति तस्य ईटि अनुबन्धलोपे 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'वदव्रजहलन्तस्याचः' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'नेटि' इति निषेधे पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'अगोपीत्' इति। इडभावपक्षे 'अगुप् स् ईत्' इति स्थिते 'वदव्रजे'ति वृद्धौ 'अगौप्सीत्' इति।

ऋतोभारद्वाजस्य— भरद्वाजस्य मते ऋदन्ताद् धातोः परस्य न इट् इति फलितार्थः। हृञ्—वृञादौ 'अचस्तास्वत्' इत्येव सिद्धम्। ततो नियमार्थमिदमित्याह—ऋदन्तादेवेति। अनृदन्तात् परस्य तु थलः इट् स्यादेवेत्येवकारार्थः। तदाह—अन्यस्य स्यादेवेति। ऋदन्तभिन्नात् परस्य थलः इट् स्यादेवेत्यर्थः।

अयमत्र— कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि' इति 'अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्' इति 'उपदेशेऽत्वतः' इति, 'ऋतो भारद्वाजस्य' इति च सूत्रचतुष्टयस्य विषयाणि।

कृसृ—कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु तथा श्रु धातुओं से पर ही लिट् को इट् नहीं होता है, किन्तु क्रयादि धातुओं से भिन्न धातुओं के परे लिट् को इट् होता ही है, चाहे वह धातु अनिट् भी क्यों न हो।

अचः—उपदेशावस्था में अजन्त जो धातु वह यदि तासि प्रत्यय के परे नित्य अनिट् हो तो, उससे पर थल् को इट् नहीं होता है।

उप—उपदेशावस्था में आकारवान् जो धातु, वह यदि तासि प्रत्यय के परे नित्य अनिट् हो तो उससे पर थल् को इट् नहीं होता है।

ऋतो—तासि प्रत्यय के परे नित्य अनिट् ऋदन्त धातु से पर ही थल् को इट् नहीं होता है—भारद्वाजाचार्य के मत से (अन्यमत से होगा ही है)।

'अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्' ।।

चिक्षियिथ, चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय, चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेष्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् । **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** ७।४।२५। अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात् यादौ प्रत्यये नतु कृत्सार्वधातुकयोः । क्षीयात् । **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** ७।२।१। इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि । अक्षैषीत् । अक्षेष्यत् । तप सन्तापे ।।१४।। तपति । ततप । तेपतु । तेपुः । तेपिथ, ततप्थ । तप्ता । तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अतप्स्यत् । क्रमु पादविक्षेपे ।। १५ ।।

संग्रहो वक्ष्यते इत्यर्थः । अजन्त इति यो धातुः ऋदन्तभिन्नोऽजन्तो ह्रस्वाकारवान् वा तासौ नित्याऽनिट् सोऽयं थलि विकल्पितेट्क इति पूर्वार्धस्यार्थः । अत्र 'ईदृक्' इत्यस्य तासौ नित्याऽनिडित्यर्थः । यः ऋदन्तस्तासौ नित्याऽनिट् स थलि नित्याऽनिडित्यर्थः । 'अचस्तास्वत्' इति पाणिनिमते ऋतो भारद्वाजस्य' इति भारद्वाजमतेऽपि तस्य अनिट्कत्वादिति भावः ।

कादन्यः इति —क्राद्यष्टभ्योऽन्यो धातुः लिटि नित्यं सेडित्यर्थः । क्राद्यष्टभ्यः एव परस्य लिटि नेडिति 'कृसृभृवृ—' इति सूत्रेण नियमितत्वादिति भावः । एवञ्च प्रकृते क्षिधातोरजन्तत्वात् तासौ नित्याऽनिट्त्वाच्च थल इड्विकल्पः इति सिद्धम् । तदाह—चिक्षयिथ–चिक्षेथ इति मूले ।

चिक्षयिथ – क्षिधातोर्लिटि लटस्थाने सिपि सिपो थलि 'लिटि धातोः—' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे अन्त्यस्य लोपे 'ऋतो भारद्वाजस्य' इति इटि अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुयोः' इति गुणे अयादेशे 'चिक्षयिथ' इति । इडभावपक्षे 'चिक्षेथ' इति ।

अक्षैषीत्—क्षिधातोर्लुङि तिपि 'लुङ्लङ्—' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ च्लेः सिचि 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति ईटि अनुबन्धलोपे 'सिचि वृद्धिः—' इति वृद्धौ 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे 'अक्षैषीत्' इति ।

अताप्सीत्—तप्धातोर्लुङि लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्—' इत्यटि अनुबन्धलोपे

अकृत्—अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है, यकारादि प्रत्यय के परे, किन्तु यकारादि कृत् तथा सार्वधातुक के परे दीर्घ नहीं होता ।

सिचि—परस्मैपद सिच् के परे इगन्त अङ्ग को वृद्ध्यादेश हो जाता है ।

वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ३।१।७०। एभ्यः श्यन्वा स्यात् कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे। पक्षे शप्। **क्रमः परस्मैपदेषु** ७।३।७६। क्रमो दीर्घः स्यात् परस्मैपदे शिति। क्राम्यति, क्रामति। चक्राम्। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्राम्यतु, क्रामतु। अक्राम्यत्, अक्रमत्। क्राम्येत्। क्रामेत्। क्राम्यात्। अक्रमीत्। अक्रमिष्यत्। पा पाने ॥१६॥ **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** ७।३।७७। पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे। पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः। पिबति। **आत औ णलः** ७।१।३४। आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात्। पपौ। **आतो लोप इटि च** ६।४।६४। अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः स्यात्। पपतुः। पपुः। पपिथ, पपाथ। पपथुः। पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्। **एर्लिङि** ६।४।६७। घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि।

मध्ये चलौ चलेः सिचि इचि गते 'एकाच उपदेशे–' इति सिचः इण्निषेधे 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि 'वदव्रजे'ति वृद्धौ 'अनाप्सीत्' इति।

पाघ्रा—पा घ्रा ध्मा स्था म्ना दाण् दृशि अर्ति सर्ति शद् सद् एषां द्वन्द्वात् प्रथमाबहुवचनम्। पिब जिघ्र धम तिष्ठ मन यच्छ पश्य ऋच्छ धौ शीय साद एषां द्वन्द्वात् प्रथमाबहुवचनम्। यथासंख्यमादेशाः।

वा भ्रा—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे—भ्राश्, लाश्, भ्रम्, क्लम्, त्रस्, त्रुट् तथा लष् धातुओं से श्यन् प्रत्यय विकल्प से होता है।

क्रम—परस्मैपद शित् के परे क्रम् धातु को दीर्घ होता है।

पाघ्रा—इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय के परे पा, घ्रा, ध्मा आदि धातुओं को यथाक्रम से पिबादि आदेश होते हैं।

आत—आदन्त धातुओं से पर णल् को औ आदेश होता है।

आतो—अजादि कित् और ङित् आर्धधातुक तथा इट् के परे आकार का लोप होता है।

एर्लिङि—आर्धधातुक कित् और लिङ् के परे घुसंज्ञक धातु तथा मा, स्था आदि धातु सम्बन्धी अकार को एत्व होता है।

पेयात् । गातिस्थेति सिचो लुक् । अपात् । अपाताम् । **आतः ३।४।११।** सिजलुकि आदन्तादेव झेर्जुस् स्यात् । **उस्यपदान्तात् ६।१।९६।** अपदान्ताद कारादुसि पररूपमेकादेशः स्यात् । अपुः । अपास्यत् । ग्लै हर्षक्षये ॥ १७ ॥ ग्लायति । **आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५।** उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं स्यात् न तु शिति । जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति, ग्लायतु । अग्लायत । ग्लायेत् । **वाऽन्यस्य संयोगादेः ६।४।६८।** घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं स्यात् आर्धधातुके किति लिङि । ग्लेयात, ग्लायात् । **यमरमनमातां सक् च ७।२।७३।** एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । अग्लासीत् । अग्ला-

---

अपुः—पाधातोर्लुङि तत्स्थाने झौ 'लुङ्लङ्–' इत्यटि इटि गते मध्ये च्लौ 'च्लेः' सिचि 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः–' इति सिचो लुकि 'अपा झि' इति जाते 'आतः' इति सूत्रनियमात् झेर्जुसि अनुबन्धलोपे 'अपा उस्' इति स्थिते 'उस्यपदान्तात्' इति पररूपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'अपुः' इति ।

आग्लासीत्—ग्लैधातोर्लुङि लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे 'ग्लै स् त्' इति स्थिते 'आदेच उपदेशेऽशिति' इत्यात्वे 'यमरमनमातां सक् च' इति अङ्गस्य सकागमे सिचः सस्य इडागमे 'अस्ति सिचः–' इति तस्य ईटि अनुबन्धलोपे 'इट ईटि' इति सिचः सस्य लोपे 'अग्ला इ इ त्' इति जाते 'सिजलोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः' इति सलोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'आग्लासीत्' इति ।

आतः—सिच् के सकार का लोप होने पर आदन्त धातु से पर ही झि को जुस् होता है ।

उस्य—अपदान्त अवर्ण से पर उस के परे पूर्व-पर के स्थान में पररूप एक आदेश होता है । **आदेच्**—शित् से भिन्न प्रत्यय के परे उपदेश में एजन्त धातु को आत्व होता है ।

वान्य—आर्धधातुक कित् लिङ् के परे घु, मा, स्था आदि धातुओं से भिन्न संयोगादि आदन्त धातुओं के आकार को विकल्प से एत्व होता है ।

यम—परस्मैपद के परे यम्, रम्, नम् तथा आदन्त धातु को सक् तथा साथ ही उससे पर सिच् को इडाम भी हो जाता है ।

स्यत् । ह्वृ कौटिल्ये ।। १८ ।। ह्वरति । ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७।४।१०। ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणः स्यात् लिटि । उपधाया वृद्धिः । जह्वार । जह्वरतुः । जह्वरुः । जह्वर्थ । जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार, जह्वर, जह्वरिव । जह्वरिम । ह्वर्ता । ऋद्धनोः स्ये ७।२।७०। ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् स्यात् । ह्वरिष्यति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् । गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९ अर्त्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्यात् यकि यादावार्धधातुके लिङि च । ह्वर्यात् । अह्वार्षीत् । श्रु श्रवणे ।। १९ ।। श्रुवः शृ च ३।१।७४। श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च । शृणोति । सार्वधातुकमपित् १।२।४। अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत् स्यात् । शृणुतः हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७। हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके । शृण्वन्ति । शृणोषि । शृणुथः ।

जह्वार—ह्वृधातोर्लिटस्तिपि तिपो णलि 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इति अभ्यास ऋवर्णस्य अत्वे रपत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति हस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'ऋतश्च संयोगादेर्गुणः' इति गुणे अकारे तस्य रपरे च जाते 'अत उपधायाः' इति वृद्धिः ।

ह्वर्यात्—ह्वृधातोराशीर्लिङि लिङस्तिपि 'इतश्च' इति तिप इकारलोपे यासुटि उटि गते यासुटः कित्वात् 'क्ङिति' इति गुणनिषेधे 'गुणोऽर्ति संयोगाद्योः' इति गुणे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'ह्वर्यात्' इति ।

शृणवः—श्रुधातोर्लटि लटस्थाने वसि 'श्रुवः शृ च' इति श्रुवः शृ आदेशे

ऋतश्च—लिट् के परे ऋदन्त संयोगादि अंग को गुण होता है ।

ऋद्ध—ऋदन्त तथा हन् धातु से पर स्य को इट् होता है ।

गुणो—यक् तथा आर्धधातुक लिङ् के परे संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण होता है ।

श्रुवः—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश तथा उसी के साथ ही 'श्नु' प्रत्यय भी होता है ।

सार्व—अपित् सार्वधातुक ङित्-वत् हो जाता है । (इस लिये उसके परे गुण या वृद्धयादेश नहीं होता) ।

हुश्नु—अजादि सार्वधातुक के परे 'हु' धातु तथा श्नुप्रत्यान्त जो अनेकाच अंग, तदवयव जो असंयोगपूर्वक उवर्ण उसको यण् होता है ।

शृणुथ । शृणोमि । **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** ६।४।१०७। असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा स्यात् म्वोः परयोः । शृण्वः, शृणुवः । शृण्मः, शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः । शुश्रुवुः । शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रुव । शुश्राव-शुश्रव । शुश्रुव । शुश्रम । शुश्रुम । श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु, शृणुतात् । शृणुताम् । शृण्वन्तु ।

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६।४।१०६। असंयोगपूर्वात्प्रत्ययादुतो हेर्लुक् स्यात् । शृणु, शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । गुणावादेशौ । शृणवानि । शृणवाव । शृणवाम । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः । अशृणुतम् । अशृणुत । अशृणवम् । अशृणुव, अशृण्व । अशृणुम, अशृण्म । शृणुयाम् । शृणुयाताम् । शृणुयुः । शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम । श्रूयात् । अश्रौषीत् । अश्रोष्यत् । गम्लृ गतौ ॥२०॥ **इषुगमियमां छः** ७।३।७७। एषां छः स्यात् शिति । गच्छति । जगाम । **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** ६।४।९८। एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति न त्वङि । जग्मतुः । जग्मुः । जगमिथ, जगन्थ ।

चात् श्नुप्रत्यये च कृते अनुबन्धलोपे शित्वात् सार्वधातुकत्वे 'सार्वधातुकमपित्' इति श्नोर्ङित्वे 'क्ङिति च' इति गुणनिषेधे 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इति णत्वे 'शृणुवस्' इति जाते 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः' इति विभाषया उकारस्य लोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'शृण्वः' इति । पक्षे शृणुवः' इति ।

जग्मतुः—गम्धातोर्लिटस्तसि तसोऽतुसि 'लिटि धातोः—' इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये 'जगम् अतुस्' इति जाते अतुसः 'असंयोगाल्लिट् कित्' इति कित्वे 'गमहनजनखनघसां लोपः—' इति इत्युपधाभूताकारस्य लोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'जग्मतुः' इति ।

लोपश्च—मकार या वकार के पर असंयोगपूर्वक प्रत्यय के उकार का विकल्प से लोप हो जाता है ।

उतश्च—संयोगपूर्वक प्रत्यय-सम्बन्धी उकार से पर हि का लुक् होता है ।

इषु—शित् प्रत्यय के परे इष्, गम् तथा यम् धातुओं को छकारान्तादेश होता है ।

गम—अजादि कित्-ङित् प्रत्यय के परे गमादि धातुओं की उपधा का लोप होता है-किन्तु अङ् के परे नहीं होता है ।

जग्मथुः । जग्म । जगाम, जगम । जग्मिव । जग्मिम । गन्ता । **गमेरिट् परस्मैपदेषु** ७।२।५८। गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु । गमिष्यति । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् । **पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु** ३।१।५५। श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् स्यात् परस्मैपदेषु । अगमत् । अगमिष्यत् । इति परस्मैपदिनः ।

एध वृद्धौ ॥ १ ॥ **टित आत्मनेपदानां टेरे** ३।४।७९। टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम् । एधते । **आतो ङितः** ७।२।८१। अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात् । एधेते । **थासः से** ३।४।८०। टितो लस्य थासः से स्यात् । एधसे । एधेथे । एधध्वे । अतो गुणे । एधे । एधावहे । एधामहे । **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** ३।१।३६। इजादिर्यो धातुर्गुरुमाननृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि । **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** १।३।६३। आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदं स्यात् । **लिटस्तझयोरेशिरेच्** ३।४।८१। लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेचौ स्तः । एधाञ्चक्रे ।

अगमत्—गम्धातोर्लुङस्तिपि 'लुङ् लङ्–' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि प्राप्ते तं बाधित्वा 'पुषादिद्युताद्य लृदितः–' इति च्लेरङि अनुबन्धलोपे 'अगमत्' इति ।

एधाञ्चक्रे—एध्धातोर्लिटि 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ' इत्यामि 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे 'एध् आम् कृ लिट्' इति स्थिते 'आम्प्रत्ययवत्–' इति आत्मनेपदत्वात् लिटः स्थाने तप्रत्यये

गमे—परस्मैपद के परे गम् धातु से पर सादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है । **पुषा**—परस्मैपद के परे श्यनविकरणक पुषादि, द्युतादि तथा लृदित् धातुओं से पर च्लि को अङ् आदेश होता है ।

टित्—ङित् लकार सम्बन्धी आत्मनेपद की 'टि' को एत्व होता है ।

आतो—अत् से पर ङित् सम्बन्धी आकार को इय् होता है ।

थासः— टित् लकार सम्बन्धी 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश होता है ।

इजा—लिट् के परे ऋच्छ् धातु से भिन्न इजादि तथा गुरुमान् धातु से 'आम्' प्रत्यय होता है ।

आम्प्र—आम्प्रकृति के तुल्य अनुप्रयुज्यमान 'कृञ' धातु से भी आत्मनेपद होता है । **लिटः**—लिडादेश 'त' के स्थान में एश् और 'झ' के स्थान में 'इरेच' आदेश होता है ।

एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे । **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** ८।३।७८। इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात्। एधाञ्चक्रिढ्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधांबभूव । एधामास । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे । **धि च** ८।२।२५। धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः स्यात् । एधिताध्वे । **ह एति** ७।४ ५२। तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे । एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे । एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे । **आमेतः** ३।४।९०। लोट एकारस्याम् स्यात् । एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् । **सवाभ्यां वामौ** ३।४।९१। सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वामौ स्तः । एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् । **एत ऐ** ३।४।९३। लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् । एधै । एधावहै । एधामहै । आटश्च । ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त ।

'लिटस्तझयोः–' इति तस्य एसादेशे 'एधाम् कृ ए' इति स्थिते लिटि धातो–' इति कृञो द्वित्वे प्राप्ते तं परत्वाद् प्रबाध्य यणि प्राप्ते तं 'द्विर्वचनेऽचि' इति निषेधे सति पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इति अभ्यासऋवर्णस्य अत्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'असंयोगाल्लिट् कित्' इति कित्वात् गुणनिषेधे यणि मकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे 'एधाञ्चक्रे' इति ।

एधाञ्चकृषे—एध्धातोर्लिटि आमि 'आमः' इति लिटो लुकि लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे 'एध् आम् कृ लिट्' इति जाते लिटः स्थाने तिप्तस्झि–' इति थासि द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये । एधाम् च कृ थास्' इति स्थिते 'थासः से' इति से आदेशे 'एकाच उपदेशे–' इति इटो निषेधे मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'एधाञ्चकृषे' इति ।

इणः—इणन्त अंग से पर षी, ध्वं और लुङ्-लिट् सम्बन्धी धकार को ढकारादेश होता है ।

धि च—धादि प्रत्यय के परे सकार का लोप होता है ।

ह एति—एति के परे तास् और अस्ति सम्बन्धी सकार का लोप होता है ।

आमे—लोट् सम्बन्धी 'ए' को आम् का आदेश होता है ।

सवा—सकार तथा वकार से पर लोट् लकार सम्बन्धी एकार के स्थान में यथाक्रम से 'व' और 'अम्' आदेश होता है ।

एधथाः । ऐधेथाम् । ऐधध्वम् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि । **लिङः सीयुट्** ३।४।१०२। लिङात्मनेपदस्य सीयुडागमः स्यात् । एधेत । एधेयाताम् । **झस्य रन्** ३।४।१०५। लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधेथाः । एधेयाथाम् । एधेध्वम् । **इटोऽत्** ३।४।१०६। लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात् । एधेय । एधेवहि । एधेमहि । **सुट् तिथोः** ३।४।१०७। लिङस्तकारथकारयोः सुट् स्यात् । यलोपः । आर्धधातुकत्वात् सलोपो न । एधिषीष्ट । एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् । **आत्मनेपदेष्वनतः** ७।१।५। अनकारात्परस्यात्मनेपदस्य झस्य अदित्यादेशः स्यात् । ऐधिषत । ऐधिष्ठाः । ऐधिषाथाम् । ऐधिढ्वम् । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । कमु कान्तौ ॥ २ ॥ **कमेर्णिङ्** ३।१।३०। कमेर्णिङ् स्यात् स्वार्थे । ङित्वात्तङ् । कामयते । **अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु** ६।४।५५ आम् अन्त

ऐधिष्ट——एध्धातोर्लुङि तत्स्थाने ते 'आडजादीनाम्' इत्यादि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'ऐध त' इति जाते मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते सिचः आर्धधातुकत्वात् 'आर्धधातुकस्ये'ति इटि अनुबन्धलोपे 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे ष्टुत्वे 'ऐधिष्ट' इति ।

एत——लोट्सम्बन्धी उत्तम पुरुष के 'ए' को 'ऐ' आदेश होता है ।

लिङः——आत्मनेपद में लिङादेश को सीयुट् का आगम होता है ।

झस्य——लिङ् सम्बन्धी 'झ' के स्थान में 'रन्' आदेश होता है ।

इटो——लिङादेश 'इट्' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है ।

सुट्——लिङ्सम्बन्धी तकार और थकार को सुट् का आगम होता है ।

आत्म——अनकार से पर आत्मनेपद सम्बन्धी 'झ' को 'अत्' आदेश होता है ।

कमे——कमु धातु से स्वार्थ में 'णिङ्' प्रत्यय होता है ।

अया——आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय के परे णि को अयादेश होता है ।

आकु आप्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात् । कामयाञ्चक्रे । आयादय इति णिङ् वा । चकमे । चकमाते । चकमिरे । चकमिषे । चकमाथे । चकमिढ्वे । चकमे । चकमिवहे । चकमिमहे । कामयिता । कामयितासे । कमिता । कामयिष्यते, कमिष्यते । कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट । **विभाषेटः** ८।३।७९। इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः स्यात् । कामयिषीढ्म्, कामयिषीध्वम् । कमिषीष्ट । कमिषीध्वम् । **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** ३।१।४८। ण्यन्ताच्छ्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे । अकामि अ त इति स्थिते । **णेरनिटि** ६।४।५१। अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात् । **णौचङ्युपधाया ह्रस्वः** ७।४।१। चङि परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् । **चङि** ६।१।११। चङ्परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः

कामयाञ्चक्रे—कम्धातोः 'कमेर्णिङ्' इति णिङि अनुबन्धलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'कामि' इति, तस्मात् 'सनाद्यन्ताः–'इति धातुत्वाल्लिटि 'कास्यनेकाच्' इति आमि 'णेरनिटि' इति णिलोपे तं प्रबाध्य 'अयामन्ते'ति सूत्रेण णिङः इकारस्य अयादेशे 'कामय आम् लिट्' इति जाते 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चाऽनुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे लिटः इटि च कृते सति लः स्थाने तादेशे 'लिटस्तझयोः–' इति तस्य एशि कृते अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः–' इति कृञो द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इति अभ्यासऋवर्णस्य अत्वे 'उरण् रपरः' इति रपरे च कृते 'कामयाम् कर् कृ ए' इति जाते 'हलादिः शेषः' इति रलोपे 'कुहोश्चुः' इति कस्य चुत्वे यणि मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'कामयाञ्चक्रे' इति । आयादेशाऽभावपक्षे 'चकमे' इति ।

विभा—इण् से पर जो इट्, उससे पर षीध्वं वा लुङ्-लिट् सम्बन्धी धकार को विकल्प से ढकार होता है ।

णिश्रि—कर्त्रर्थक लुङ् के परे ण्यन्त धातु तथा श्रि और स्रु धातुओं से पर 'च्लि' को चङ् आदेश होता है ।

णेर—अनिडादि आर्धधातुक के परे 'णि' का लोप होता है ।

णौ—'चङ्' परक जो 'णि' तत्परक जो 'अंग' उसकी उपधा को ह्रस्व होता है ।

प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य । **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३।** चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति । **सन्यतः ७।४।७९।** अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि । **दीर्घो लघोः ७।४।४९।** लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये । अचीकमत । णिङभावपक्षे (**कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः**) अचकमत । अकामयिष्यत, अकमिष्यत । अय गतौ ॥३॥ अयते । **उपसर्गस्यायतौ ८।२।१९।** अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् । प्लायते, पलायते । **दयायासश्च ३।१।३७।** दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि । अयाञ्चक्रे । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । अयिता

अचीकमत—कम्धातोः 'कमेर्णिङ्' इति णिङि अनुबन्धलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'कामि' इति । तस्मात् 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लुङि उङि गतौ लः स्थाने तादेशे 'लुङ् लङ्—' इत्यडागमे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः—' इति च्लेश्चङि अनुबन्धलोपे 'अकम् इ अ त' इति जाते 'णेरनिटि' इति णिलोपे प्रत्ययलक्षणेन णेश्चङ्परत्वात् 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इति उपधाया ह्रस्वत्वे 'चङि' इति कमो द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इति मलोपे 'कुहोश्चुः' इति कस्य चत्वे 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावे कृते 'सन्यतः' इति अभ्यासाकारस्य इत्वे 'अचिकम् अ त' इति जाते 'दीर्घो लघोः' इति अभ्यासेकारस्य दीर्घे 'अचीकमत' इति । णिङभावपक्षे 'अचकमत' इति ।

अयाञ्चक्रे—अय् धातोर्लिटि 'दयायासश्च' इत्यामि 'आमः' इति लिटो लुकि

चङि—'चङ्' पर में रहने पर अभ्यासभिन्न धातु के प्रथमावयव एकाच् को तथा अजादि के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है ।

सन्व—'णि' के परे यदि अक् का लोप नहीं हुआ हो तो चङ् परक जो 'णि' तत्परक जो 'अंग' अवयव जो लघुपरक अभ्यास उसको सन्वद्भाव होता है ।

सन्य—सन् के परे अभ्यास सम्बन्धी 'अत्' को इत्व होता है ।

दीर्घो—अभ्यासावयव लघुवर्ण को दीर्घ होता है—सन्वद्भाव के विषय में ।

कमेः—कम् धातु सम्बन्धी 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' होता है ।

उप—अय् धातु परक उपसर्ग सम्बन्धी रेफ को लत्व हो जाता है ।

दया—लिट् के परे दय्, अय् तथा आस् धातुओं से आम् प्रत्यय होता है ।

अयेत । अयिषीष्ट । विभाषेटः (८।३।७९) अयिषीढ्वम्, अयिषीढ्वम् । आयिष्ट । आयिढ्वम्, आयिढ्वम् । आयिष्यत । द्युत दीप्तौ ॥ ४ ॥ द्योतते । द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७।४।६७। अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् । दिद्युते । द्युद्भ्यो लुङि १।३।९१। द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् । पुषादीत्यङ् अद्युतत्, अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत । एवम् श्विता वर्णे ॥ ५ ॥ ञिमिदा स्नेहने ॥ ६ ॥ ञिष्विदा स्नेहमोचनयोः ॥ ७ ॥ मोहनयोरित्येके । ञिक्ष्विदा चेत्येके । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च ॥ ८ ॥ घुट परिवर्तने ॥ ९ ॥ शुभ दीप्तौ ॥ १० ॥ क्षुभ सञ्चलने ॥११॥ णभ, तुभ हिंसायाम् ॥ १२–१३ ॥ स्रंसु भ्रंसु ध्वंसु अवस्रंसने ॥ १४–१६ ॥ ध्वंसु गतौ च ॥ १७ ॥ स्रम्भु विश्वासे ॥ १८ ॥ वृ वर्तने ॥ १९ ॥ वर्तते । ववृते । वर्तिता । वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२। वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात्स्ये सनि च । न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५९। वृतुवृधु-

---

'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परकक्रुञोऽनुप्रयोगे लिटो लः स्थाने ते तस्य 'लिटस्तझयोः–' इति एशि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्यास-संज्ञायाम् 'उरत्' इति अभ्यासऋवर्णस्य अत्वे तस्य रपरत्वे 'हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति कस्य चत्वे यणि मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'अयाञ्चक्रे' इति ।

अद्युतत्—द्युत्–धातोर्लुङि उङि गते लः स्थाने 'द्युद्भ्यो लुङि' इति विभाषया परस्मैपदसंज्ञकतिपि 'लुङलङ्–' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ तस्य सिचि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु' इत्याङादेशे अनुबन्धलोपे 'अद्युत् अति' इति जाते 'इतश्च' इति तिपः इकारपेलो 'ङित्वाद् गुणाऽभावे 'अद्युतत् इति । आत्मनेपदपक्षे–'अद्योतिष्ट' इति ।

अद्योतिष्ट—द्युत्धातोर्लुङि लुङो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे 'लुङ् लङ्–'

द्युति— द्युत् तथा ण्यन्त स्वप् धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है ।

द्युद्भ्यो द्युतादि धातु से परस्मैपद होता है—लुङ् के परे विकल्प से ।

वृद्भ्यः–स्य और स्यन् के परे वृतादि पाँच धातुओं से परस्मैपद विकल्प से होता है ।

न वृ—'तङ्' और 'आन्' के अभाव में वृतादि धातुओं से पर सादि आर्धधातुक को इट् नहीं होता है ।

वृद्भ्यः स्यसनोः सकारादेरार्धधातुकस्येण् न स्यात् तङानयोरभावे। वर्त्स्यति, वर्तिष्यते। दद दाने ॥२०॥ ददते। **न शसददवादिगुणानाम्** ६।४।१२६। शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न स्तः। ददद। ददाते। ददरिरे। ददिता। ददिष्यते। ददताम्। अददत। ददेत। ददिषीष्ट। अददिष्ट। अददिष्यत। त्रपूष लज्जायाम् ॥२१॥ त्रपते। **तॄफलभजत्रपश्च** ६।४।१२२। एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च। त्रेपे। त्रपिता, त्रप्ता। त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। त्रपताम्। अत्रपत। त्रपेत। त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट, अत्रप्त। अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत। इत्यात्मनेपदिनः।

श्रिञ् सेवायाम् ॥ १ ॥ श्रयति, श्रयते। शिश्राय, शिश्रिये। श्रयिता। श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। श्रयतु, श्रयताम्। अश्रयत् अश्रयत। श्रयेत्, श्रयेत। श्रीयात्, श्रयिषीष्ट। चङ्। अशिश्रियत्, अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत।

इडागमे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते सिचः सस्यार्धधातुकत्वे इडागमे 'पुगन्ते'ति गुणे सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'अद्योतिष्ट' इति।

वर्त्स्यति—वृत्धातोर्लृटि 'वृद्भ्यः स्यसनोः' इति विभाषया परस्मैपदे तिपि इपि गते 'स्यतासीलृलुटोः' इति स्यप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात् 'आर्धधातुकस्य–' इति इटि प्राप्ते 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' इति निषेधे 'पुगन्ते'ति गुणे तस्य रपरत्वे 'वर्त्स्यति' इति। परस्मैपदाभावे 'वर्तिष्यते' इति।

त्रेपे—त्रप्धातोर्लिटस्तादेशस्य स्थाने 'लिटस्तझयोः–' इति एशि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः–इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'त्रिफलभज–' इति त्रपः अकारस्य एत्वे अभ्यासलोपे 'त्रेपे' इति।

अशिश्रियत्—श्रिधातोर्लुङस्तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः–' इति च्लेश्चङि 'चङि' इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये च कृते 'अचिश्नुधातु' इति इयङि 'अशिश्रियत्' इति।

न शस्—शस्, दद तथा वकारादि धातुओं को तथा गुण शब्द से विहित आकार को एत्वाऽभ्यासलोप नहीं होता है।

तॄफ—कित् लिट् सेट् थल् के परे–तृ, फल्, भज् और त्रप् धातु सम्बन्धी अकार को एत्वाऽभ्यासलोप होता है।

भृञ् भरणे ॥२॥ भरति, भरते । बभार । बभ्रतुः । बभ्रुः । बभर्थ । बभृव । बभृम । बभ्रे । बभृषे । भर्तास्मि, भर्तासे, भरिष्यति, भरिष्यते । भरतु, भरताम् । अभरत्, अभरत । भरेत्, भरेत । **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** ७।४।२८। शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात् । रीङि प्रकृते रिङ्विधान-सामर्थ्याद्दीर्घो न । भ्रियात् । **उश्च** १।२।१२। ऋवर्णात्परौ झलादौ लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि । भृषीष्ट । भृषीयास्ताम् । अभार्षीत् ॥ **ह्रस्वादङ्गात्** ८।२।२७। सिचो लोपः स्यात् झलि । अभृत । अभृषाताम् । अभरिष्यत्, अभरिष्यत । हृञ् हरणे ॥ ३ ॥ हरति, हरते । जहार, जह्रे । जहर्थ । जह्रिव । जह्रिम । जह्रे । जहृषे । हर्ता । हरिष्यति, हरिष्यते । हरतु, हरताम् । अहरत्, अहरत । हरेत्, हरेत । ह्रियात्, हृषीष्ट । हृषीयास्ताम् । अहार्षीत्, अहृत । अहरिष्यत्, अहरिष्यत । धृञ् धारणे ॥ ४ ॥ धरति, धरते । णीञ् प्रापणे ॥ ५ ॥ नयति, नयते । डुपचष् पाके ॥ ६ ॥ पचति, पचते । पपाच । पेचिथ, पपक्थ । पेचे । पक्ता । भज् सेवायाम् ॥ ७ ॥ भजति, भजते, बभाज, भेजे, भक्ता । भक्ष्यति,

---

भ्रियात्—भृधातोराशीर्लिङः तिपि 'लिङाशिषि' इति तिपः आर्धधातुकत्वे 'किदाशिषि' इति यासुटि अनुबन्धलोपे यासुटः कित्वाद् गुणाभावे 'रिङ्शयग् लिङ्क्षु' इति ऋकारस्य रिङि अनुबन्धलोपे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'भ्रियात्' इति ।

ननु 'भ्रियात्' इत्यत्र रिङि कृते सति 'अकृत्सार्वधातुकयोः' इति दीर्घः कुतो नेति चेन्न, कृते रिङि यदि दीर्घः स्यात्तर्हि रिङ् विधिरेव व्यर्थं स्यात् 'रीङृतः' इत्येव सिद्धेः ।

जहार—हृधातोर्लिटि णलि द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इति अभ्यासऋवर्णस्य अत्वे रपरत्वे 'हलादिः शेषः' इति रेफस्य लोपे 'चुहोश्चुः' इति हस्य चुत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति चस्य जश्त्वे 'अचोञ्णिति' इति वृद्धौ रपत्वे 'जहार' इति ।

रिङ्—शकार, यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् के परे धातु सम्बन्धी ऋकार को 'रिङ्' आदेश होता है ।

उश्च—ऋवर्ण से पर झलादि 'लिङ्' और आत्मनेपदपरक झलादि 'सिच्' कित् होता है ।

ह्रस्वा—झल् के परे ह्रस्वान्त अंग से पर सिच् का लोप होता है ।

भक्ष्यते। अभाक्षीत्, अभक्त। अभक्षाताम्। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु॥८॥ यजति, यजते। लिटचभ्यासस्योभयेषाम् ६।१।१७। वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् लिटि। इयाज। वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५। वाचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति। ईजतुः। ईजुः। इयजिथ, इयष्ठ। ईजे। यष्टा। "षढोः कः सि" यक्ष्यति, यक्ष्यते। इज्यात्, यक्षीष्ट। अयाक्षीत्, अयष्ट। वह प्रापणे॥९॥ वहति, वहते। उवाह। ऊहतुः। ऊहुः। उवहिथ। झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४८। झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः। "ढो ढे लोपः"। सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२। अनयोरवर्णस्य

इयाज--यज्धातोर्लिटि तिपि 'परस्मैपदानाम्–' इति तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये 'य यज् अ' इति जाते 'लिटचभ्यासस्योभयेषाम्' इत्यभ्यासयकारस्य सम्प्रसारणेन इकारे पूर्वरूपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'इयाज' इति।

अयाक्षीत्—यज्धातोर्लुङस्तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'अस्ति सिचः–' इति तस्य ईडागमे 'व्रश्चभ्रस्ज–' इति जस्य षत्वे 'षढोः कः सि' इति षस्य कत्वे आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षत्वे 'वदव्रज–' इति उपधाकारस्य वृद्धौ 'अयाक्षीत्' इति।

लिटच—लिट् के परे वाच्यादि तथा ग्रह्यादि धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

वचि--कित् के परे वचि स्वपि तथा यजादि को सम्प्रसारण होता है।

षढोः—सकार के पर 'ष' और 'ढ' के स्थान में 'क' होता है।

झषः--'दधाति' को छोड़ कर झष् से पर 'त' और 'थ' के स्थान में 'ध' होता है।

ढो ढे—ढकार के परे ढकार का लोप होता है।

सहि—ढलोप होने पर सह् और वह् धातु सम्बन्धी अवर्ण के स्थान में 'ओत्' होता है।

ओत्स्याड्ढलोपे। उवोढ। ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ। अवक्षत। अवक्षाताम्। अवोढाः। अवक्षाथाम्। अवोढ्वम्। अवक्षि। अवक्ष्वहि। अवक्ष्महि।

इति भ्वादिप्रकरणम्

—:०:—

उवोढ—वह् धातोर्लिटः सिपि सिपः थलि 'एकाच–' इति इडभावे प्राप्ते क्रादिनियमादिटि प्राप्ते 'उपदेशेऽत्वतः' इति इटो निषेधे थलः स्थानिवत्त्वेन पित्त्वात् 'असंयोगाल्लिट् कित्' इति किदभावे सति 'वचिस्वपि–' इत्यस्याऽप्राप्तौ लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'लिटयभ्यासस्योभयेषाम्' इत्यभ्यास-वकारस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'हलादिः शेषः' इति हलोपे 'उवह् थ' इति जाते 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे 'झषस्तथोः–' इति थस्य धत्वे 'ष्टुना ष्टुः' इति धस्य ष्टुत्वेन ढत्वे 'उवढ्ढ' इति जाते 'ढो ढे लोपः' इति ढलोपे 'ढ्रलोपे'ति पूर्वस्याऽणो दीर्घे प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'सहिवहोरोदवर्णस्य' इति ओत्वे 'उवोढ' इति।

अवाक्षीत्—वह धातोर्लुङस्तिपि इपि गते 'लुङ्–लङ्–' इत्यडागमे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'अस्तिसिचः–' इति तिपः तकारस्य ईडागमे 'वदव्रज–' इति वकाराकारस्य वृद्धौ 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे 'षढोः कः सि' इति ढस्य कत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति सिचः सस्य षत्वे 'अवाक्षीत्' इति।

इति भ्वादिप्रकरणम्।

—:०:—

विशेष—तिङ् (प्रत्याहार) जिसके अन्त में रहता है, उसे 'तिङन्त' कहते हैं।

सुबन्तं च तिङन्तं च पदमित्यभिधीयते।
सुप्-तिङ्-चयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता॥

भ्वादिप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ अदादिप्रकरणम्

अद भक्षणे ॥१॥ **अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२।** लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति । अत्सि । अत्थः । अत्थ । अद्मि । अद्वः । अद्मः । **लिटयन्तर-स्याम् १।४।४०।** अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि । जघास । उपधालोपः । **शासिव-सिघसीनां च ८।३।६०।** इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् । घस्य चर्त्वम् । जक्षतुः । जक्षुः । जघसिथ । जक्षथुः । जक्ष । जघास, जघस । जक्षिव । जक्षिम ।

अद् भक्षणे—लुग्विकरणान् धातून् निरूपयितुमुपक्रमते । अनिडयम् ।

जघास—अद्धातोर्लिटि लिटो लः स्थाने तिपि तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'लिटयन्तरस्याम्' इति अदो घस्लृ आदेशे अनुबन्धलोपे 'घस् अ' इति जाते 'लिटि धातोः–इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति झस्य धत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'अत उपधायाः' इति घकाराकारस्य वृद्धौ 'जघास' इति । घस्लादेशाऽभावे 'आद' इति ।

जक्षतुः—अद्धातोर्लिटि तसि तसोऽतुसि अनुबन्धलोपे 'लिटयन्यतरस्याम्' इति अदो घस्लृ आदेशे अनुबन्धलोपे द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति घस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'जघस् अतुस्' इति जाते 'असंयोगाल्लिट् कित्' इत्यसुतः कित्वे गमहन–' इत्युपधाऽकारस्य लोपे 'खरि च' इति घस्य कत्वे 'शासिवसिघसीनां च' इति सस्य षत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'जक्षतुः' इति ।

ननु 'जघस् अतुस्' इति स्थिते 'गमहन–' इत्युपधालोपे कृते सति तस्य स्थानिवत्वेन व्यवधानात् खर्परत्वाऽभावात् चर्त्वाऽप्राप्त्या जक्षतुरिति न सिद्धेदिति चेन्न 'न पदान्त'–इति स्थानिवत्वनिषेधात् ।

अदि—अदादि गणपठित धातुओं से पर शप् का लुक् होता है ।

लिटय—लिट् के परे अद् के स्थान में घस्लृ आदेश विकल्प से होता है ।

शासि—इण् और कवर्ग से पर शास्, वस् तथा घस् धातु के सकार को षकार होता है ।

आद । आदतुः । आदुः । **इडत्यर्तिव्ययतीनाम्** ७।२।६६। अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् । अदिथ । अत्ता । अत्स्यति । अत्तु, अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु । **हुझल्भ्यो हेर्धिः** ६।४।१०१। होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् । अद्धि । अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम । **अदः सर्वेषाम्** ७।३।१००। अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्य अट् स्यात्सर्वमतेन । आदत् । आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्युः । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः । **लुङ्सनोर्घस्लृ** २।४।३७। अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च । लृदित्त्वादङ् । अघसत् । आत्स्यत् । हन हिंसागत्योः ॥ २ ॥ हन्ति । **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** ६।४।३७। अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति परे । यमिरमिनमिगमिहनिमन्यतयोऽनुदात्तोपदेशः । तनु क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु घृणु वनु मनु तनोत्यादयः । हतः । घ्नन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः । जघान । जघ्नतुः । जघ्नुः । **अभ्यासाच्च** ७।३।५५। अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् । जघनिथ, जघन्थ । जघ्नथुः । जघ्न । जघान, जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता । हनिष्यति । हन्तु, हतात् । हताम् । घ्नन्तु । हन्तेर्जः

आद—अद्धातोर्लिटस्तिपि तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये 'अत आदेः' इति अभ्यासाकारस्य दीर्घे 'आ अद् अ' इति जाते 'अत उपधायाः' इति उपधाऽकारस्य वृद्धौ सवर्णदीर्घे 'आद' इति ।

इड—अद्, ऋ तथा व्येञ् धातुओं से पर 'थल्' को नित्य ही इट् होता है।

हुझ—'हु' तथा झलन्त धातुओं के 'हि' को 'धि' आदेश होता है।

अदः—सभी के मत से अद् धातु से पर अपृक्त सार्वधातुक को अट् का आगम हो जाता है।

लुङ्—लुङ् और सन् के परे अद् के स्थान में घस्लृ आदेश होता है।

अनु—हलादि कित् और ङित् के परे–अनुनासिकान्त तथा अनुदात्तोपदेश और वन् तथा तनोत्यादि जो धातु उनके अनुनासिक का लोप हो जाता है।

अभ्या—अभ्यास से पर हन् धातु के हकार को कुत्व होता है।

हन्ते—हि के परे 'हन्' के स्थान में 'ज' आदेश होता है।

६।४।३६। हौ परे। **असिद्धवदत्राभात्** ६।४।२२। इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयं समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्धं स्यात्। इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जहि, हतात्। हतम्। हत। हनानि। हनाव। हनाम। अहन्। अहताम्। अघ्नन्। अहन्। अहतम्। अहत। अहन्व। अहन्म। हन्यात्। **आर्धधातुके** २।४।३५ इत्यधिकृत्य। **हनो वध लिङि** २।४।४२। **लुङि च** २ ४।४३। वधादेशोऽदन्तः। आर्धधातुके इति विषयसप्तमी। तेनार्धधातुकोपदेशे अकारान्तत्वादतो लोपः। वध्यात्। वध्यास्ताम्। अवधीत्। अहनिष्यत्। यु मिश्रणामिश्रणयोः॥ ३॥

जहि —हन्धातोर्लोटः सिपि शपि 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' इति शपो लुकि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सिपः सेः स्थाने हौ कृते 'हन् हौ' इति जाते 'हन्तेर्जः' इति हनः स्थाने जादेशे 'ज हि' इति स्थिते 'अतो हेः' इति अतः परस्य हेर्लुग् न भवति 'असिद्धवदत्राभात्' इति जादेशस्याऽसिद्धत्वात् तेन 'जहि' इति सिद्धम्।

वध्यात्—हन्धातोः आशिष्यर्थे लिङि तिपि 'लिङाशिषि' इति तिपः आर्धधातुकत्वात् 'हनो वध लिङि' इति हनो वधादेशे 'किदाशिषि' इति यासुटि उटि गते 'अतो लोपः' इति वधाकारस्य लोपे तिप इकारस्य 'इतश्चे'ति लोपे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'वध्यात्' इति।

अवधीत् —हन्धातोर्लुङि 'लुङि च' इति हनो वधादेशे लुङो लः स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्—इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'अवधस् त्' इति स्थिते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सिचः सस्य ईटि 'अतो लोपः' इति वधाकारस्य लोपे 'अस्ति सिचः—' इति तिपस्तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे 'अवध् इ इत्' इति जाते 'सिज्लोप एकादेशे—' इति सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'अवधीत्' इति। अत्र अल्लोपे कृते 'अत उपधायाः' इत्युपधाऽकारस्य न वृद्धिः, 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' इति अल्लोपस्य स्थानिवत्वेन उपधात्वाऽभावात्।

असिद्ध—(इस सूत्र से लेकर षष्ठाध्याय के चतुर्थ अध्याय-समाप्त पर्यन्त 'आभीय' कहलाता है)—समानाश्रय आभीय कार्य करना हो तो कृतसमानाश्रय आभीय असिद्ध हो जाता है।

आर्द्ध—यह अधिकार सूत्र है—आगे इस सूत्र का अधिकार होता है।

हनो—लङ् और लिङ् के परे हन् धातु को वधादेश होता है।

उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९। लुग्विषये उतो वृद्धिः स्यात् पिति हलादौ सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य । यौति । युतः । युवन्ति । यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युवः । युयाव । यविता । यविष्यति । यौतु, युतात् । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । युयात् । इह उतो वृद्धिर्न । भाष्ये 'पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्न' इति व्याख्यानात् । युयाताम् । युयुः । यूयात् । यूयास्ताम् । यूयासुः । अयावीत् । अयविष्यत् । या प्रापणे ॥ ४ ॥ याति । यातः । यान्ति । ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात् । आयताम् । **लङः शाकटायनस्यैव** ३।४।१११। आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् । अयुः, अयान् । यायात् । यायास्ताम् । यायासुः । अयासीत् । अयास्यत् । वा गतिगन्धनयोः ॥ ५ ॥ भा दीप्तौ ॥ ६॥ ष्णा शौचे ॥ ७ ॥ श्रा पाके ॥ ८ ॥ द्रा कुत्सायां गतौ ॥ ९ ॥ प्सा भक्षणे ॥ १० ॥ रा दाने ॥ ११ ॥ ला आदाने ॥ १२ ॥ दाप् लवने ॥ १३ ॥ पा रक्षणे ॥ १४ ॥ ख्या प्रकथने ॥ १५ ॥ अयं सार्वधातुके एव प्रयोक्तव्यः । विद ज्ञाने ॥ १६ ॥ **विदो लटो वा** ३।४।८३। वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म ।

अयुः—या धातोर्लङि लङस्थाने झौ सार्वधातुकसंज्ञायां 'कर्तरि शप्' इति शपि 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' इति शपो लुकि 'लुङ्लङ्–' इत्याडगमे 'लङः शाकटायनस्यैव' इति झेर्जुसि अनुबन्धलोपे 'उस्यपदान्तात्' इति पररूपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'अयुः' इति । जुसोऽभावे 'झोन्तः' इति झस्याऽन्तादेशे अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे 'आयान्' इति ।

वेद—विद्धातोर्लटि तिपि 'विदो लटो वा' इति तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'कर्तरि शप्' इति शपि 'आदिप्रभृतिभ्यः–' इति शपो लुकि 'पुगन्ते' ति उपधा इकारस्य गुणे 'वेद' इति । णलाऽभावे 'वेत्ति' इति ।

उतो- अभ्यस्त संज्ञक को छोड़ कर हलादि पित् सार्वधातुक के परे लुक् के विषय में ह्रस्व उकार को वृद्धयादेश होता है ।

लङः—आदन्त धातु से पर लङ् सम्बन्धी 'झि' को विकल्प से जुस् होता है । **विदो**—विद् धातु से पर 'लट्' सम्बन्धी परस्मैपद को णलादि आदेश विकल्प से होता है ।

पक्षे वेत्ति। वित्तः। विदन्ति। **उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्** ३।१।३८। एभ्यो लिटि आम्वा स्यात्। विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः। विदाञ्चकार। विवेद। वेदिता। वेदिष्यति। **विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्** ३।१।४१। वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्तनुप्रयोगश्च वा निपात्यते। पुरुषवचनेन न विवक्षिते। **तनादिकृञ्भ्य उः** ३।१।७९। तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात्। शपोऽपवादः। विदांकरोतु। **अत उत्सार्वधातुके** ६।४।११०। उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्स्यात् सार्वधातुके क्ङिति। विदांकुरुतात् विदांकरवाणि। अवेत्। अवित्ताम्। अविदुः। **दश्च** ८।२।७५। धातोर्दस्य पदान्तस्य

वेत्तेर्लोटि—लुग्विकरणाद् विद्धातोर्लोटि परे आम्प्रत्ययः, आमन्ताद् विदेः लोडन्तकृञ्धातोरनुप्रयोगश्च निपात्यते इति स्पष्टार्थः।

शपोऽपवादः—अनेन शब्विषय एवाऽस्य प्रवृत्तिरिति सूचितम्।

विदाङ्करोतु–विद्धातोर्लोटि 'विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्' इति सूत्रेण विद्धातोर्लोटि परे आम्प्रत्ययः, आमन्ताद् विदेः लोडन्तकृञ्धातोरनुप्रयोगश्चेति निपाते जाते 'विदाम् कृ लोट्' इति स्थिते लोटः स्थाने तिपि तिपः सार्वधातुकत्वात् 'कर्तरि शप्' इति शपि प्राप्ते तं बाधित्वा 'तनादिकृञ्भ्यः उः' इति उप्रत्यये 'सार्वधातुके'ति गुणे रपरत्वे च जाते तिपः निमित्तमादाय पुनः 'सार्वधातुके'ति उकारस्य गुणे 'एरुः' इति तिपः इकारस्य उत्वे मस्याऽनुस्वारे परसवर्णे 'विदाङ्करोतु' इति। तातङि पक्षे 'अत उत्सार्वधातुके' इति उत्वे 'विदाङ्कुरुतात्' इति। 'विदाङ्कुर्वन्तु—' इति सूत्रविकल्पे 'वेत्तु' इति।

उष—लिट् लकार के परे उष्, विद् तथा जागृ धातुओं से 'आम्' प्रत्यय विकल्प से होता है।

विदां—लोट् के परे विद् धातु से आम्, गुण का अभाव, लोट् का लुक् तथा लोडन्त 'कृ' का अनुप्रयोग विकल्प से होता है।

तना—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे तनादि गणपठित तथा कृञ् धातु से 'उ' प्रत्यय होता है।

अत—सार्वधातुक कित् और ङित् प्रत्यय के परे उप्रत्ययान्त कृञ् धातु के अत् को 'उत्' आदेश होता है।

सिपि परे रुर्वा स्यात् । अवेः, अवेत् । विद्यात् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्यत् । अस भुवि ॥१७॥ अस्ति । **श्नसोरल्लोपः ६।४।१११।** श्नस्यास्तेश्चातो लोपः स्यात् सार्वधातुके क्ङिति । स्तः । सन्ति । असि । स्थः । स्थ । अस्मि । स्वः । स्मः । **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८।३।८७।** उपसर्गेण प्रादुसश्चास्तेः सस्य षः स्यात् यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुःषन्ति । यच्परः किम् ? अभिस्तः । **अस्तेर्भूः २।४।५२।** आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु, स्तात् । स्ताम् । सन्तु । **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११९।** घोरस्तेश्च एत्वं स्याद् हौ परे अभ्यासलोपश्च । एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । श्नसोरित्यल्लोपः । तातङ्पक्षे एत्वं न । परेण नातङा बाधात् ।

अवेः—विद्धातोर्लङः सिपि शपो लुकि अटि अनुबन्धलोपे 'पुगन्ते'ति उपधागुणे 'अवेद् स्' इति जाते 'हल्ङ्याभ्यः' इति सिपः सस्य लोपे 'दश्च' इति विदेर्दस्य वा रुत्वे अनुबन्धलोपे रेफस्य विसर्गे 'अवेः' इति । रुत्वाऽभावे 'अवेत्' इति ।

उपसर्गप्रादुर्भ्याम्—उपसर्गः प्रादुस् अनयोर्द्वन्द्वः । 'इण्कोः' इत्यधिकृतम् । तत्र 'इण्' इत्युपसर्गेण सम्बध्यते, न तु प्रादुसि, ततः परस्य अस्तेः सस्य इणः परत्वासम्भवात् । अस्तिरिति षष्ठ्यर्थे प्रथमा 'सहेः साढः सः' इत्यतः 'सः' इति षष्ठ्यन्तमनुवर्तते, 'मूर्धन्यः' इत्यधिकृतम् । यचौ परौ यस्मादिति विग्रहः । यकारे चकारे च परे इति लभ्यते । तदाह— उपसर्गेति ।

निष्यात्—'नि' इत्युपसर्गात् 'अस्' धातोर्लिङि तिपि यासुटि 'श्नसोरल्लोपः' इत्यल्लोपे 'उपसर्गप्रादुर्भ्याम्–' इति सोपसर्गत्वात् धातोः सस्य षत्वे 'निष्यात्' इति ।

बभूव—(भूधातोरन्योऽयम्) अस्धातोर्लिटो लः स्थाने तिपि तिपो णलादेशे अनुबन्धलोपे 'अस्तेर्भूः' इति अस्धातोः स्थाने 'भू' इत्यादेशे 'भुवो वुग-

---

श्नसो—सार्वधातुक कित् और ङित् के परे श्नम् और अस् धातु के अकार का लोप होता है ।

उप—यकार तथा अच् के परे उपसर्ग सम्बन्धी 'इण्' से पर तथा प्रादुस् (अव्यय) से पर अस् धातुसम्बन्धी सकार के स्थान में षकारादेश होता है ।

अस्ते—आर्धधातुक के परे 'अस्' के स्थान में 'भू' आदेश होता है ।

घ्वसो—'हि' के परे घुसंज्ञक तथा अस् धातु को एत्व और अभ्यास का लोप होता है ।

एधि । स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम । आसीत् । आस्ताम् । आसन् । स्यात् । स्याताम् । स्युः । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् । इण गतौ ॥ १८ ॥ एति । इतः । **इणो यण् ६।४।८१।** अजादौ प्रत्यये परे । यन्ति । **अभ्यासस्यासवर्णे ६।४।७८।** इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि । इयाय । **दीर्घ इणः किति ७।४।६९।** इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि । ईयतुः । ईयुः । इययिथ, इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत् । ऐताम् । आयन् । इयात् । **एतेर्लिङि ७।४।२४।** उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादार्धधातुके किति लिङि । निरियात् । उभयत आश्रयणे नान्तादिवत् । अभीयात् । अणः । किम् ।

इति वुगागमे 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषेण वलोपे 'ह्रस्वः' इति ह्रस्वे 'भवतेरः' इति अभ्यासोकारस्य अकारे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बकारे 'बभूव' इति ।

एधि—अस्धातोर्लोटि सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सिपो हेरादेशे 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति सस्य एत्वे एत्वस्याऽसिद्धत्वात् 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' इति हेर्धौ 'श्नसोरल्लोपः' इत्यल्लोपे 'एधि' इति । तातङ्पक्षे परेण तातङा बाधात् एत्वाऽभावे 'स्तात्' इति ।

ईयतुः—इणो लटस्तसोऽतुसि द्वित्वे अभ्यासत्वे 'इ इ अतुस्' इति स्थिते 'इणो यण्' इति यणि 'दीर्घ इणः किति' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'ईयतुः' इति ।

अभीयात्—'अभि' इत्युपसर्गपूर्वकात् इण्धातोः आशीर्लिङि तिपि तिपः इलोपे यासुटि तस्यार्धधातुकत्वे कित्वे सलोपे 'अकृतसार्वधातुकयोः–' इति दीर्घे 'अभीयात्' इति । नन्वत्र दीर्घे कृते अन्तादिवद्भावेन 'एतेर्लिङि' इति ह्रस्वत्वं कुतो नेति चेन्न, 'उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्' इति निषेधात् ।

अयम्भावः—अत्र एकादेशस्य ईकारस्य पूर्वान्तत्वे उपसर्गानुप्रवेशात्

इणो—अजादि प्रत्यय के परे इण् धातु सम्बन्धी 'इ' को यण् होता है ।

अभ्या—असवर्ण अच् के परे अभ्यास सम्बन्धी इवर्ण के स्थान में इयङ् और उवर्ण के स्थान में उवङ् होता है ।

दीर्घ—कित् तथा लिट् के परे इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है ।

एतै—आर्धधातुक कित्-ङित् के परे उपसर्ग से पर इण् धातु सम्बन्धी अण् को ह्रस्व होता है ।

समेयात् । इणो गा लुङि २।४।४५। गतिस्थेति सिचो लुक् । अगात् । ऐष्यत् ।
शीङ् स्वप्ने ॥ १९ ॥ शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१। क्ङिति चेत्यस्या-
पवादः । शेते । शयाते । शीङो रुट् ७।१।६। शीङः परस्य झादेशस्यातो
रुडागमः स्यात् । शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये ।
शिश्याते । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । अशेत । अशयाताम् । अशेरत ।
शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । अशयिष्ट । अशयिष्यत । इङ्
अध्ययने ॥ २० ॥ इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः । अधीते । अधीयाते ।
अधीयते । गाङ् लिटि २।४।४९। इङो गाङ् स्याल्लिटि । अधिजगे । अधि-
जगाते । अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अधीष्व ।
अधीयाथाम् । अधीध्वम् । अध्ययै । अध्ययावहै । अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यै-
याताम् । अध्यैयत । अध्यैथाः । अध्यैयाथाम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि ।

इण्धातुत्वं न सम्भवति परादित्वेन इण्धातुत्वाश्रयणे नु नोपसर्गात् परत्वम्,
उपसर्गैकादेशस्य इकारस्य ईकारात्मना सत्वेन 'अभू' इत्यस्य उपसर्गत्वाभावात् ।
एकादेशस्य आदिवत्त्वमाश्रित्य इण्धातुत्वम्, अन्तवत्त्वमाश्रित्य तस्य उपसर्गानु-
प्रवेशश्चेत्यपि न सम्भवति पूर्वपरशब्दाभ्याम् अन्तादिशब्दाभ्यां च विरोधस्य
पुरः स्फूर्तिकतया विरुद्धातिदेशद्वयस्य युगपदसम्भवादित्यर्थः ।

अशयिष्ट—शीङो लुङस्ते 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ
च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि अनुबन्धलोपे 'सार्व-
धातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अयादेशे सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'अशयिष्ट' इति ।

अधिजगे—अधिपूर्वकात् इङो लिटि 'गाङ् लिटि' इति इङो गाङादेशे
अनुबन्धलोपे लिटो लः स्थाने ते तस्य एशि अनुबन्धलोपे द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे
चुत्वे 'आतो लोप इटि च' इत्यालोपे 'अधिजगे' इति ।

इणो—लुङ् के परे 'इण्' के स्थान में 'गा' आदेश होता है ।

शीङः—सार्वधातुक के परे शीङ् धातु को गुण होता है ।

शीङो—शीङ् धातु से पर झादेश सम्बन्धी अत् को रुट् का आगम होता है ।

गाङ्—लिट् के परे इङ् के स्थान में 'गाङ्' आदेश होता है ।

अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अध्येषीष्ट । **विभाषा लुङ्लृङोः** २।४।५०। इङो गाङ् वा स्यात् । **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** १।२।१। गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः । **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** ६।४।६६। एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके । अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत । दुह प्रपूरणे ॥ २१ ॥ दोग्धि । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि । दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुक्षे । दुहाथे । धुग्ध्वे । दुहे । दुह्वहे । दुह्महे । दुदोह, दुदुहे । दोग्धा । धोक्ष्यति, धोक्ष्यते । दोग्धु, दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि, दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि । दुग्धाम् दुहाताम् । दुहताम् । धुक्ष्व । दुहाथाम् । धुग्ध्वम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । अदुग्धाम् । अदुहन् । अदोहम् । अदुग्ध । अदुहाताम् । अदुहत । अधुग्ध्वम् । दुह्यात् । दुहीत । **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** १।२।११। इक्समीपाद्धलः परौ झलादौ लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि । धुक्षीष्ट । **शल इगुपधादनिटः क्सः**

अध्यगीष्ट—अध्युपसर्गकात् इङ्धातोर्लुङि तप्रत्यये 'विभाषा लुङ्लृङोः' इति इङो गाङादेशे 'लुङ्लङ्—इत्यडागमे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते गाङ्कुटादिभ्यः—' इति सिचो ङित्वे 'घुमास्था—' इति अकारस्य ईत्वे 'अधि अ गी स् त' इति जाते यणि, सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'अध्यगीष्ट' इति । गाङोऽभावे आदिवृद्धौ पूर्वोक्तकार्ये 'अध्यैष्ट' इति ।

अधोक्—दुह् धातोर्लङस्तिपि शपो लुकि अङ्गस्याडागमे 'पुगन्त—' इति लघूपधगुणे 'इतश्च' इति तिपः इकारलोपे हल्ङ्यादिना तलोपे 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वे 'एकाचः—' इति भषभावेन दस्य धत्वे धस्य जश्त्वेन गत्वे तस्य चर्त्वेन कत्वे 'अधोक्' इति ।

धुक्षीष्ट—दुह् धातोः आशीर्लिङ्स्ते, सीयुटि उटि गते 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इति लिङः कित्वे कित्वाद् गुणनिषेधे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे

विभा—लुङ् और लङ् के परे इण् के स्थान में गाङ् आदेश विकल्प से होता है । **गाङ्कु**—'इङ्' स्थानिक 'गङ्' तथा कुटादि से पर ङित्ञ्णित् से भिन्न प्रत्यय ङित् संज्ञक होता है ।

घुमा—हलादि कित् ङित् आर्धधातुक प्रत्यय के परे घुसंज्ञक तथा मा, स्था, गा, पा और हा धातु के आकार को ईत्व होता है ।

लिङ्—इक् समीप हल् से पर झलादि लिङ् तथा आत्मनेपद परक झलादि सिच् कित् होता है ।

शल—इगुपध शलन्त धातु से पर अनिट् 'च्लि' को 'क्स' आदेश होता है ।

३।१।४५। इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात्। अधुक्षत्। **लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये** ७।३।७३। एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि। अदुग्ध। अधुक्षत। **क्सस्याचि** ७।३।७२। अजादौ तङि क्सस्य लोपः स्यात्। अलोऽन्त्यस्येति लोपः। अधुक्षाताम्। अधुक्षन्त। अदुग्धाः, अधुक्षथाः। अधुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। अधुक्षि। अदुह्वहि, अधुक्षावहि। अदुह्महि। अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत। एवं दिह् उपचये ॥२२॥ लिह आस्वादने ॥२३॥ लेढि। लीढः। लिहन्ति। लेक्षि। लीढे। लिहाते। लिहते। लिक्षे। लिहाथे। लीढ्वे। लिलेह, लिलिहे। लीढासि, लीढासे लेक्ष्यति लेक्ष्यते। लेढु, लीढात्। लीढाम्। लिहन्तु। लीढि। लेहानि। लीढाम्। अलेट्। अलेड्। अलिक्षत्। अलिक्षत, अलीढ। अलेक्ष्यत्, अलेक्ष्यत। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ॥४॥ **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः** ३।४।८४। ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः। आह। आहतुः। आहुः। **आहस्थः** ८।२।३५।

'दादेर्धातोः' इति हस्य घत्वे 'एकाचो बशः—' इति भष्भावे 'खरि च' इति घस्य कत्वे सस्य षत्वे 'धुक्षीत्' इति जाते 'सुट्तिथोः' इति सुटि उटि गते 'धुक्षीस् त' इति जाते सस्य षत्वे ष्टुत्वे च कृते 'धुक्षीष्ट' इति।

अधुक्षत्--दुह् धातोर्लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्—' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'शल इगुपधादनिटः क्सः' इति च्लेः क्सादेशे अनुबन्धलोपे 'अदुह् स त्' इति जाते 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वे 'एकाचो बशः—' इति दस्य धत्वे 'खरि च' इति घस्य कत्वे सस्य षत्वे 'अधुक्षत्' इति।

आह--ब्रूधातोर्लटस्तिपि शपो लुकि 'ब्रुवः पञ्चानाम्—' इति तिपो णलि ब्रुवः आहादेशे च कृते णलोऽनुबन्धलोपे 'आह' इति।

लुग्वा--अन्त्य तङ् के परे दुहादि धातुओं से पर क्स का विकल्प से लुक् होता है।

क्सस्या—अजादि तङ् के परे 'क्स' के आकार का लोप होता है।

ब्रुव--ब्रू धातु से पर लट् सम्बन्धी तिबादि पाँचों का णल् आदि आदेश विकल्प से होता है और साथ ही ब्रू को आह् आदेश भी होता है।

आहः—झल् के परे आह् को थकारान्त आदेश होता है।

झलि परे। चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः। ब्रुव ईट् ७।३।९३। ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्। ब्रवीति। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रूते। ब्रुवाते ब्रुवते। ब्रुवो वचिः २।४।५३। आर्धधातुके। उवाच। ऊचतुः। ऊचुः। उवचिथ, उवक्थ। ऊचे। वक्ता। वक्ष्यति, वक्ष्यते। ब्रवीतु, ब्रूतात्। ब्रुवन्तु। ब्रूहि। ब्रवाणि। ब्रूताम्। ब्रवै। अब्रवीत। अब्रूत्। ब्रूयात। ब्रुवीत। उच्यात, वक्षीष्ट। अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२। एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्। वच उम् ७।४।२०। अङि परे। अवोचत्, अवोचत। अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत। (चर्करीतं च) चर्करीतमिति यङ्लुगन्तमदादौ बोध्यम्। ऊर्णुञ् आच्छादने॥ २१॥ ऊर्णोतेर्विभाषा ७।३।९०। वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके। ऊर्णौति, ऊर्णोति। ऊर्णुतः ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। ऊर्णुवते। (ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्)। नन्द्राः संयोगादयः ६।१।३। अचः पराः संयोगादयो नदरा

उवाच—ब्रूधातोर्लिटि लिटस्तिपि 'ब्रुवो वचिः' इति ब्रुस्थाने वचादेशे तिपो णलि अनुबन्धलोपे द्वित्वे अभ्यासत्वे 'वच् वच् अ' इति स्थिते 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' इति अभ्यासवचः सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'हलादि शेषः' इति चलोपे 'अत उपधायाः' इति उपावृद्धौ 'उवाच' इति।

अवोचत्—ब्रूधातोर्लुङस्तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'ब्रुवो वचिः' इति वचादेशे 'अस्यतिवक्ति—' इति च्लेरङि अनुबन्धलोपे 'अ वच् अ त्' इति जाते 'वच उम्' इति मित्वादन्त्यादचः परः उमि अनुबन्धलोपे 'अव उ च त्' इति जाते 'आद्गुणः' इति गुणे 'अवोचत्' इति।

ब्रुवः—ब्रू धातु से पर हलादि पित् को ईट् का आगम होता है।

ब्रुवो—आर्धधातुक के परे 'ब्रू' क 'वच्' आदेश होता है।

अस्य—अस् तथा ख्या धातु से पर च्लि को अङ् आदेश होता है।

वच—अङ् के परे वच् के स्थान में उम् का आगम होता है।

ऊर्णो—हलादि पित् सार्वधातुक से परे ऊर्णु धातु को विकल्प से वृद्ध्यादेश होता है।

ऊर्णो—लिट् के परे ऊर्णु धातु को 'आम्' नहीं होता है।

नन्द्राः—अच् से पर संयोगादि न्, द् तथा रेफ को द्वित्व नहीं होता है।

द्विर्न भवन्ति । नुशब्दस्य द्वित्वम् । ऊर्णुनाव । ऊर्णुनुवतुः । ऊर्णुनुवुः । **विभाषोर्णोः १।२।३।** इडादिप्रत्ययो वा ङित्स्यात् । ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ । ऊर्णुविता, ऊर्णविता । ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति । ऊर्णोतु । ऊर्णोतु । ऊर्णवानि । ऊर्णवै । **गुणोऽपृक्ते ७।३।९१।** ऊर्णोतेर्गुणः स्यादपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्ध्यपवादः । और्णोत् । और्णोः । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाः । ऊर्णुवीत् । ऊर्णूयात् । ऊर्णुविषीष्ट । **ऊर्णोतेर्विभाषा ७।२।६।** इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वा वृद्धिः स्यात् । पक्षे गुणः । और्णावीत्, और्णवीत्, और्णुवीत् । और्णाविष्टाम्, और्णुविष्टाम्, और्णविष्टाम् । और्णविष्ट, और्णुविष्ट, और्णविष्यत्, और्णुविष्यत् । **इति अदादिप्रकरणम् ।**

उर्णुनाव — ऊर्णु धातोर्लिटस्तिपि तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'ऊर्णु अ' इति जाते 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इत्यामि प्राप्ते 'ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्' इति निषेधे 'अजादेर्द्वितीयस्य' इति रेफस्य द्वित्वे प्राप्ते 'नन्द्राः संयोगादयः' इति रेफस्य द्वित्वाऽभावे णत्वस्याऽसिद्धत्वात् 'नु' शब्दस्य द्वित्वे प्रथमनकारस्य 'रषाभ्याम्–' इति णत्वे द्वितीयस्य नकारस्य तु 'अट्कुप्वाङ्—' इति णत्वे 'सार्वधातुके'ति गुणे प्राप्ते तं प्रबाध्य कृताऽकृतप्रसंगित्वेन नित्यत्वात् 'अचोऽञ्णिति' इति वृद्धौ औकारस्य आवादेशे 'ऊर्णुनाव' इति ।

और्णुवीत्—ऊर्णु धातोर्लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे 'आडजादीनाम्' इत्यादि 'आटश्च' इति वृद्धौ च्लौ च्लेः सिचि इचि गते सिपः सस्य 'आर्धधातुकस्य–' इति इटि 'अपृक्ते'ति तस्य ईटि 'विभाषोर्णोः' इति इटो ङित्वात् गुणाऽभावे उवङि अनुबन्धलोपे 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'और्णुवीत्' इति । ङित्वाऽभावपक्षे गुणं बाधित्वा 'ऊर्णोतेर्विभाषा' इति वा वृद्धावादेशे 'और्णावीत्' इति । वृद्ध्यभावपक्षे 'सार्वधातुके'ति गुणेऽवादेशे 'और्णवीत्' इति ।

इति अदादिप्रकरणम् ।

विभा—ऊर्णु धातु से पर इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् होता है ।

गुणो—अपृक्त संज्ञक हलादि पित् सार्वधातुक के परे ऊर्णु धातु के ऊकार को गुण होता है । ऊर्णो—हलादिपरस्मैपद परक सिच् के परे ऊर्णु धातु सम्बन्धी ऊकार को वृद्धि आदेश विकल्प से होता है ।

अदादिप्रकरण समाप्त ।

अथ जुहोत्यादिप्रकरणम्

हु दानादनयोः ॥१॥ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५। शपः श्लुः स्यात्। श्लौ ६।१।१०। धातोर्द्वे स्तः। जुहोति। जुहुतः। अदभ्यस्तात् ७।१।४। झस्यात्स्यात्। हुश्नुवोरिति यण्। जुह्वति। भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९। एभ्यो लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च। जुहवाञ्चकार, जुहाव। होता। होष्यति। जुहोतु, जुहुतात्। जुह्वतु। जुहुधि। जुहवानि। अजुहोत्। अजुहुताम्। जुसि च ७।३।८३। इगन्ताङ्गस्य गुणः स्यादजादौ जुसि। अजुहवुः। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। ञिभी भये ॥२॥ बिभेति।

जुहोति—हुधातोर्लटस्तिपि शपि 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इति शपः श्लौ 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'हु हु ति' इति स्थिते 'कुहोश्चुः' इति हस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'सार्वधातुके'ति गुणे 'जुहोति' इति।

जुहवाञ्चकार—हुधातोर्लिटि 'भीह्रीभृहुवां–' इति लिटः पाक्षिके आमि श्लवद्भावे च विहिते द्वित्वे अभ्यासत्वे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वेन हस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे गुणे अवादेशे 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे लिटस्तिपो णलि द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इति अत्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे गुणे रपरत्वे 'अत उपधायाः' इति उपधावृद्धौ मस्यानुसारे परसवर्णे 'जुहवाञ्चकार' इति। आमोऽभावपक्षे लिटस्तिपो णलि द्वित्वादिके कृते गुणे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'अचो-ञ्णिति' इति वृद्धौ अवादेशे 'जुहाव' इति।

जुहो–जुहोत्यादि गणपठित धातुओं से पर शप् को 'श्लु' आदेश होता है।

श्लौ—श्लु के परे धातु को द्वित्व होता है।

अद—अभ्यास से पर 'झ' के स्थान में अत्' होता है।

भी-ह्री—लिट् के परे भी, ह्री, भृ तथा हु धातु से विकल्प से आम् प्रत्यय होता है और साथ ही आम् के परे 'श्लु' की तरह द्वित्वादि कार्य भी होता है।

जुसि—यजादि जुस् के परे इगन्त अंग को गुण होता है।

भियोऽन्यतरस्याम् ६।४।११५। इकारः स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभीतः, बिभितः, बिभ्यति। बिभयाञ्चकार, बिभाय। भेता। भेष्यति। बिभेतु, बिभितात्, बिभीतात्। अबिभेत्। बिभियात्, बिभीयात्। भीयात्। अभैषीत्। अभेष्यत्। ह्री लज्जायाम्॥ ३॥ जिह्रेति। जिह्रीतः। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। ह्रेता। ह्रेष्यति। जिह्रेतु। अजिह्रेत्। जिह्रीयात्। अह्रैषीत्। अह्रेष्यत्। पॄ पालनपूरणयोः॥ ४॥ **अर्तिपिपर्त्योश्च** ७।४।७७। अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ। पिपर्ति। **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** ।७।१।१०२। अङ्गावयवोष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उत्स्यात्। **हलि च** ८।२।७७। रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्यात् हलि। पिपूर्तः। पिपुरति। पपार। शॄदॄप्रां

बिभितात्—भीधातोर्लोटि तिपि अनुबन्धलोपे शपि 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इति शपः श्लुत्वे 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इति अभ्यासस्याऽचो ह्रस्वत्वे 'अभ्यासे चर्च' इत्यभ्यासस्य बत्वे 'एरुः' इति तिपः इकारस्य उत्वे तातङि अनुबन्धलोपे 'भियोऽन्यतरस्याम्' इति विभाषया ईकारस्य इकारे 'बिभितात्' इति। इत्वविकल्पे 'बिभीतात्' इति। तातङाभावे 'सार्वधातुके'ति गुणे 'बिभेतु' इति।

पिपूर्तः—पॄ धातोर्लटस्तसि शपि 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इति शपः श्लौ 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'अर्तिपिपर्त्योश्च' इति अभ्यासस्य इकारान्तादेशे रपरत्वे हलादिशेषे 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' इति उत्वे रपरत्वे च कृते 'हलि च' इति दीर्घे सस्य रुत्वे बिसर्गे 'पिपूर्तः' इति।

भियो—हलादि कित्-ङित् सार्वधातुक के परे भी धातु को विकल्प से इत्व होता है।

अर्ति—श्लु प्रत्यय के परे ॠ तथा पॄ धातु के अभ्यास को इत्व होता है।

उदो—अंगावयव ओष्ठपूर्वक ॠदन्त अंग को उत् आदेश होता है।

हलि—हल् के परे रेफान्त और वान्त धातु की उपधा इक् को दीर्घ होता है।

शॄ-दॄ—कित् लिट् प्रत्यय के परे शॄ, दॄ तथा पॄ धातु सम्बन्धी दीर्घ ॠ को विकल्प से ह्रस्व होता है।

ह्रस्वो वा ७।४।१२। एषां किति लिटि ह्रस्वो वा स्यात्। पप्रतुः। **ऋच्छत्यॄताम्** ७।४।११। तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ॠतां च गुणः स्यात् लिटि। पपरुः। पपरतुः। **वॄतो वा** ८।२।३८। वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि। परिता, परीता। परिष्यति, परीष्यति। पिपर्तु। अपिपः। अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्। **सिचि च परस्मैपदेषु** ७।२।४०। अत्र इटो न दीर्घः। अपारिष्टाम्। अपरिष्यत्, अपरीष्यत्। **ओहाक् त्यागे** ॥ ९ ॥ जहाति। **जहातेश्च** ६।४।११६। इद्वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। जहितः। **ईहल्यघोः** ६।४।११३। श्नाभ्यस्तयोरात ईत्स्यात् सार्वधातुके

पप्रतुः, पपरतुः—पॄधातोर्लिटस्तसि तसोऽतुसि द्वित्वेऽभ्यासत्वे 'उरत्' इत्यत्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'शॄदॄप्राङ्‌ ह्रस्वो वा' इति विभाषया ह्रस्वे यणि सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'पप्रतुः' इति। ह्रस्वाऽभावे 'ऋच्छत्यॄताम्' इति गुणे रपरत्वे 'पपरतुः' इति।

जहाति—हाधातोर्लटस्तिपि शपि शपः श्लुत्वे 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्यासस्याऽचो ह्रस्वे 'कुहोश्चुः' इति हस्य झत्वे झस्य जत्वे 'जहाति' इति।

जहितः—हाधातोर्लटस्तसि शपि शपः श्लौ द्वित्वे ह्रस्वत्वे हस्य झत्वे झस्य जत्वे 'सार्वधातुकमपित्' इति तसो ङित्वे 'जहातेश्च' इति आकारस्य विभाषया इत्वे 'जहितः' इति।

ऋच्छ—लिट् के पर तुदादि के ऋच्छ् धातु, ऋ धातु तथा दीर्घ ॠकारान्त धातु को गुण होता है।

वॄतो—वृङ्, वृञ् तथा दीर्घ ॠदन्त धातु से पर इट् को विकल्प से दीर्घ होता है, लिट् के परे छोड़कर।

सिचि—परस्मैपदपरक सिच् के परे 'वॄतो वा' से विहित इट् को दीर्घ नहीं होता है।

जहा—हलादि कित्-ङित् के परे हा धातु के आकार को इत्व विकल्प से होता है।

ई ह—हलादि कित्-ङित् सार्वधातुक के परे श्ना और अभ्यस्त सम्बन्धी आकार को ईत्व होता है।

क्ङिति हलि न तु घोः । जहीतः । **श्नाभ्यस्तयोरातः** ६।४।११२। अनयोरातो लोपः स्यात् क्ङिति सार्वधातुके । जहति । जहौ । हाता । हास्यति । जहातु, जहितात्, जहीतात् । **आ च हौ** ६।४।११७। जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ । जहाहि, जहिहि, जहीहि । अजहात् । **लोपो यि** ६।४।११८। जहातेरालोपः स्यात् यादौ सार्वधातुके । जह्यात् । एर्लिङि । हेयात् । अहासीत् । अहास्यत् । माङ् माने शब्दे च ।। ६ ।। **भृञामित्** ७।४।७६। भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ । मिमीते । मिमाते । मिमते । ममे । माता । मास्यते । मिमीताम् । अमिमीत । मिमीत । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत । ओहाङ् गतौ ।। ७ ।। जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । हाता । हास्यते । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत । डु भृञ् धारणपोषणयोः ।। ८ ।। बिभर्ति । बिभृतः । बिभ्रति । बिभृते । बिभ्राते ।

जहीतः—इत्वविकल्पे 'ई हल्य घोः' इति अकारस्य ईकारे 'जहीतः' इति ।

जहति—हाधातोर्लटि झौ शपि शपः श्लौ धातोर्द्वित्वे अभ्यासस्याऽचो ह्रस्वे हस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जश्त्वे 'उभे अभ्यस्तरम्' इति अभ्यस्तसंज्ञायाम् 'अदभ्यस्तात्' इति झेरति 'श्नाभ्यस्तयोरातः' इत्याकारलोपे 'जहति' इति ।

जहाहि—हाधातोर्लोटि तत्स्थाने सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सिपः स्थाने 'हि' इत्यादेशे शपि 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इति शपः श्लौ' 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इति अभ्यासस्याऽचो ह्रस्वे 'कुहोश्चुः' इति हस्य कुत्वेन झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'आच हौ' इति आत्वपक्षे 'जहाहि' इति, इत्वपक्षे, 'जहिहि' इति, 'ईत्वपक्षे 'जहीहि' इति ।

बिभ्रति—भृधातोर्लटि लटः स्थाने झौ शपः श्लौ 'श्लौ' इति दित्वे अभ्यासत्वे 'भृञामित्' इति अभ्यासस्य इत्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'अभ्यासे चर्च'

आच—'हि' प्रत्यय के परे हा धातु को आत्त्व तथा चकारात् इत्त्व और ईत्त्व भी होता है ।

लोपो—यकारादि सार्वधातुक के परे 'हा' धातु के आकार का लोपः होता है ।

भृञा—'श्लु' के विषय में भृञ्, माङ् तथा ओहाङ् धातुसम्बन्धी अभ्यास को इत्त्व होता है ।

बिभ्रते । बिभराञ्चकार, बभार । बभर्थ । बभृव, बिभराञ्चक्रे, बभ्रे । भर्ता । भरिष्यति, भरिष्यते । बिभर्तु । बिभराणि । बिभृताम् । अबिभः । अबिभृताम् । अबिभरुः । अबिभृत । बिभृयात् बिभ्रीत । भ्रियात् । भृषीष्ट । अभार्षीत् अभृत । अभरिष्यत् । डुदाञ् दाने ॥ ९ ॥ ददाति । दत्तः । ददति । दत्ते । ददाते । ददते । ददे । दाता । दास्यति, दास्यते । ददातु । **दाधा घ्वदाप् १।१।२०।** दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना । घ्वसोरित्येत्वम् । देहि । दत्तम् । अददात् । **स्थाघ्वोरिच्च १।१।१७।** अनयोरिदन्तादेशः स्यात् स च कित्स्यादात्मने पदे । अदित । अदास्यत्, अदास्यत । डुधाञ् धारणपोषणयोः ॥ १० ॥ दधाति । **दधस्तथोश्च ८।२।३८।** द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धातोर्बशो भष् स्यात्तथोः परयोः स्ध्वोश्च परतः । धत्तः । दधति । दधामि । धत्थः । धत्ते । दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे । घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ।

इति अभ्यासभकारस्य बकारे 'उभे अभ्यस्तम्' इति अभ्यस्तसंज्ञायाम् अदभ्यस्यात्' इति झस्य 'अति' 'इको यणचि' इति यणि 'बिभ्रात' इति ।

भृषीष्ट—भृधातोरात्मनेपदे आशीर्लिङ्स्थाने ते 'लिङः' सीयुट्' इति सीयुटि अनुबन्धलोपे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'सुट् तिथोः' इति सुटि उटि गते 'भृ सीस् त' इति जाते 'ऊश्च' इति कित्वाद् गुणाऽभावे द्वयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे भृषीष्ट' इति ।

देहि—दाधातोर्लोटि तत्स्थाने सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हित्वे 'दाधाघ्वदाप्' इति घुसंज्ञायां सत्यां सार्वधातुकसंज्ञायां शपि शपः श्लौ द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वत्वे च कृते 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति एत्वे अभ्यासलोपे च जाते देहि' इति ।

अदित—दाधातोरात्मनेपदे लुङि तत्स्थाने ते 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'दाधाघ्वदाप्' इति घुसंज्ञायां

दाधा—दाप् और दैप् धातु को छोड़कर दा तथा धा धातुओं की घुसंज्ञा होती है ।

स्था—आत्मनेपद के परे स्था तथा घुसंज्ञक धातुओं को इदन्तादेश और धातु से पर सिच् कित् हो जाता है ।

दधस्त—कृत द्वित्व झषन्त धाञ् धातु के बश् को भष्भाव होता है, तकार, थकार तथा ध्व शब्द के परे ।

धेहि । अदधात् । अधत्त । दध्यात् । दधीत । धेयात् । धासीष्ट । अधात् । अधास्यत्, अधास्यत । णिजिर् शौचपोषणयोः ॥११॥ (**इर इत्संज्ञा वाच्या**) **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ** ७।४।७५। णिज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ । नेनेक्ति । नेनिक्तः । नेनिजति । नेनिक्ते । नेनिजे । नेक्ता । नेक्ष्यते । नेनेक्तु । नेनिग्धि । **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** ७।३।८७। लघूपधगुणो न स्यात् । नेनिजानि । नेनिक्ताम् । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । अनेनिजम् । अनेनिक्त । नेनिज्यात् । निज्यात्, निक्षीष्ट । **इरितो वा** ३।१।५७। इरितो धातोश्च्लेरङ् वा स्यात् परस्मैपदेषु । अनिजत् । अनैक्षीत् । अनिक्त । अनेक्ष्यत् । अनेक्ष्यत ।   इति जुहोत्यादिप्रकरणम् ।

'स्थाध्वोरिच्च' इति इदन्तादेशे सिचः कित्वात् गुणाऽभावे 'ह्रस्वादङ्गात्' इति सिचः सलोपे 'अदित' इति ।

नेनेक्ति— णिजिर् शौचपोषणयोः अस्माद्धातोर्लटि 'इर् इत्संज्ञा वाच्या' इति इत्संज्ञायां लोपे च कृते 'णो नः' इति धात्वादेर्णस्य नत्वे लटस्तिपि शपि शपः श्लौ 'श्लौ' इति धातोर्द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ' इत्यभ्यासस्य गुणे 'चोः कुः' इति जस्य गत्वे 'खरि च' इति गस्य कत्वे 'पुगन्ते'ति गुणे 'नेनेक्ति' इति ।

नेनिजानि—णिजिर्धातोर्लोटि 'इर् इत्संज्ञा वाच्या' इति इत्संज्ञायां लोपे च कृते 'णो नः' इति धातोर्णस्य नत्वे लोटः स्थाने मिपि अनुबन्धलोपे 'मेर्निः' इति मेर्न्यादेशे शपि शपः श्लौ 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'आडुत्तमस्य पिच्च' इत्याटि टस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'निजां त्रयाणां गुणः श्लौ' इति अभ्यासस्य गुणे 'नाभ्यस्तस्याऽचि—' इति गुणनिषेधे 'नेनिजानि' इति ।

इति जुहोत्यादिप्रकरणम् ।

इर— इर् की इत्संज्ञा होती है । **णिजां**—निज्, विज् तथा विष् धातु सम्बन्धी अभ्यास के इकार को गुण होता है, श्लु के विषय में ।

नाभ्यः— अजादि पित् सार्वधातुक के परे अभ्यस्त संज्ञक धातु को लघुपध गुण नहीं होता है । **इरि**— परस्मैपद के परे इरित्संज्ञक धातु से पर च्लि को विकल्प से अङ् होता है । जुहोत्यादिप्रकरण समाप्त ।

अथ दिवादिप्रकरणम्

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ॥ १ ॥
दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९। शपोऽपवादः। हलि चेति दीर्घः। दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्। एवं षिवु तन्तुसन्ताने ॥२॥ नृती गात्रविक्षेपे। ३। नृत्यति। ननर्त। नर्तिता। **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** ७।२।५७। एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्। नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। नृत्यतु। अनृत्यत्। नृत्येत्। नृत्यात्। अनर्तीत्। अनर्तिष्यत्। त्रसी उद्वेगे ॥३॥ **वा भ्राशेति** श्यन्वा। त्रस्यति, त्रसति। तत्रास। **वा जॄभ्रमुत्रसाम्** ६।४।१२४। एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा स्तः। त्रेसतुः, तत्रसतुः। त्रेसिथ, तत्रसिथ। त्रसिता। शो तनूकरणे ॥ ५ ॥ **ओतः श्यनि** ७।३।७१। लोपः स्यात् श्यनि। श्यति। श्यतः। श्यन्ति। शशौ। शशतुः। शाता। शास्यति। **विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः** २।४।७८। एभ्यस्सिचो लुग्वा स्यात्

दिवु—'उदिदयम्। तेन क्त्वायाम् इड्विकल्पः। निष्ठायां च नेट्।

नर्तिष्यति—'नृती गात्रविक्षेपे' अस्मात् लृटस्तिपि 'स्यतासी—' इति स्यप्रत्यये 'सेऽसिचि कृत-चृत-च्छृदतृदनृतः' इति विभाषया इटि 'पुगन्ते'ति गुणे रपरत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षत्वे 'नर्तिष्यति' इति। इडभावे 'नर्त्स्यति' इति।

दिवु—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे दिवादि गणपठित धातुओं से श्यन् प्रत्यय होता है।

सेऽसि—कृत्, चृत्, छृद्, तृद् तथा नृत् धातुओं से पर सिच् से भिन्न सकारादि आर्धधातुक को इट् का आगम विकल्प से होता है।

वाजॄ—कित्, लिट् तथा सेट् थल् के परे जॄ भ्रम् और त्रस् धातुओं को विकल्प से एत्वाभ्यासलोप होता है।

ओतः—श्यन् के परे ओकार का लोप होता है।

विभा—परस्मैपद के परे घ्रा, धेट्, शो तथा छो धातुओं से पर सिच् का विकल्प से लोप होता है।

परस्मैपदे परे। अशात्। अशाताम्। अशुः। इट्सकौ। अशात्। अशासिष्टाम्। छो छेदने ॥ ६ ॥ छ्यति। षोऽन्तकर्मणि ॥ ७ ॥ स्यति। ससौ। दोऽवखण्डने ॥८॥ द्यति। ददौ। देयात्। अदात्। व्यध ताडने ॥ ९ ॥ **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** ६।१।१६। एषां सम्प्रसारणं स्यात्किति ङिति च। विध्यति। विव्याध। विविधतुः। विव्यधिथ, विव्यद्ध। व्यद्धा। व्यत्स्यति। विध्येत्। विध्यात्। अव्यात्सीत्। पुष पुष्टौ ॥ १० ॥ पुष्यति। पुपोष। पुपोषिथ। पोष्टा। पोक्ष्यति। पुषादीत्यङ्। अपुषत्। शुष शोषणे। ११ ॥ शुष्यति। शुशोष। अशुषत्। णश अदर्शने ॥ १२ ॥ नश्यति। ननाश। नेशतुः। **रधादिभ्यश्च** ७।२।४५। रध् नश् तृप् दृप् द्रुह् ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात्। नेशिथ। **मस्जिनशोर्झलि** ७।१।६०। नुम् स्यात्। ननंष्ठ। नेशिम। नेष्ट। नेशिम. नेश्म। नशिता,

---

अशात्, अशासीत्—शोधातोर्लुङि तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः' इति विभाषया सिचः सस्य लोपे 'आदेच उपदेशेऽशिति' इति आत्वे 'अशात्' इति। सिजलोपाभावपक्षे—'यमरमनमातां सक् च' इति आदन्तत्वात् इट्सकौ 'अस्तिसिचः'-इति च ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे 'अशासीत्' इति।

नेशिथ, ननंष्ठ—'णश् अदर्शने' 'णो नः' इति णस्य नत्वे 'नश' इति। तस्माल्लिटः सिपि सिपस्थलि द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'रधादिभ्यश्च' इति वा इटि 'ननश् इ थ' इति जाते 'थलि च सेटि' इति एत्वाऽभ्यासलोपे 'नेशिथ' इति। इडभावपक्षे—'ननश् थ' इति स्थिते 'मस्जिनशोर्झलि' इति नुमि उमि गते 'व्रश्चभ्रस्ज-' इति षत्वे ष्टुत्वे 'नश्चापदान्तस्य झलि' इत्यनुस्वारे 'ननंष्ठ' इति।

ग्रहि—कित् ङित् के परे ग्रह, ज्या, व्यञ्, वष्टि, विच्, व्रश्च, प्रच्छ् तथा भ्रस्ज् धातुओं को सम्प्रसारण होता है।

रधा—रधादि धातुसम्बन्धी वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम विकल्प से होता है।

मस्जिन—झल् के परे मस्ज तथा नस् धातु को नुम् होता है।

नंष्टा । नशिष्यति, नङ्क्ष्यति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । षूङ् प्राणिप्रसवे ॥१३॥ सूयते । सुषुवे । क्रादिनियमादिट् । सुषुविषे । सुषुविवहे । सुषुविमहे । सोता, सविता । दूङ् परितापे ॥१४॥ दूयते । दीङ् क्षये ॥१५॥ दीयते । **दीङो युडचि क्ङिति** ६।४।६३। दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्यैव युट् स्यात् (**वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ**) दिदीये । **मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च** ६।१।५०। एषामात्वं स्यात् ल्यपि चादशित्येज् निमित्ते। दाता । दास्यति । (**स्थाघ्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः**) अदास्त । डीङ् विहायसा गतौ ॥१६॥ डीयते । डिड्ये । डयिता । पीङ् पाने ॥१७॥ पीयते । पेता । अपेष्ट । माङ् माने ॥१८॥ मायते । ममे । जनी प्रादुर्भावे ॥१९॥ **ज्ञाजनोर्जा** ७।३।७९। अनयोर्जादेशः स्यात् शिति परे । जायते । जज्ञे । जनिता

दिदीये--'दीङ् क्षये' अस्माल्लिटि लिटस्ते धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इति ह्रस्वे 'दिदीत' इति जाते 'लिटस्तझयोः–' इति तस्य एशि अनुबन्धलोपे "दिङो युडचि क्ङिति' इति अजादेरार्धधातुकस्य युटि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'एरनेकाचः–' इति परत्वात् यणि प्राप्ते 'वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ' इति नित्यत्वात् युटि उटि गते 'दिदीये' इति ।

अदास्त— दीङ्धातोर्लुङि लुङस्तादेशे अटि टिद्गते मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि इचि गते 'मिनाति मिनोति–' इति ईकारस्यात्वे 'स्थाघ्वोरिच्च' इति इदादेशे प्राप्ते 'स्थाघ्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः' इतीत्वप्रतिषेधे 'अदास्त' इति ।

जज्ञे — जन्धातोर्लिटि तादेशे तस्य एशि अनुबन्धलोपे द्वित्वे अभ्यासकार्ये हलादिशेषे 'ज जन् ए' इति जाते 'गमहनजन–' इति जन्धातोरुपधाया अकारलोपे श्चुत्वे 'जज्ञे' इति ।

दीङो—दीङ् धातु से पर अजादि कित् ङित् आर्धधातुक को युट् का आगम होता है । **वुग्यु**--उवङ् या यण् कर्तव्य में वुक् या युट् का आगम असिद्ध नहीं होता है ।

मीना—मीङ् मिञ् तथा दीङ् धातु को आत्व होता है, ल्यप् के परे, चकारात् एज्निमित्तक अशित् प्रत्यय के विषय में ।

स्था--'स्थाघ्वोरिच्च' सूत्र से विहित इत्त्व दीङ् धातु को नहीं होता है।

ज्ञाजनो--शित् प्रत्यय के परे ज्ञा और जन् धातु के स्थान में 'जा' आदेश होता है ।

जनिष्यते । **दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्** ३।१।६१। एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्याद् एकवचने तशब्दे परे । **चिणो लुक्** ६।४।१०४। चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात् । **जनिवध्योश्च** ७।३।३५। अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । अजनि, अजनिष्ट । दीपी दीप्तौ ॥२०॥ दीप्यते । दिदीपे । अदीपि, अदीपिष्ट । पद गतौ ॥२१॥ **चिण् ते पदः** ३।१।६०। पदश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे । अपादि । अपत्साताम् । अपत्सत । विद सत्तायाम् ॥२२॥ विद्यते । वेत्ता । अवित्त । बुध अवगमने ॥२३॥ बुध्यते । बोद्धा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अबोधि, अबुद्ध । अभुत्साताम् । युध सम्प्रहारे ॥२४॥ युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध । सृज विसर्गे ॥२५॥ सृज्यते । ससृजे ।

अजनि, अजनिष्ट—जन्धातोर्लुङि लुङस्तादेशे अटि टिद्गते मध्ये च्लौ 'दीपजन–' इति विभाषया च्लेश्चिणि अनुबन्धलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ प्राप्तायां जनिवध्योश्च' इति निषेधे 'चिण् ते पदः' इति तलोपे 'अजनि' इति । चिणोऽभावे–च्लेः सिचि 'आर्धधातुस्ये'ति इटि षत्वे ष्टुत्वे 'अजनिष्ट' इति ।

अपादि—'पद् गतौ' अस्माल्लुङि लुङस्तादेशे अटि टिद्गते मध्ये च्लौ 'चिण् ते पदः' इति च्लेश्चिणि चणावितौ 'चिणो लुक्' इति तलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'अपादि' इति ।

स्रष्टा—(पृ० १४०) सृज्धातोर्लुटि लुटः तादेशे तासि तकारस्य डात्वे डित्वसामर्थ्याद् अभस्याऽपि टेर्लोपे 'सृजिदृशोः–' इत्यमि अनुबन्धलोपे 'सृ अ ज् ता' इति जाते यणि 'व्रश्चभ्रस्ज–' इति । षत्वे ष्टुत्वे 'स्रष्टा' इति ।

दीप—दीप् आदि धातुओं से पर च्लि को चिण् आदेश विकल्प से होता है, एकवचन 'त' शब्द के परे ।

चिणो—चिण् से पर 'त' शब्द को लोप हो जाता है ।

जनि—चिण् तथा ञित्, णित्, कित् के परे जन और वध की उपधा को वृद्धि आदेश नहीं होता है ।

चिण्—एकवचन 'त' शब्द के परे पद् धातु से विहित च्लि को चिण् आदेश होता है ।

ससृजिषे । सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६।१।५८। अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति । स्रष्टा । स्रक्ष्यति । असृष्ट । स्रक्षीष्ट । असृक्षाताम् । मृष तितिक्षायाम् ॥२५॥ मृष्यति, मृष्यते । ममर्ष । ममर्षिथ । ममृषे । मर्षितासि । मर्षिष्यति, मर्षिष्यते । णह बन्धने ॥२७॥ नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहिथ, ननद्ध । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत्, अनद्ध ।

इति दिवादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

अनात्सीत्—णह् बन्धने 'णो नः' इति णस्य नत्वे 'नह्' इति । तस्माल्लिुङि अटि तिपि च्लौ सिचि इचि गते 'अस्ति सिचोऽपृक्ते इति' तस्य ईटि टित्वे 'वदव्रजे'ति वृद्धौ 'नहो धः' इति हस्य धत्वे 'खरि चे'ति चर्त्वे 'अनात्सीत्' इति । आत्मनेपदे—'अनद्ध' इति ।

इति दिवादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

सृजि—झलादि अकित् के परे सृज और दृश् धातु को अन् का आगम होता है ।

दिवादिप्रकरण समाप्त

—: ० :—

अथ स्वादिप्रकरणम्

षुञ् अभिषवे ॥ १ ॥ स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३। शपोऽपवादः । सुनोति । सुनुतः । हुश्नुवोरिति यण् । सुन्वन्ति । सुन्वः, सुनुवः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुन्वहे, सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सोता । सुनुः । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् । **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** ७।२।७२। एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु । असावीत्, असोष्ट । चिञ् चयने ॥ २ ॥ चिनोति, । **विभाषा चेः** ७।३।५८। अभ्यासात्परस्य कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च । चिकाय, चिचाय; चिक्ये, चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट । स्तृञ् आच्छादने ॥ ३ ॥ स्तृणुते । **शर्पूर्वाः खयः** ७।४।६१। अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते अन्ये हलो लुप्यन्ते । तस्तार । तस्तरतुः । तस्तरे । गुणोऽर्तीति गुणः । स्तर्यात् । **ऋतश्च संयोगादेः**

षुञ् अभिषवे—अभिषवः=स्नपनं, पीडनं, स्नानं, सुखोत्पादनं च ।

असावीत्— षुङ् धातुः अनिट्, तस्मात् लुङि तिपि अटि अनुबन्धलोपे 'धात्वादेः षः सः' इति सत्वे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'स्तु-सु-धूञ्भ्यः-' इति सस्य इटि 'अस्ति सिचः-इति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति' सलोपे 'सिचि वृद्धिः-इति वृद्धौ सवर्णदीर्घे आवादेशे 'असावीत्' इति ।

तस्तार—स्तृधातोर्लिटि तिप् णलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इत्यभास-ऋकारस्य अदादेशे रपरत्वे 'शर्पूर्वाः-इति द्वित्वे अभ्यासतकारस्य शेषे तदुत्तरस्य सकारस्य लोपे 'तर् स्तृ अ' इति जाते 'हलादि शेषः' इत्यभ्यासरकारस्य लोपे 'त स्तृ अ' इति स्थिते 'ऋतश्च संयोगादेर्गुणः' इति गुणे रपरत्वे च जाते 'तस्तर् अ' इति भूते 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ रपरत्वे 'तस्तार' इति ।

स्वादि—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे स्वादिगण-पठित धातुओं से 'श्नु' प्रत्यय होता है । **स्तु-सु**—परस्मैपद के परे स्तु, सु तथा धू धातुओं से पर सिच् को इट् होता है । **विभा**—सन् और लिट् के परे अभ्यास से पर चिधातु सम्बन्धी चकार को विकल्प से कुत्व होता है । **शर्पू**—अभ्यास सम्बन्धी शर्-पूर्वक खय् का शेष और अन्य का लोप हो जाता है ।

७।२।३३। ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि । स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट । अस्तरिष्ट, अस्तृत । धूञ् कम्पने ।।४।। धुनुते । दुधाव । स्वरतीति वेट् । दुधविथ, दुधोथ । श्र्युकः किति ७।२।११। श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न स्यात् । परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेध-काण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् । दुधुविव । दुधुवे । अधावीत्, अधविष्ट । अधविष्यत, अधोष्यत् । अधविष्यताम्, अधोष्यताम् । अधविष्यत, अधोष्यत । इति स्वादिप्रकरणम् ।

स्तरिषीष्ट—स्तृधातोः आशिषि लिङि लिङस्तादेशे सियुडागमे उटि गते 'सुट् तिथोः' इति सुटि उटावतौ 'ऋतश्च संयोगादेः' इति विभाषया इटि कृते 'गुणोर्तिसंयोगाद्योः' इति गुणे उभयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे 'स्तरिषीष्ट' इति इडभावे 'ऊश्च' इति कित्वाद् गुणाऽभावे 'स्तृषीष्ट' इति ।

दुधविथ—धूधातोर्लिटि तत्स्थाने सिपि थलि 'लिटि धातोः–' इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये 'स्वरतिसूति–' इति विभाषया इटि 'सार्वधातुके'ति गुणे अवादेशे 'दुधविथ' इति । इडभावपक्षे गुणे 'दुधोथ' इति ।

दुधुविव– धूधातोर्लिटो वसि तत्स्थाने वादेशे धातोर्द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये 'दुधू व' इति स्थिते परत्वात् 'स्वरतिसूति–' इति विभाषया इट्प्राप्ते पुरस्तात् विप्रतिषेधात् 'श्र्युकः किति' इति निषेधं बाधित्वा क्रादिनियमात् नित्यमिटि 'अचि श्नुधातु–' इति उवङि अनुबन्धलोपे 'दुधुविव' इति ।

अधावीत्—धूधातोर्लुङि तत्स्थाने तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि इचि गते 'स्तुसुधूञ्भ्य–' इति सिचः परत्वान्नित्यमिटि 'अस्ति सिचः–' वति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'सचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ आवादेशे 'अधावीत्' इति । इति स्वादिप्रकरणम् ।

—:०:—

ऋत—तङ् के परे संयोगादि ऋदन्त धातुओं से पर लिङ् तथा सिच् को विकल्प से इट् होता है ।

श्र्युकः—श्रिञ् तथा एकाच् उगन्त धातुओं से पर गित् तथा कित् प्रत्यय को इट् नहीं होता है । स्वादिप्रकरण समाप्त ।

अथ तुदादिप्रकरणम्

तुद व्यथने ॥१॥ **तुदादिभ्यः शः** ३।१।७७। शपोऽपवादः। तुदति। तुदते। तुतोदिथ। तुतुदे। तोत्ता। अतौत्सीत्, अतुत्त। णुद प्रेरणे ॥२॥ नुदति। नुदते। नुनोद। नोत्ता। भ्रस्ज पाके ॥३॥ ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। सस्य श्चुत्वेन शः। शस्य जश्त्वेन जः। भृज्जति। भृज्जते। **भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम्** ६।४।४७। भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके। मित्त्वादन्त्यादचः परः। स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयानिवृत्तिः। बभर्ज। बभर्जतुः। बभर्जिथ, बभर्ष्ठ। बभ्रज्ज। बभ्रज्जतुः। बभ्रज्जिथ। स्कोरिति सलोपः। व्रश्चेति षः। बभ्रष्ठ। बभृज्जे। भर्ष्टा, भ्रष्टा। भ्रक्ष्यति, भर्क्ष्यति।

भृज्जति—भ्रस्ज्धातोर्लटि तिपि 'तुदादिभ्यः शः' इति शे अनुबन्धलोपे शस्याऽपित्त्वेन 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वात् 'ग्रहिज्ये'ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'भृ स् ज् अ' इति जाते सस्य श्चुत्वेन शत्वे 'झलां जश् झशि' इति शस्य जश्त्वेन जत्वे 'भृज्जति' इति।

बभर्जिथ—भ्रस्ज्धातोर्लिटि सिपि थलि धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बत्वे 'भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम्' इति रमि रोपधयोर्निवृत्तौ 'आर्धधातुकस्य–' इति थलः इटि प्राप्ते 'एकाजुपदेशे-' इति इण्निषेधे क्रादिनियमात् विभाषया इटि अनुबन्धलोपे '**बभर्जिथ**' इति।

इडभावे द्वित्वादिकार्ये कृते रमागमे च जाते 'बभर् थ' इति दशायां 'व्रश्चे'ति षत्वे ष्टुत्वे '**बभर्ष्ठ**' इति। रमभावे द्वित्वादिके कृते भारद्वाजनियमाद् विभाषया इटि सस्य श्चुत्वेन शत्वे 'झलां जश्–' इति शस्य जत्वे '**बभ्रज्जिथ**' इति। रमः इटश्चाऽभावे द्वित्वादिके कृते 'स्कोः संयोगाद्यो' इति सलोपे 'व्रश्चे'ति षत्वे ष्टुत्वे '**बभ्रष्ठ**' इति चत्वारि रूपाणि भवन्ति।

तुदा–कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे तुदादि गणपठित धातुओं से 'श' प्रत्यय होता है। **भ्रस्जो**–आर्धधातुक के परे भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम विकल्प से होता है।

"क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन" भृज्यात् । भृज्यास्ताम् । भृज्यासुः । भर्क्षीष्ट । भ्रक्षीष्ट । अभार्क्षीत्, अभ्राक्षीत् । अभर्ष्ट, अभ्रष्ट । कृष विलेखने ।४। कृषति, कृषते । चकर्ष, चकृषे । **अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्** ३।१।५९। उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्वा स्याज्झलादावकिति । क्रष्टा, कर्ष्टा । कृक्षीष्ट । **(स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः)** अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्, अकृक्षत । अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षत । क्सपक्षे ।

भृज्ज्यात्—भ्रस्ज्धातोराशिर्लिङि तिपि 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' इति तिपः इकारलोपे 'किदाशिषि' इति यासुटः कित्वात् 'भ्रस्जे'ति रमागमं प्रबाध्य पूर्वविप्रतिषेधेन पूर्वं कित्वात् 'ग्रहिज्ये'ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'स्कोः–' इति सलोपे सस्य श्चुत्वेन शत्वे 'झलां जश् झशि' इति शस्य जत्वे 'भृज्ज्यात्' इति।

क्रष्टा—कृष्धातोर्लुटि तिपि तासि तिपो डात्वे डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपे 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्' इति विभाषया अमागमे यणि ष्टुत्वे च कृते 'क्रष्टा' इति । अमोऽभावपक्षे–'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे ष्टुत्वे 'कर्ष्टा' इति ।

अकार्क्षीत्—कृष्धातोर्लुङि तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'स्पृश-मृश–' इति विभाषया च्लेः सिचि इचि गते अनुदात्तस्य–' इति वैकल्पिके अमि अनुबन्धलोपे 'अ कृ अ ष् स् त्' इति जाते यणि 'षढोः कः सि' इति षस्य कत्वे सस्य षत्वे 'अस्तिसिचः' इति तस्य ईटि अनुबन्धलोपे 'वदव्रज–' इति वृद्धौ 'अक्राक्षीत्' इति । अमोऽभावे–वृद्धौ 'अकार्क्षीत्' इति । सिचोऽभावे–शल इगुपधे'ति च्लेः क्सादेशे षढोः कः सि'

क्ङिति—कित् ङित् आर्धधातुक के परे रमागम को बाधकर पूर्वविप्रतिषेधात् सम्प्रसारण ही होता है ।

अनु—कित् से भिन्न हलादि के परे उपदेश अवस्था में जो अनुदात्त ऋदुपध धातु उसको अमागम होता है ।

स्पृश—स्पृश्, कृष्, तृप्, दृप् धातुओं से पर च्लि को विकल्प से सिच् होता है ।

अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त । मिल संगमे ।। ५ ।। मिलति, मिलते । मिमेल । मेलिता । अमेलीत् । मुच्लृ मोचने ।।६।। शे मुचादीनाम् ७।१।५९। मुच् लुप् विद् लिप् सिच् कृत् खिद् पिशां नुम् स्यात् । मुञ्चति, मुञ्चते । मोक्ता। मुच्यात् । मुक्षीष्ट । अमुचत्, अमुक्त । अमुक्षाताम् । लुप्लृ छेदने ।।७।। लुम्पति, लुम्पते । लोप्ता । अलुपत्, अलुप्त । विद्लृ लाभे ।। ८ ।। विदन्ति । विन्दते । विवेद, विविदे । व्याघ्रभूतिमते सेट् । वेदिता । भाष्यमतेऽनिट् । परिवेत्ता । षिच क्षरणे ।।९।। सिञ्चति, सिञ्चते । लिपिसिचिह्वश्च ३।१।५४।एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् । असिचत् । आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५३। लिपिसिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा तङि । असिचत् । असिक्त । लिप उपदेहे ।।१०।। उपदेहो वृद्धिः । लिम्पति, लिम्पते । लेप्ता । अलिपत्, अलिप्त । इति उभयपदिनः । कृती छेदने ।।११।। कृन्तति । चकर्त । कर्तिता । कर्तिष्यति, कर्त्स्यति । अकर्तीत् । खिद परिघाते ।। १२ ।। खिन्दति । चिखेद । पिश अवयवे ।। १३ ।। पिशति । पेशिता । ओव्रश्चू छेदने ।।१४।। वृश्चति । वव्रश्च । वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ । व्रश्चिता, व्रष्टा । व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत् । व्यच व्याजीकरणे ।।१५।। विचति । विव्याच । विविचतुः । व्यचिता । व्यचिष्यति । विच्यात्! अव्याचीत् ।

इति धातोः षस्य कत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति क्सः सस्य षत्वे कित्त्वात् गुणाऽभावे 'अकृक्षत्' इति ।

सिञ्चति—'षिच क्षरणे' इति धातोर्लटि 'धात्वादेः षः सः' इति षस्य सत्वे लटः स्थाने तिपि 'तुदादिभ्यः शः' इति शप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'शे मुचादीनाम्' इति नुमि उमि गते नस्यानुस्वारे परसवर्णे 'सिञ्चति' इति ।

असिचत्—षिच्धातोर्लुङि षस्य सत्वे लुङस्तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'लिपिसिचिह्वश्च' इति च्लेरङि ङित्वाद् गुणाऽभावे 'असिचत्' इति । आत्मनेपदे—लुङि तादेशे अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्' इति विकल्पेन च्लेरङि ङित्त्वाद् गुणाऽभावे 'असिचत्' इति । अङभावे च्लौ, च्लेः सिचि । 'झलो झलि' इति सिचः सलोपे चस्य कुत्वे 'असिक्त' इति ।

अव्याचीत्—व्यच्धातोर्लुङि तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, च्लेः

शे मु—'श' प्रत्यय के परे मुचादि धातुओं को नुम् का आगम होता है ।

लिपि—लिप्, सिच् तथा ह्वेञ् धातुसे पर च्लि को अङ् होता है ।

आत्म—आत्मनेपद के परे लिप्, सिच् तथा ह्वेञ् धातु से पर च्लि को

'व्यचेः कुटादित्वमनसि' इति तु नेह प्रवर्तते "अनसीति पर्युदासेन तस्य कृन्मात्रविषयत्वात्"। उछि उञ्छे ॥१६॥ उञ्छति 'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः। ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु ॥ १७ ॥ ऋच्छति ऋच्छत्यॄतामिति गुणः। द्विहल्ग्रहणस्याऽनेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्। आनर्च्छ। आनर्च्छतुः। ऋच्छिता। उज्झ उत्सर्गे ॥ १८ ॥ उज्झति। लुभ विमोहने ॥ १९ ॥ लुभति। तीषसहलुभरुषरिषः ७।२।४८। इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्। लोभिता, लोब्धा। लोभिष्यति। तृप तृम्फ तृप्तौ ॥ २०-२१ ॥ तृपति। ततर्प। तर्पिता। अतर्पीत्। तृम्फति। (शे तृम्फादीनां नुम्वाच्यः) आदिशब्दः प्रकारे। तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते

सिचि इाच गत आर्धधातुकस्यड् वलादेः' इति तस्य इटि 'अस्तिसिचः—' इति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'अतो हलादेर्लघोः' इति विकल्पेन वृद्धौ 'अव्याचीत्' इति। वृद्ध्यभावे 'अव्यचीत्' इति।

ननु 'व्यचेः कुटादित्वमनसि' इति व्यचेः कुटादित्ववचनादत्र, व्यचिता, व्यचिष्यति, इत्यादावपि 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्' इति सूत्रेण ङिद्वद्भावे तस्मिन् परे व्यचो यकारस्य 'ग्रहिज्ये'ति सम्प्रसारणं कुतो नेति चेन्न, 'व्यचेः कुटादित्वमनसि' इत्यत्र अनसीति पर्युदासेन असम्भिन्न-असदृशस्य कृत्वेनैव तत्र ग्रहणात्। तथा च असम्भिन्नकृत्प्रत्यये परे एव तत्प्रवृत्तिरिति बोध्यम्।

आनर्च्छ—ऋच्छ्धातोर्लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे धातोर्द्वित्वे अभ्याससत्वे 'उरत्' इत्यभ्यास-ऋकारस्य अदादेशे रपरत्वे 'हलादिः शेषः' इति हलो लोपे 'अ ऋच्छ अ' इति जाते 'अत आदेः' इत्यभ्यासस्य आत्वे 'तस्मान्नुड्द्विहलः' इति द्विहलग्रहणस्य अनेकहलुपलक्षणत्वात् नुटि अनुबन्धलोपे 'आन् ऋच्छ् अ' इति स्थिते 'ऋच्छत्यॄताम्' इति गुणे रपरे 'आनर्च्छ' इति।

विकल्प से अङ् आदेश होता है।

तिष—तिष्, सह्, लुभ, रुष् तथा रिष् धातुओं से पर तादि आर्धधातुक को विकल्प से इडागम होता है।

शे तृम्फा—'श' प्रत्यय के परे तृम्फादि धातुओं को नुम् का आगम होता है।

तृम्फादयः । ततम्फ । तृम्फ्यात् । मृड पृड सुखने ॥२२–२३॥ मृडति । पृडति ! शुन गतौ । २४ ॥ शुनति । इष इच्छायाम् ॥ २५ ॥ इच्छति । एषिता, एष्टा । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् । कुट कौटिल्ये ॥२६॥ गाङ्कुटादिति ङिद्वत् । चुकुटिथ । चुकुट । कुटिता । पुट संश्लेषणे ॥ २७ ॥ पुटति । पुटिता । स्फुट विकसने ॥ २८ ॥ स्फुटति । स्फुर स्फुल संचलने ॥ २९–३० ॥ स्फुरति । स्फुलति । स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ८।३।७६। षत्वं वा स्यात् । निष्फुरति । निष्फुलति । णू स्तवने ॥ ३१ ॥ परिणूतगुणोदयः । नुवति । नुनाव । नुविता । टुमस्जो शुद्धौ ॥ ३२ ॥ मज्जति । ममज्ज । मस्जिनशोरिति नुम् । मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः) संयोगादिलोपः । ममङ्क्थ, ममज्जिथ । मङ्क्ता । मङ्क्ष्यति । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्क्ताम् । अमाङ्क्षुः । रुजो भङ्गे ॥३३ रुजति । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् । भुजो कौटिल्ये ॥३४॥ रुजिवत् । विश प्रवेशने ॥ ३५ ॥ विशति । मृश आमर्शने । ३६ ॥ आमर्शनं स्पर्शः । अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । अम्राक्षीत् । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । ३७ ॥

ममज्जिथ—मस्ज्धातोर्लिटि सिपि सिपो थलि अनुबन्धलोपे धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'म मस्ज् थ' इति जाते सस्य श्चुत्वेन शत्वे 'झलां जश्–' इति शस्य जत्वे 'ऋतो भारद्वाजस्य' इति विकल्पेन इटि अनुबन्धलोपे 'ममज्जिथ' इति । इडभावे–'मस्जिनशोर्झलि' इत्यनेन 'मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम्वाच्यः' इति वार्तिकबलात् अन्त्यात् प्राग् नुमि ''स्कोः–' इति सलोपे 'म मन् ज् थ' इति जाते 'चोः कुः' इति जस्य गत्वे 'खरि चे'ति जस्य कत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे 'ममङ्क्थ' इति ।

अम्राक्षीत् – मृश्धातोर्लुङि तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, 'स्पृशमृश–' इति विभाषया च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्' इति वैकल्पिके अमि मलोपे 'अ मृ अ श् स् त्' इति जाते यणि 'व्रश्चे'ति षत्वे 'षढोः कः सि' इति षस्य कत्वे सिचः सस्य षत्वे 'अस्तिसिचोऽपृक्ते:' इति तस्य ईटि 'वदव्रज'– इति वृद्धौ 'अम्राक्षीत्' इति ।

स्फुर—'नि' तथा 'वि' उपसर्ग से पर स्फुर् और स्फुल् धातुसम्बन्धी, सकार को विकल्प से षत्व होता है ।

मस्जे—मस्ज् धातु के अन्त्य जकार से पूर्व नुम् होता है ।

सीदतीत्यादि । शद्लृ शातने ॥३८॥ शदेश्शितः १।३।६०। शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः। शीयते । शीयताम् । अशीयत । शीयते । शशाद । शत्स्यति । अशदत् । अशत्स्यत् । कृ विक्षेपे ॥३९॥ ऋत इद्धातोः ७।१।१००। ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् । किरति । चकार । चकरतुः । चकरुः । करीता, करिता । कीर्यात् ॥ किरतौ लवने ६।१।१४० उपात्किरतेः सुट् स्यात् छेदने । उपस्किरति । अडभ्यासव्यवायेऽपि ६।१।१३५। सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम्) उपास्किरत् । उपचस्कार । हिंसायां प्रतेश्च ६।१।१४१।

अभोऽभावे—'स्नुक्रमृशे'ति विभाषया च्लेः सिचि कृते 'वदव्रजे'ति वृद्धौ 'व्रश्चे'ति षत्वे कत्वे सिचः सस्य च षत्वे 'अमार्क्षीत्' इति । सिजभावे—'शल इगुपधात्—' इति च्लेः क्सादेशे अनुबन्धलोपे 'व्रश्चे'ति सस्य षत्वे षस्य कत्वे सिचः सस्य षत्वे कित्त्वात् वृद्ध्यभावे 'अमृक्षत्' इति ।

शीयते—शीङ्-धातोर्लटि 'शदेः शितः' इति शिति विवक्षिते एव आत्मनेपदत्वे ते समागते 'तुदादिभ्यः शः' इति शे अनुबन्धलोपे 'पाघ्राध्मा—इति शदः स्थाने शीयादेशे टेरेत्वे 'शीयते' इति ।

किरति—कृधातोर्लटि तिपि शे अनुबन्धलोपे 'ऋत इद्धातोः' इति 'ऋतः इदादेशे रपरत्वे 'किरति' इति ।

उपस्किरति—'उप'उपसर्गात् कृधातोर्लटस्तिपि से अनुबन्धलोपे 'ऋत इद्धातोः' इति ऋकारस्य इत्वे रपरत्वे 'किरतो लवने' इति सुटि उटि गते उपस्किरति इति ।

उपास्किरत्—'उप'–उपसर्गात् कृधातोर्लङस्तिपि शे अटि अनुबन्धलोपे

शदेः—शिद्भावी शद् धातु से तङ् और आन् होता है ।

ऋत—ॠदन्त धातु के अंग (ॠ) को इत्व होता है ।

किर—छेदन अर्थ में 'उप' उपसर्ग से पर कृ धातु को सुट् का आगम होता है ।

अड—अट् तथा अभ्यास के व्यवधान रहने पर भी 'उप' उपसर्ग से पर कृ धातु को ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है ।

हिंसा—हिंसा अर्थ में उप तथा प्रति उपसर्ग से पर भी कृ धातु को सुट् का आगम होता है ।

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम् । उपस्किरति, प्रतिस्किरति । गॄ निगरणे ॥४०॥ अचि विभाषा ८।२।२१। गिरते रेफस्य लत्वं वा स्यादजादौ प्रत्यये । गिरति, गिलति । जगार, जगाल । जगरिथ, जगलिथ । गरिता, गरीता । गलिता, गलीता । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् ॥४१॥ ग्रहिज्या इति सम्प्रसारणम् । पृच्छति । प्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छुः । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । अप्राक्षीत् । मृङ् प्राणत्यागे ॥४२॥ म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १।३।६१। लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र । रिङ् । इयङ् । म्रियते । ममार । मर्ता । मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत । पृङ् व्यायामे ॥४३॥ प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः । व्याप्रियते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृषाताम् । जुषी प्रीतिसेवनयोः । ४४ ॥ जुषते । जुजुषे । ओविजी भयचलनयोः ॥ ४५ ॥ प्रायेणायं उत्पूर्वः । उद्विजते । विज इट् १।२।२। विजेः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत् स्यात् । उद्विजिता । इति तुदादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

'ॠत इद्धातोः' इति ॠकारस्य इत्वे रपरत्वे 'अडभ्यासव्यवायेऽपि' 'सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम्' इति ककारात् पूर्वं सुटि उटि गते सवर्णदीर्घे 'उपास्किरत्' इति ।

म्रियते—मृङ्धातोर्लटि लटः स्थाने 'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च' इति आत्मनेपदे 'तुदादिभ्यः शः' इति अनुबन्धलोपे 'रिङ्शयग्–' इति ॠतो रिङादेशे अनुबन्धलोपे 'अचि श्नुधातु–' इति इयङि टेरेत्वे 'म्रियते' इति ।

उद्विजिता—'उत्' पूर्वात् विज्धातोर्लुटस्तादेशे तासि प्रत्यये 'आर्धधातुकस्य–' इति इटि तिपो डादेशे डित्वात् अभस्यापि टेर्लोपे 'विज इट्' इति ङित्वाद् गुणाऽभावे 'उद्विजिता' इति । इति तुदादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

अचि—अजादि प्रत्यय के परे गॄ धातु सम्बन्धी रेफ को विकल्प से लत्व हो।

म्रिय—लुङ् लङ् तथा शित् प्रत्यय के प्रकृतिभूत मृङ् धातु से आत्मनेपद होता है, अन्यत्र नहीं । विज—विज धातु से पर इडादि प्रत्यय ङिद्वत् होता है।

तुदादिप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ रुधादिप्रकरणम्

रुधिर् आवरणे ॥ १ ॥ **रुधादिभ्यः श्नम्** ३।१।७८। शपोऽपवादः। रुणद्धि। श्नसोरल्लोपः। रुन्धः। रुन्धन्ति। रुणत्सि। रुन्धः। रुन्ध। रुणध्मि। रुन्ध्वः। रुन्ध्मः। रुन्धे। रुन्धाते। रुन्धते। रुन्त्से। रुन्धाथे। रुन्ध्वे। रुन्धे। रुन्ध्वहे। रुन्ध्महे। रुरोध, रुरुधे। रोद्धा। रोत्स्यति, रोत्स्यते। रुणद्धु, रुन्धात्। रुन्धाम्। रुन्धन्तु। रुन्धि। रुणधानि। रुणधाव। रुणधाम। रुन्धाम्। रुन्धाताम्, रुन्धताम्। रुणत्स्व। रुणधै। रुणधावहै। रुणधामहै। अरुणत्, अरुणद्। अरुन्धाम्। अरुन्धन्। अरुणत्। अरुणः। अरुणद्। अरुन्ध। अरुन्धाताम्। अरुन्धत। अरुन्धाः। रुन्ध्यात्, रुन्धीत। रुध्यात्, रुत्सीष्ट। अरुधत्, अरौत्सीत्। अरुद्ध। अरुत्साताम्। अरुत्सत। अरोत्स्यत्, अरोत्स्यत। भिदिर् विदारणे ॥ २ ॥ छिदिर् द्वैधीकरणे ॥ ३ ॥ युजिर् योगे ॥ ४ ॥ रिचिर् विरचने ॥ ५ ॥ रिणक्ति, रिङ्क्ते। रिरेच। रेक्ता। रेक्ष्यति। अरिणक्। अरिचत्। अरैक्षीत्। अरिक्त। विचिर् पृथग्भावे ॥ ६ ॥ विनक्ति, विङ्क्ते। क्षुदिर् सम्पेषणे ॥७॥ क्षुणत्ति, क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत्, अक्षौत्सीत्, अक्षुत। उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः ॥८॥ छृणत्ति छृन्ते। चच्छर्द। सेऽसिचीति वेट्। चच्छृत्से, चच्छृदिषे। छर्दिता। छर्दिष्यति। छर्त्स्यति। अच्छृदत्। अच्छर्दीत्, अच्छर्दिष्ट। अच्छर्दिष्यत्। उतृदिर् हिंसानादरयोः ॥ ९ ॥ तृणत्ति, तृन्ते।

रुन्धः—इरित्संज्ञक 'रुधिर आवरणे' इति धातुः, अस्माल्लटस्तसि 'रुधादिभ्यः श्नम्' इति शपमवाद्य श्नमि शमावितो 'श्नसोरल्लोपः' इति नकाराकारस्य लोपे 'झषस्तथोः–' इति तस्य धत्वे 'झरो झरि सवर्णे' इति धातोर्धस्य लोपे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'रुन्धः' इति।

अरुधत्—रुध्धातोर्लुङि तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'इरितो वा' इति च्लेरङि अनुबन्धलोपे 'अरुधत्' इति। अङभावे–च्लेः सिचि 'अस्ति सिचः' इति तस्य ईटि 'खरि च' इति धस्य तत्वे 'वदव्रज,' इति वृद्धौ 'अरौत्सीत्' इति।

रुधा—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे रुधादि गणपठित धातुओं से श्नम् प्रत्यय होता है।

कृती वेष्टने ॥१०॥ कृणत्ति । तृह हिंसि हिंसायाम् ॥ ११-१२ ॥ तृणह इम् ७।३।९२। तृहः श्नमि कृते इमागमः स्यात् हलादौ पिति । तृणेढि । तृण्ढः । ततर्ह । तर्हिता । अतृणेट् । श्नान्नलोपः ६।४।३। श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् । हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता । तिप्यनस्तेः ८।२।७२। पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः । ससजुषोरुरित्यस्यापवादः । अहिनत्, अहिनद् । अहिंस्ताम् । अहिंसन् । सिपि धातो रुर्वा ८।२।७४। पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद्वा । पक्षे झलां जशोऽन्ते इति जश्त्वम् । अहिनः, अहिनत् अहिनद् । उन्दी

तृणेढि—तृह् धातोर्लटस्तिपि 'रुधादिभ्यः श्नम्' इति श्नमि शमावितौ 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इति श्नमो नस्य णत्वे 'तृणह् ति' इति जाते 'तृणह इम्' इति इमि मस्येत्संज्ञायां लोपे 'आद्गुणः' इति गुणे 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे 'झषस्तथोः–' इति तिपस्तस्य धत्वे धस्य ष्टुत्वेन ढत्वे 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढस्य लोपे 'तृणेढि' इति ।

अतृणेट्—तृह् धातोर्लङस्तिपि 'लुङ्लङ्–' इत्यटि श्नमि अनुबन्धलोपे 'तृणह इम्' इति इमागमे मित्त्वे 'ऋवर्णान्नस्ये'ति नस्य णत्वे गुणे 'अतृणेह त्' इति स्थिते 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे 'हल्ङ्याब्भ्यः–' इति तलोपे 'झलां जशोऽन्ते' इति ढस्य डत्वे 'वाऽवसाने' इति वा चर्त्वे अतृणेट्, अतृणेड इति ।

अहिनत्—हिंसार्थक इदित्संज्ञक 'हिस्' धातोर्लङस्तिपि इदित्त्वान्नुमि 'रुधादिभ्यः श्नम्' इति श्नमि अटि अनुबन्धलोपे 'श्नान्नलोपः' इति नुमो नस्य लोपे 'हल्ङ्याब्भ्यः–' इति तलोपे 'तिप्यनस्तेः' इति सस्य दत्वे 'वाऽवसाने' इति चर्त्वे 'अहिनत्' इति चर्त्वाभावे 'अहिनद्' इति ।

अहिनः—हिंसिधातोर्लङः सिपि इदित्त्वान्नुमि च कृते अनुबन्धलोपे

तृणह —हलादि पित् के परे तृह् धातुसम्बन्धी श्नम् को इमागम होता है ।

श्ना—श्नम् से पर नकार का लोप होता है ।

तिप्य —तिप् प्रत्यय के परे अस् धातु को छोड़कर पदान्त सकार को दकार होता है ।

सिपि —सिप् प्रत्यय के परे पदान्त सकार को विकल्प से रुत्व होता है ।

क्लेदने ॥१३॥ उनत्ति । उन्तः । उन्दन्ति । उन्दाञ्चकार । औनत् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः । औनत् । औनदम् । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु ॥१४॥ अनक्ति । अङ्क्तः । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ, आनङ्क्थ । अञ्जिता, अङ्क्ता । आङ्ग्धि । अनजानि । आनक् । **अञ्जेः सिचि** ७।२।७१। अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् । आञ्जीत् । तञ्चू संकोचने ॥१५॥ तनक्ति । तङ्क्ता, तञ्चिता । ओविजी भयचलनयोः ॥ १६ ॥ विनक्ति । विङ्क्तः । विज इडिति ङित्वम् । विविजिथ । विजिता । अविनक् । अविजीत् । शिष्लृ विशेषणे॥१७॥ शिनष्टि । शिष्टः । शिषन्ति । शिनक्षि । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति ।

मित्वादन्त्यादचः पर जाते श्नमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे कृते 'लुङ्लङ्–' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'अहिन न् स् सि' इति जाते 'श्नान्नलोपः' इति श्नमः परस्य नुमो नस्य लोपे 'इतश्च' इति सिपः इकारलोपे 'हल्ङ्याब्भ्यः–' इति सलोपे 'अहिन स्' इति जाते 'सिपि धातो रुर्वा' इति विभाषया सस्य रुत्वे विसर्गे 'अहिनः' इति । रुत्वाऽभावे 'झलां जशोऽन्ते' इति सस्य दत्वे 'वाऽवसाने' इति दस्य चर्त्वे 'अहिनत्' इति । चर्त्वाऽभावे 'अहिनद्' इति ।

आञ्जीत्—अञ्ज्धातोर्लुङि तत्स्थाने तिपि 'इतश्चेति तिपः इकारलोपे 'आडजादीनाम्' इत्यादि 'आटश्चे'ति वृद्धौ मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि इचि गते 'ऊदितो वा' इति प्राप्तमिटं प्रबाध्य 'अञ्चेः सिचि' इति सिचो नित्यमिटि 'अस्ति सिचः–' इति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'आञ्जीत्' इति ।

शिण्ढि—शिष्धातोर्लोटि लः स्थाने सिपि श्नमि सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हिभावे 'श्नसोरल्लोपः' इति अल्लोपे 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' इति हेर्धिभावे 'झलां जश् झशि' इति षस्य डत्वे धस्य ष्टुत्वे 'झरो झरि सवर्णे' इति डलोपे नस्यानुस्वारे परसवर्णे शिण्ढि' इति ।

बभञ्जिथ—भञ्ज्धातोर्लिटः तिपि सिपः थलि धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'उपदेशेऽत्वतः' इति इडनिषेधे 'ऋतो भारद्वाजस्य' इति वेटि

अञ्जेः—अञ्ज धातु से पर सिच् को नित्य ही इडागम होता है ।

हेर्धि: । शिण्ढि । शिनषाणि । अशिनट् । शिष्यात् । शिष्यात् । अशिषत् । एवं पिष्लृ सञ्चूर्णने ॥१८॥ भञ्जो आमर्दने ॥१९॥ श्नान्नलोपः । भनक्ति । बभ-ञ्जिथ, बभङ्क्थ । भङ्क्ता । भङ्ग्धि । अभाङ्क्षीत् । भुज पालनाभ्यवहारयोः ॥ २० ॥ भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक् भुजोऽनवने १।३।६६। तङानौ स्तः । ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम् ? महीं भुनक्ति । ञिइन्धी दीप्तौ ॥ २१ ॥ इन्धे । इन्धाते । इन्धते । इन्त्से । इन्ध्वे । इन्धाञ्चक्रे, इन्धिता । इन्धाम् । इन्धाताम् । इनधै । ऐन्ध । ऐन्धताम् । ऐन्धाः । विद् विचारणे ॥ २२ ॥ विन्ते । वेत्ता ।

इति रुधादिप्रकरणम् ।

'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे 'बभञ्जिथ' इति । इडभावे जस्य गत्वे कत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे 'बभङ्क्थ' इति ।

भुजोऽनवने—अवनं=रक्षणम्, ततोऽन्यत्र (भोजने अर्थे) भुजेरात्मने-पदमित्यर्थः ।

ओदनं भुङ्क्ते—भोजनेऽर्थे भुजधातोर्लटि 'भुजोऽनवने' इति आत्मनेपदे तप्रत्यये श्नमि अनुबन्धलोपे 'श्नसोरल्लोपः' इत्यल्लोपे 'चोः कुः' इति जस्य कुत्वे चर्त्वे 'टित आत्मनेपदानां टेरे' इति टेरेत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे 'भुङ्क्ते' इति । रक्षणेऽर्थे तु–'महीं' भुनक्ति=रक्षति । इति भवति । अत्रा-त्मनेपदं तु न. 'भुजोऽनवने' इत्यत्र अनवनं=रक्षणं, ततोऽन्यत्र भुजेरात्मने-पदमित्यर्थात् ।

इति रुधादिप्रकरणम् ।

भुजो—रक्षण से भिन्न अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद होता है ।

रुधादिप्रकरण समाप्त ।

अथ तनादिप्रकरणम्

तनु विस्तारे ॥ १ ॥ **तनादिकृञ्भ्य उः** ३।१।७९। तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः । तनोति । तनुतः । ततान, तेने । तनितासि, तनितासे । तनिष्यति, तनिष्यते । तनोतु, तनुताम् । अतनोत्, अतनुत । तनुयात्, तन्वीत । तन्यात्, तनिषीष्ट । अतनीत्, अतानीत् । **तनादिभ्यस्तथासोः** २।४।७९। तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः । अतत, अतनिष्ट । अतथाः, अतनिष्ठाः । अतनिष्यत्, अतनिष्यत । षणु दाने ॥ २ ॥ सनोति । सनुते । **ये विभाषा** ६।४।४३। जनसनखनामात्त्वं वा यादौ क्ङिति । सायात् । सन्यात् । असानीत्, असनीत् । **जनसनखनां सञ्झलोः** ६।४।४२। एषामाकारोऽन्तादेशः

शपोऽपवादः—अनेन शप्-विषय एवाऽस्य प्रवृत्तिरिति सूचितम् ।

तनुते—'तनु विस्तारे' अस्मादात्मनेपदे लटस्ते प्रत्यये शपमवाद्य 'तनादिकृञ्भ्यः' इति उप्रत्यये तस्य सार्वधातुकत्वात् 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वाद्गुणाऽभावे 'टित आत्मनेपदानां टेरे' इति टेरेत्वे 'तनुते' इति ।

अतानीत्—तन्धातोर्लुङो लः स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्-' इत्यडागमे अनुबन्ध' लोपे मध्ये च्लौ 'च्लेः सिच्' इति च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्ति सिचः–' इति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'अतो हलादेर्लघोः' इति विभाषया वृद्धौ 'अतानीत्' इति । वृद्ध्यभावे 'अतनीत्' इति ।

अतत—तन्धातोर्लुङो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे अडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि 'तनादिभ्यस्तथासोः' इति विभाषया सिचो लोपे 'अनुदात्तोपदेश–' इति अनुनासिकनकारस्य लोपे 'अतत' इति । सिचो लोपाऽभावे—इटि सिचः सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'अतनिष्ट' इति ।

सायात्—षण्धातोः आशीर्लिङो लः स्थाने तिपि 'धात्वादेः षः सः' इति धातोः षस्य सत्वे 'णो नः' इति णस्य नत्वे, तिपो यासुटि उटि गते 'स्कोः–'

तनादि—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे तनादि गणपठित तथा कृञ् धातु से 'उ' प्रत्यय होता है । **तना**—त तथा थास् प्रत्यय के परे तनादि धातु से पर सिच् का विकल्प से लोप होता है । **ये वि**—यकारादि कित् ङित् के परे जन्' सन् तथा खन् धातु को विकल्प से आत्त्व होता है । **जन**—हलादि सन् और झलादि कित् ङित् प्रत्यय के परे जन्, सन् तथा खन् धातु को अकारान्त आदेश होता है ।

स्यात् सनि झलादौ विङति । असात, असनिष्ट । असाथा:, असनिष्ठा: । क्षणु हिंसायाम् ॥ ३ ॥ क्षणोति, क्षणुते । ह्यचन्तेति, न वृद्धि: । अक्षणीत्, अक्षत, अक्षणिष्ट । अक्षथा:, अक्षणिष्ठा: । क्षिणु च ॥४॥ उप्रत्यये लघूपधगुण: केषांचिन्मते न । क्षिणोति, क्षेणोति । क्षेणिता । अक्षेणीत्, अक्षित, अक्षेणिष्ट । तृणु अदने ॥५॥ तृणोति, तर्णोति, तृणुते, तर्णुते । डुकृञ् करणे ॥६॥ करोति । अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०। उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति । कुरुत: । न भकुर्छुराम् ८।२।७९। भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया न दीर्घ: । कुर्वन्ति नित्यं करोते: ६।४।१०८। करोते: प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोप: स्यात् म्वो: परयो: । कुर्व: । कुर्म: । कुरुते । चकार, चक्रे । कर्ता । करिष्यति, करिष्यते । करोतु, कुरुताम् । अकरोत्, अकुरुत । ये च ६।४।१०९। कृञ उलोप:

इति सलोपे 'अलोऽन्त्यस्य' इति सहकारेण 'ये विभाषा' इति नस्यात्वे सवर्णदीर्घे 'सायात्' इति । आत्वाभावे-'सन्यात्' इति ।

असात — षण्धातोर्लुङो ल: स्थाने आत्मनेपदे तादेशे अडागमे अनुबन्धलोपे धातो: षस्य सत्वे णस्य नत्वे च कृते च्लौ, च्ले: सिचि 'तनादिभ्यस्तथासो:' इति सिचो वा लोपे 'जनसनखनां सञ्झलो:' इति नस्यात्वे सवर्णदीर्घे 'असात' इति सिज्लोपाभावे-'आर्धधातुकस्येड् वलादे:' इति सिच: सस्य इटि सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'असनिष्ट' इति ।

कुरुत — कृधातोर्लटो ल: स्थाने तसि उप्रत्यये ऋकारस्य गुणे रपरे च कृते 'कुरुतस्' इति जाते 'अत उत्सार्वधातुके' इति अकारस्य उत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'कुरुत:' इति ।

कुर्वन्ति-कृधातोर्लट: झौ झस्य अन्तादेशे शपं प्रबाध्य उप्रत्यये ऋकारस्य गुणे रपरे च कृते 'अत उत्सार्वधातुके' इत्यकारस्य उत्वे उकारस्य यणि 'हलि

अत—कित् तथा ङित् सार्वधातुक के परे 'उ' प्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार को उकार आदेश होता है ।

न भकु—रेफान्त, वान्त भसंज्ञक तथा कुर् छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है । **नित्यं**—मकार, वकारादि प्रत्यय के परे कृ धातु के प्रत्ययसम्बन्धी उकार का लोप नित्य होता है ।

ये च— यादि प्रत्यय के परे कृञ् धातु के उकार का लोप होता है ।

स्यात् यादौ प्रत्यये परे। कुर्यात्, कुर्वीत। क्रियात्, कृषीष्ट। अकार्षीत्, अकृत। अकरिष्यत्, अकरिष्यत। **सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७। समवाये च ६।१।१३८।** सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद् भूषणे संघाते चार्थे। संस्करोति। अलंकरोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति। सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट् "संस्कृतं भक्षाः" इति ज्ञापकात्। **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ६।१।१३९।** उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो गुणाधानम्। विकृतमेव वैकृतं विकारः वाक्याध्याहार आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। उपस्कृता कन्या। उपस्कृता ब्राह्मणाः। एधोदकस्योपस्कुरुते। उपस्कृतं भुङ्क्ते।

च' इति रेफान्तस्योरग्रायाः दीर्घे प्राप्ते 'न भकुर्छुराम्' इति निषेधे 'कुर्वन्ति' इति सिद्धं भवति।

कुर्यात्—कृधातोर्विधिलिङि लिङस्थाने तिपि अनुबन्धलोपे शपं प्रबाध्य उप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात् तस्मिन् परे ऋकारस्य गुणे रपरत्वे 'अत उत् सार्वधातुके' इत्यकारस्य उत्त्वे यासुटि उटावितौ 'लिङः सलोपः–' इति सलोपे 'कुरु यात्' इति जाते 'ये च' इति रोरुकारस्य लोपे 'कुर्यात्' इति।

कुर्वीत—कृधातोर्विधिलिङि लिङस्थाने आत्मनेपदे तादेशे शपं प्रबाध्य उप्रत्यये 'सार्वधातुके'ति गुणे रपरत्वे च कृते 'अत उत्सार्वधातुके' इति ककाराकारस्य उत्त्वे 'लिङः सियुट्' इति सीयुटि अनुबन्धलोपे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'लिङः सलोपः' इति सलोपे यणि 'कुर्वीत' इति।

संस्करोति—सम्पूर्वस्य कृधातोः 'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे' इति सुटि उटावितौ 'संस्करोति' इति। अलङ्करोतीत्यर्थः।

उपस्कृता कन्या—उपेत्युपसर्गपूर्वकात् कृधातोः क्तप्रत्यये अनुबन्धलोपे स्त्रीत्वविवक्षायां टापि ततः 'सम्परिभ्याम्-'इति सुटि उटावितौ 'उपस्कृता कन्या'

सम्परि—भूषण और संघात अर्थ में सम्-परि पूर्वक कृञ् धातु को सुट् का आगम होता है।

उपात्—प्रतियत्न, भूषण तथा संघात अर्थ में 'उप' उपसर्गक कृ धातु से सुट् का आगम होता है।

उपस्कृतं ब्रूते । वनु याचने ॥ ७ ॥ वनुते । ववने । मनु अवबोधने ॥ ८ ॥ मनुते । मेने । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट, अमनिष्ट । अमनिष्यत ।

इति तनादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

इति । अलङ्कृता इत्यर्थः । एवं सर्वत्र सुटि कृते ज्ञेयम्— उपस्कृताः ब्राह्मणाः= सङ्घीभूताः इत्यर्थः । 'एधोदकस्योपस्कुरुते'=गुणमाधत्ते इत्यर्थः । 'उपस्कृतं भुङ्क्ते=विकृतमित्यर्थः । 'उपस्कृतं ब्रूते=वाक्याध्याहारेण ब्रूते इत्यर्थः ।

इति तनादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

अथ क्र्यादिप्रकरणम्

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ।। १ ।। **क्र्यादिभ्य: श्ना** ३।१।८१। शपोऽपवाद: । क्रीणाति । ई हल्यघो: । क्रीणीत: । श्नाभ्यस्तयोरात: । क्रीणन्ति । क्रीणासि । क्रीणीथ: । क्रीणीथ । क्रीणामि । क्रणीव: । क्रीणीम: । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । क्रीणीषे । क्रीणाथे । क्रीणीध्वे । क्रीणे । क्रीणीवहे । क्रीणीमहे । चिक्राय । चिक्रियतु: । चिक्रियु: । चिक्रेथ, चिक्रयिथ । चिक्रिये, क्रेता । क्रेष्यति । क्रेष्यते । क्रीणातु, क्रीणीतात् । क्रीणीताम् । अक्रीणात्, अक्रीणीत । क्रीणीयात् । क्रीणीत । क्रीयात्, क्रेषीष्ट । अक्रैषीत् । अक्रैष्ट । अक्रेष्यत्, अक्रेष्यत, । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ।। २ ।। प्रीणाति, प्रीणीते । श्रीञ् पाके ।।३।। श्रीणाति श्रीणीते । मीञ् हिंसायाम् ।।४।। **हिनुमीना** ८।४।१५। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य ण: स्यात् । प्रमीणाति । प्रमीणीते, मीनातीत्यात्त्वम् । ममौ । मिम्यतु: । ममिथ, ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त । षिञ् बन्धने ।। ५ ।। सिनाति, सिनीते । सिषाय, सिष्ये सेता । स्कुञ् आप्लवने ।।६।। **स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्य: श्नुश्च** ३।१।८२। चात्

क्रीणीत:—क्रीधातोर्लटि ल: स्थाने तसि शपमपवाद्य 'क्र्यादिभ्य: श्ना' इति श्नाप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'ई हल्यघो:' इति श्नागताकारस्य ईकारे नस्य णत्वे 'क्रीणीत:' इति ।

क्रीणन्ति—क्रीधातोर्लटि लटो ल: स्थाने झौ श्नाविकरणे च कृते शलोपे झेरन्तादेशे 'श्नाभ्यस्तयोरात:' इत्याकारलोपे नस्य णत्वे 'क्रीणन्ति' इति ।

प्रमीणीते—प्रोपसर्गात् मीधातोर्लटि ल: स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये श्नाप्रत्यये च कृते अनुबन्धलोपे टेरेत्वे 'हिनुमीना' इति नस्य णत्वे 'ई हल्यघो:' इति ईत्वे 'प्रमीणीते' इति ।

क्र्यादि—कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे क्र्यादि गणपठित धातुओं से 'श्ना' प्रत्यय होता है । **हिनु**—उपसर्ग निमित्त रेफ-षकार से पर हिनु और मीना के नकार को णत्व होता है । **स्तम्भु**—स्तम्भु-आदि धातुओं से 'श्नु' प्रत्यय और चकारात् श्ना प्रत्यय भी होता ।

श्ना । स्कुनोति, स्कुनाति । स्कुनुते, स्कुनीते । चुस्काव, चुस्कुवे । स्कोता । अस्कौषीत्, अस्कोष्ट । स्तम्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः । **हलः श्नः शानज्झौ** ३।१।८३। हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे । स्तभान । **जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च** ३।१।५८। च्लेरङ् वा स्यात् । **स्तन्भेः** ८।३।६७। स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् । व्यष्टभत्-अस्तम्भीत् । युञ् बन्धने ॥ ७ ॥ युनाति, युनीते । योता । क्नूञ् शब्दे ॥८॥

स्कुनीते—स्कुधातोर्लटि लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये 'स्तन्भुस्तुम्भु-' इति चात् श्नाप्रत्यये अनुबन्धलोपे टेरेत्वे 'ई हल्यघोः' इति ईत्वे 'स्कुनीते' इति ।

स्तभान—रोधनार्थक नकारोपधः 'स्तन्भ्' धातुः सौत्रः, तस्माल्लोटि, लः स्थाने सिपि, 'स्तन्भुस्तुन्भु-' इत्यादिसूत्रेण चकारात् शपमपवाद्य श्ना-प्रत्यये अनुबन्धलोपे 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' इति धातोर्नस्य लोपे 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हिभावे 'हलः श्नः शानज्झौ' इति नाशब्दस्य शानजादेशे अनुबन्धलोपे 'अतो हेः' इति हेर्लुकि 'स्तभान' इति ।

जॄस्तम्भु—जॄष् वयोहानौ, स्तन्भुः सौत्रो धातुः । म्रुचु, म्लुचु गत्यर्थौ, ग्रुचु, ग्लुचु स्तेयकरणे, ग्लुञ्चु गतौ, एतेभ्यः च्लेरङ् वा स्यादित्यर्थः ।

व्यष्टभत्—विपूर्वकात् स्तन्भुधातोर्लुङि, लः स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्-' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'जॄस्तन्भु-' इत्यादिसूत्रेण च्लेरङि 'अनिदितां-' इति नलोपे 'स्तन्भेः' इति सिचः सस्य षत्वे ष्टुत्वे यणि 'व्यष्टभत्' इति । अङभावे-'व्यष्टम्भीत्' इति ।

व्यष्टम्भीत्—'जॄस्तन्भु-' इति च्लेः अङोऽभावे-च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे 'वि स्तन्भ् स् त्' इति जाते यणि 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सस्य इटि' 'अस्ति सिचः-' इति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'स्तन्भेः' इति धातोः सस्य षत्वे ष्टुत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे 'व्यष्टम्भीत्' इति । क्वचित्

हलः—हि के परे हल् से पर 'श्ना' के स्थान में शानच् आदेश होता है ।

जॄस्त—जॄ स्तन्भु आदि धातुओं से पर 'च्लि' को विकल्प से अङ् आदेश होता है। **स्तन्भे**—उपसर्ग इण् से पर सौत्रस्थ स्तन्भ धातु के सकार को षत्व होता है ।

क्नूनाति, क्नूनीते । क्नविता । द्रूञ् हिंसायाम् ॥ ९ ॥ द्रुणाति, द्रुणीते । दॄञ् विदारणे ॥ १० ॥ दृणाति, दृणीते । पूञ् पवने ॥ ११ ॥ **प्वादीनां ह्रस्वः** ७।३।८०। पूञ् लूञ् स्तॄञ् कॄञ् वॄञ् धूञ् शॄ पॄ वॄ भॄ मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ नॄ कॄ ऋ गॄ ज्या री ली व्ली प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः स्यात् । पुनाति, पुनीते । पविता । लूञ् छेदने ॥ १२ ॥ लुनाति, लुनीते । स्तॄञ् आच्छादने ॥ १३ ॥ स्तृणाति । शर्पूर्वाः खयः । तस्तार । तस्तरतुः । तस्तरे । स्तरिता, स्तरीता । स्तृणीयात्, स्तृणीत । स्तीर्यात् । **लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु** ७।२।४२। वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा स्यात्तङि । **न लिङि** ७।२।३९। वॄत इटो लिङि न दीर्घः । स्तरिषीष्ट । उश्चेति कित्त्वम् । स्तीर्षीष्ट । सिचि च परस्मैपदेषु अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तारिषुः । अस्तरिष्ट, अस्तरीष्ट अस्तीर्ष्ट कॄञ् हिंसायाम् ॥ १४ ॥ कृणाति, कृणीते । चकार, चक्रे । वॄञ् वरणे ॥१५॥ वृणाति, वृणीते । ववार, वव्रे । वरिता, वरीता । उदोष्ठ्यपूर्वस्येत्युत्वम् । वूर्यात् वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवूर्ष्ट । धूञ् कम्पने ॥ १६ ॥ धुनाति, धुनीते । धोता, धविता । अधावीत्. अधविष्ट ।

अङभावे—'अस्तम्भीत्' इत्युक्तम्, तत्र 'स्तन्भेः' इति षत्वन्तु न, उपसर्गादिणः परस्यैव स्तन्भेः सस्य षत्वविधानात् ।

स्तरिषीष्ट—स्तॄधातोराशीर्लिङि, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये सीयुडागमे उटावितौ 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'सुट् तिथोः' इति सुडागमे उटावितौ 'लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु' इति विभाषया इडागमे गुणे 'वॄतो वा' इति दीर्घे प्राप्ते 'न लिङि' इति निषेधे द्वयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे 'स्तरिषीष्ट' इति । इडभावे -'ॠत इद्धातोः' इतीत्वे 'हलि च' इति दीर्घे 'उश्च' इति कित्त्वाऽभावात् गुणाभावे 'स्तीर्षीष्ट' इति ।

प्वादी—शित् प्रत्यय के परे पूञ् लूञ्, आदि धातुओं को ह्रस्व होता है।

लिङ्—तङ् के परे वृङ्, वृञ् तथा ऋदन्त धातुओं से पर लिङ् और सिच् को इट् का आगम विकल्प से होता है।

न लिङि—लिङ् के परे वृङ् वृञ् तथा ऋदन्त धातु सम्बन्धी इट् को दीर्घ नहीं होता है।

अधोष्ट । ग्रह उपादाने ॥१७॥ गृह्णाति, गृह्णीते । जग्राह, जगृहे । ग्रहोऽलिटि दीर्घः ७।२।३७। एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घः स्यात् न तु लिटि । ग्रहीता । गृह्णातु । हलः श्नः शानज्झौ । गृहाण । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । कुष निष्कर्षे ॥१८॥ कुष्णाति । कोषिता । अश भोजने ॥१९॥ अश्नाति । आश । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु । अशान । मुष स्तेये ॥ २० ॥ मोषिता । मुषाण । ज्ञा अवबोधने ॥२१॥ जज्ञे । वृङ् सम्भक्तौ ॥२२॥ वृणीते । ववृषे । ववृढ्वे । वरिता, वरीता । अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवृत ।

इति क्र्यादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

ग्रहीता—ग्रह् धातोर्लुटि, लः स्थाने तिपि, तासिप्रत्यये, तिपो डादेशे डित्त्वादभस्यापि टेर्लोपे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इतीटि अनुबन्धलोपे 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' इति इटो दीर्घः 'ग्रहीता' इति ।

गृहाण—ग्रह् धातोर्लोटि, तत्स्थाने सिपि अनुबन्धलोपे 'सेर्ह्यपिच्च' इति ह्यादेशे 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति श्नाप्रत्यये अनुबन्धलोपे शित्त्वात् सार्वधातुकत्वे 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्त्वे 'ग्रहिज्ये' ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'हलः श्नः शानज्झौ' इति श्नः शानजादेशे अनुबन्धलोपे नस्य णत्वे 'अतो हेः' इति हेर्लुकि 'गृहाण' इति ।

अग्रहीत्—ग्रह् धातोर्लुङि तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य सिचि इचि गते सस्य इटि 'अस्ति सिचः--' इति तस्य च ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे सति 'वदव्रज —' इति प्राप्तायाः वृद्धेः 'नेटि' इति निषेधे 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'ह्म्यन्तक्षण--' इति निषेधे 'अग्रहीत्' इति ।

इति क्र्यादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

ग्रहो—लिट् लकार को छोड़कर एकाच् ग्रह् धातु से विहित इट् को दीर्घ होता है ।

क्र्यादिप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ चुरादिप्रकरणम्

चुर स्तेये ॥ १ ॥ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म-वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५। एभ्यो णिच् स्यात् । चूर्णान्तेभ्यः प्राति-पदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे । पुगन्तेति गुणः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् । तिप्शबादि-गुणायादेशौ । चोरयति । णिचश्च १।३।७४। णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । णिश्रीति चङ् । णौ चङीति ह्रस्वः । चङीति द्वित्वम् । हलादिः शेषः । दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः । अचूचुरत्, अचूचुरत । कथ वाक्यप्रबन्धे ॥२॥ अल्लोपः । अचः परस्मिन्पूर्व-

---

चुर स्तेये—'स्वार्थिकणिजन्ताः चुरादिधातवः' इति ज्ञेयम् । अत्र रेफादकार उच्चारणार्थः, नत्वित्संज्ञकः—प्रयोजनाभावात् ।

सत्याप—सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोमन्, त्वच्, वर्मन्, वर्ण, चूर्ण, चूरादि एषां द्वन्द्वात् पञ्चमी । तदाह–एभ्यो णिच् स्यादिति । कस्मिन्नर्थे इत्याकाङ्क्षायामाह—चूर्णान्तेभ्यः इति । सत्यादिभ्यो चूर्णान्तेभ्यो द्वादशभ्यः करोत्याचष्टे इत्याद्यर्थे 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलम्' इति वक्ष्यमाणेन सिद्धमेवाऽर्थनिर्देशनमित्यर्थः । ननु तेनैव सिद्धत्वात् इह चूर्णान्ताऽनुक्रमणं व्यर्थमित्यत आह—तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थमिति ।

अचूचूरत्—चुर् धातोः 'सत्यापपाशे'ति स्वार्थे णिचि अनुबन्धलोपे णिचः इकारस्यार्धधातुकत्वात् 'पुगन्ते'ति गुणे 'चोरि' इति जाते तस्मात् 'सनाद्यन्ताः इति धातुत्वाल्लुङि लः स्थाने तिपि 'लुङ् लङ्-इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य 'णिश्रिद्रु–' इति चङि अनुबन्धलोपे 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'णौ चङ्युप-धाया ह्रस्वः' इति उपधाह्रस्वे 'चुरि' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः इति

सत्या—सत्याप, पाश तथा चुरादि गणपठित धातुओं से स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होता है ।

णिचश्च—कर्तृगामी क्रियाफल में णिजन्त धातु से आत्मनेपद होता है ।

अचः—पर को निमित्त मान कर होने वाला जो अच् के स्थान में आदेश

विधौ १।१।५७। परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात्स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन

दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः । कथयति । अग्लोपित्वा-द्दीर्घसन्वद्भावौ न । अचकथत् । गण सङ्ख्याने ॥३॥ गणयति । ई च गणः ७।४।९७। गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्यच्चङ्परे णौ । अजीगणत्, अजगणत् ।

इति चुरादिप्रकरणम् ।

अभ्यासरेफस्य लोपे 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावे 'दीर्घो लघोः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'अचूचुरत्' इति । आत्मनेपदे 'अचूचुरत' इति ।

कथयति—'कथ'धातुरदन्तः, तस्माण्णिचि अनुबन्धलोपे 'आर्धधातुकं शेषः' इति णिचः आर्धधातुकत्वात् 'अतो लोपः' इति यकारोत्तरवर्तिनः अकारस्य लोपे सति 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ प्राप्तायाम् 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' इति अल्लोपस्य स्थानिवत्वात् तदभावे जाते 'सनाद्यन्ताः—' इति ण्यन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि, लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनुबन्धलोपे शित्वात् सार्वधातुकसंज्ञायां गुणे अयादेशे 'कथयति' इति ।

अचकथत्—कथ इत्यकारान्तधातोर्णिचि अल्लोपे तस्य स्थानिवद्भावात् वृद्ध्यभावे धातुत्वाल्लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे अटि च्लेः स्थाने 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः—' इति चङि द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये चुत्वे च कृते थकारोत्तरवर्तिनः अकारस्य णिज्निमित्तेनाग्लोपित्वात् 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावाभावेन 'सन्यतः' इतीत्वस्य, 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घस्य च अप्राप्तौ 'अचकथत्' इति ।

अजीगणत्—अकारान्तात् गणधातोर्णिचि अल्लोपे तस्य स्थानिवत्त्वात् वृद्ध्यभावे लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे 'लुङ्लङ्—' इत्यटि च्लेः स्थाने 'णिश्रिद्रुस्रु-भ्यः—' इति चङि द्वित्वादिकार्ये चुत्वे च कृते अग्लोपित्वात् दीर्घ-सन्वद्भावयोर-भावे 'ई च गणः' इति ईत्वे 'अजीगणत्' इति । चात् अत्पक्षे—'अजगणत्' इति ।

इति चुरादिप्रकरणम् ।

वह स्थानिवत् होता है; परन्तु स्थानिभूत अच् से पूर्व दृष्ट को यदि कार्य कर्तव्य हो तब । ई च—चङ्परक 'णि' के परे गण धातु के अभ्यास को ईत्व तथा चकारात् अत् भी होता है । चुरादिप्रकरण समाप्त ।

अथ ण्यन्तप्रकरणम्

स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४। क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्। तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५। कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्। हेतुमति च ३।१।२६। प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति। ओः पुयण्ज्यपरे ७।४।८०। सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः। अबीभवत्। ष्ठा गतिनिवृत्तौ। अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ ७।३।३६। स्थापयति।

स्वतन्त्रः कर्ता—क्रियाजनने स्वातन्त्र्यम् अर्थात् धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वं कर्तृत्वम्। तेन 'स्थाल्यां पचति' इत्यादौ स्थाल्यादीनां स्वातन्त्र्याभावादपि धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वात् कर्तृत्वं सिद्धम्।

अबीभवत्—भूधातोः 'हेतुमति च' इति णिचि 'णिच्यच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये, इति निषेधात् पूर्वं वृद्ध्यभावे 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे अटि च्लेः स्थाने 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः—' इति चङि अनुबन्धलोपे 'णेरनिट्' इति णिलोपे 'अभू अ त्' इति जाते 'चङि' इति भूशब्दस्य द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इति ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे 'अ बुभू अ त् इति जाते प्रत्ययलक्षणात् वृद्धौ आवादेशे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इत्युपधाह्रस्वे 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावे 'ओः पुयण्ज्यपरे' इति अभ्यासोकारस्य इत्वे 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घे 'अबीभवत्' इति।

स्वतन्त्रः—क्रिया में स्वातन्त्र्येण विवक्षित जो अर्थ वह कर्तृसंज्ञक होता है।

तत्प्र—कर्ता का प्रयोजक हेतु संज्ञक और कर्तृ संज्ञक होता है।

हेतु—प्रयोजक का प्रेरणादि वाच्य रहने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है।

ओः पु—अवर्णपरक पवर्ग, यण् और जकार के परे 'सन्' परक जो अंगावयव अभ्यास, तदवयव जो उकार उसको इत्त्व होता है।

अर्ति—णिच् के परे ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी तथा आदन्त धातुओं को पुगागम होता है।

तिष्ठतेरित् ७।४।५। उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ। अतिष्ठिपत्। घट चेष्टायाम्। **मितां ह्रस्वः** ६।४।९२। घटादीनां ज्ञपादीनां च ह्रस्वः स्यात् णौ। घटयति। ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च। ज्ञपयति, अजिज्ञपत्।

इति ण्यन्तप्रकरणम्।

अतिष्ठिपत्—'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' इत्यत्र 'धात्वादेः षः सः' इति षस्य सत्वे 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति परिभाषया निमित्तस्य षत्वस्य अपाये सति नैमित्तिकस्य ष्टुत्वस्याऽपि अपाये जाते ष्टुत्वनिवृत्तौ 'स्था' इति, तस्माण्णिचि अनुबन्धलोपे 'अर्तिह्रीव्ली-' इति पुकि उकि गते धातुत्वाल्लुङि तत्स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्-' इत्यटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः-' इति च्लेश्चङि 'णिच्यच आदेशो न स्यात् द्वित्वे कर्तव्ये' इति निषेधात् इत्वापेक्षया पूर्वं द्वित्वे अभ्यासत्वे 'शर्पूर्वाः खयः' इति सलोपे अभ्यासह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति चर्त्वे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इत्युपधायाः ह्रस्वे 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'सन्वल्लघुनि-' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इति इत्वे षत्वे ष्टुत्वे 'तिष्ठतेरित्' इति इत्वे 'अतिष्ठिपत्' इति।

अजिज्ञपत्—ज्ञप्धातोर्णिचि उपधावृद्धौ ह्रस्वे 'ज्ञपि' इति तस्माद्धातुत्वाल्लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्-' इत्यटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः-' इति च्लेश्चङि 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'चङि' इति द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'सन्वल्लघुनि-' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इति इत्वे लघुत्वाऽभावात् 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घाभावे 'जिज्ञपत्' इति। इति ण्यन्तप्रकरणम्।

तिष्ठ—'चङ्' परक णि' के परे 'स्था' धातु की उपधा को इत्व होता है।

मितां—णि के परे घटादि तथा ज्ञपादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है।

ण्यन्तप्रकरण समाप्त।

अथ सनन्तप्रकरणम्

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७। इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि । **सन्यङोः ६।१।९।** सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । पठितुमिच्छति पिपठिषति । कर्मणः किम् ? गमनेनेच्छति । समानकर्तृकात् किम् ? शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः । वाग्रहणाद् वाक्यमपि लुङ्सनोर्घस्लृ । **सः स्यार्धधातुके ७।४।४९** सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके । अत्तुमिच्छति जिघत्सति । एकाच इति नेट् । **अज्झनगमां सनि ६।४।१६।**

पिपठिषति—पठितुमिच्छतीति विग्रहे पठ्धातोः 'धातोः कर्मणः–' इति इच्छार्थे सनि अनुबन्धलोपे 'पठ् स' इति जाते 'आर्धधातुकं शेषः' इत्यार्धधातुकत्वे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इतीटि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इति अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'सन्यतः' इतीत्वे सस्य षत्वे 'पिपठिष्' इति तस्माद्धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'पिपठिषति' इति ।

जिघत्सति—अत्तुमिच्छतीति विग्रहे 'अद्धातोः' 'धातोः कर्मणः–' इति सनि 'लुङ्सनोः–' इति अदो घस्लादेशे अनुबन्धलोपे 'घस् स' इति जाते सनः सस्यार्धधातुकत्वात् इटि प्राप्ते 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति निषेधे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति घस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति जत्वे 'सन्यतः' इत्यभ्यासाकारस्य इत्वे 'जिघस् स' इति स्थिते 'सः स्यार्धधातुके' इति अभ्याससकारस्य तकारे 'जिघत्स' इति भूते 'सनाद्यन्ताः–' इति धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'जिघत्सति' इति ।

धातोः—इष् धातु का जो कर्ता वही कर्ता हो जिसका ऐसा जो धातु उस धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

सन्य—सनन्त और यङन्त धातु के प्रथम तथा अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है

सः स्या—सादि आर्धधातुक के परे सकार को तकारादेश होता है ।

अज्झन—झलादि सन् के परे अजन्त धातु; हन् धातु तथा अजादि धातुओं

के अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घः स्याज्झलादौ सनि । **इको झल्** १।२।९ इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात् । ऋत इद्धातोः । कर्तुमिच्छति चिकीर्षति । **सनि ग्रहगुहोश्च** ७।२।१२। ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन् इण् न स्यात् । बुभूषति ।

इति सनन्तप्रकरणम् ।

—:०:—

चिकीर्षति— कर्तुमिच्छतीति विग्रहे कृधातोः 'धातोः कर्मणः—' इति इच्छार्थे सनि अनुबन्धलोपे सनः आर्धधातुकत्वात् 'आर्धधातुकस्य—' इति इट् प्राप्ते 'एकाच उपदेशे—' इति निषेधे 'अज्झनगमां सनि' इति दीर्घे 'इको झल्' इति कित्त्वाद् गुणाभावे 'कृ स' इति जाते 'ऋत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वे 'किर् स' इति स्थिते 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'हलि च' इति दीर्घे षत्वे 'चिकीर्ष्' इति भूते 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'चिकीर्षति' इति ।

बुभूषति—भवितुमिच्छति इति विग्रहे भूधातोः 'धातोः कर्मणः—' इति इच्छार्थे सनि सनः आर्धधातुकत्वात् 'आर्धधातुस्येड्वलादेः' इति इट् प्राप्ते 'सनि ग्रहगुहोश्च' इति निषेधे 'भू स' इति स्थिते 'इको झल्' इति सनः कित्त्वात् 'क्ङिति चे'ति गुणनिषेधे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे 'अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासस्य ऊकारस्य ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासजकारस्य बत्वे सस्य षत्वे 'बुभूष' इति तस्माद्धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'बुभूषति' इति । इति सनन्तप्रकरणम् ।

—:०:—

स्थान में विहित गम् को दीर्घ होता है ।

इको— इगन्त धातु से पर झलादि सन् कित् हो जाता है ।

सनि—ग्रह्, गुह् तथा उगन्त धातुओं से पर सन् को इट् नहीं होता है ।

सनन्तप्रकरण समाप्त ।

—:०:—

अथ यङन्तप्रकरणम्

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२। पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् । **गुणो यङ्लुकोः** ७।४।८२। अभ्यासस्य गुणः स्यात् यङि यङ्लुकि च परतः । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति । बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट । **नित्यं कौटिल्ये गतौ** ३।१।२३। गत्यर्थात्कौटिल्य एव यङ् स्यात् न तु क्रियासमभिहारे । **दीर्घोऽकितः** ७।४।८३। अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् यङ्लुकोः ।

द्योत्ये— वाच्ये तु प्रत्ययवाच्यस्य प्रधानतया सनन्ते इच्छया इव तस्य विशेष्यत्वं स्यात्

बोभूयते—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवतीति विग्रहे भूधातोः 'धातोरेकाचः' इति यङि अनुबन्धलोपे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इति अभ्यासोकारस्य गुणे बोभूय' इति जाते 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लटि यङो ङित्वात् लः स्थाने तङि तस्य सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे तस्य टेरेत्वे 'बोभूयते' इति ।

वाव्रज्यते-- कुटिलं व्रजतीति विग्रहे 'नित्यं कौटिल्ये गतौ' इति यङि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'दीर्घोऽकितः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'वाव्रज्य' इति, तस्मात् 'सनाद्यन्ताः–' इति धातुत्वाल्लटस्ते शपि 'अतो गुणे' इति पररूपे टेरेत्वे 'वाव्रज्यते' इति ।

धातोः—वारंवार अत्यधिकता द्योतित होने पर हलादि एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है ।

गुणोः—यङ् तथा यङ्लुक् के परे अभ्यास को गुण होता है ।

नित्यं—कौटिल्य अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है, किन्तु क्रिया के समभिहार अर्थ में नहीं होता ।

दीर्घो— यङ् तथा यङ्लुक् के विषय में अकित् अभ्यास को दीर्घ होता है ।

कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते। **यस्य हलः** ६।४।४९। यस्येति सङ्घातग्रहणम्। हलः परस्य यशब्दस्य लोपः स्यादार्धधातुके। आदेः परस्य। अतो लोपः। वाव्रजाञ्चक्रे। वाव्रजिता। **रीगृदुपधस्य च** ७।४।९०। ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमः स्याद्यङ्यङ्लुकोः। वरीवृत्यते। वरीवृताञ्चक्रे। वरीवृतिता। **क्षुभ्नादिषु च** ८।४।३९। एषु णत्वं न स्यात्। नरीनृत्यते। जरीगृह्यते। **इति यङन्तप्रकरणम्।**

—:०:—

वाव्रजाञ्चक्रे—व्रज्धातोर्यङि द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये 'दीर्घोऽकितः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'वाव्रज्य' इति, तस्मात् धातुत्वाल्लिटि 'कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः' इत्यामि 'यस्य हलः' इति यलोपे 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'आमः' इति लिटो लुकि 'वाव्रजाम्' इति जाते 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे तप्रत्यये तस्य एशि अनुबन्धलोपे द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'वाव्रजाञ्चक्रे' इति।

वरीवृत्यते—वृत्धातोर्यङि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इत्यभ्यासस्य अत्वे रपत्वे हलादिशेषे 'रीगृदुपधस्य च' इत्यभ्यासस्य रीगागमे 'वरीवृत्य' इति, तस्माद्धातुत्वाल्लटस्ते शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे टेरेत्वे 'वरीवृत्यते' इति। (पुनः पुनः अतिशयेन वा वर्तते इत्यर्थः)।

नरीनृत्यते—नृत्धातोर्यङि द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'रीगृदुपधस्य च' इति रीगागमे 'नरीनृत्य' इति, तस्माद्धातुत्वाल्लटस्ते शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे इति पररूपे टेरत्वे नरीनृत्यते' इति। अत्र 'अट्कुप्वाङ्—' इति णत्वन्तु न, 'क्षुभ्नादिषु च' इति निषेधात् (पुनः पुनः, अतिशयेन वा नृत्यति, इत्यर्थः)।

इति यङन्तप्रकरणम्।

यस्य—आर्धधातुक के परे हल् से पर 'य' का लोप होता है।

रीगृ—यङ् तथा यङ्लुक् के विषय में ऋदुपध धातु के अभ्यास को रीक् का आगम होता है। **क्षुभ्ना**—क्षुभ्नादि गणपठित धातुओं के नकार को णत्व नहीं होता हैं। यङन्तप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ यङ्लुगन्तप्रकरणम्

यङोऽचि च २।४।७४। यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात्तं विनापि क्वचित्। अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वमभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः। शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम्। चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्। **यङो वा ७।३।९४।** यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात्। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न। बोभूतु तेतिक्तेति च्छन्दसि निपातनात्। बोभवीति, बोभोति। बोभूतः।

प्रत्ययलक्षणेन—'न लुमताङ्गस्य' इत्यनेन हि लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं निषिध्यते, द्वित्वादिकं तु यङन्तस्य कार्यम्, न तु यङ्निमित्तकम्, यङि परतस्तद्विध्यभावादिति भावः।

भूसुवोः इति—अयम्भाव- 'दाधर्ति-दर्धर्ति-दर्धर्षि-बोभोतु-तेतिक्ते' इत्यादिसूत्रे भूधातोर्यङ्लुगन्तस्य गुणाऽभावो निपात्यते। 'भूसुवोस्तिङि' इत्येव गुणनिषेधे सिद्धे गुणाऽभावनिपातनं व्यर्थं, तदेव व्यर्थीभूय-यङ्लुकि छन्दस्येवाऽयं 'भूसुवोः' इति गुणनिषेधो, नान्यत्रेति ज्ञापयति। तेन लोकेऽपि यङ्लुगस्तीति विज्ञायते।

बोभवीति—भूधातोर्यङि 'यङोऽचि च' इति द्वित्वापेक्षया आदौ यङो लुकि ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासस्य गुणे 'अभ्यासे चर्च' इत्यभ्यासभकारस्य बत्वे 'बोभू इति, तस्मात् धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि 'चर्करीतञ्च' इति यङ्लुगन्तस्य अदादौ पाठात् 'अदिप्रभृतिभ्यः' शपः इति शपो लुकि 'बो भूति' इति 'जाते यङोऽचि च' इति विभाषया ईडागमे 'बोभोतुतेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात् 'भूसुवो-

---

यङो—अच् प्रत्यय के परे यङ् का लुक् होता है चकारात् अच् प्रत्यय के परे नहीं रहने पर भी लुक् होता है।

यङो—यङन्त से पर हलादि पित् सार्वधातुक को ईडागम विकल्प से होता है।

ादभ्यस्तात् । बोभुवति । बोभवाञ्चकार, बोभवामास । बोभविता । बोभवि-
ष्यति । बोभवीतु । बोभोतु । बोभूताम् । बोभवन्तु । बोभूहि । बोभवानि ।
अबोभवीत्, अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवुः । बोभूयात् । बोभूयाताम् ।
बोभूयुः । बोभूयात् बोभूयास्ताम् । बोभूयासुः । गतिस्थेति सिचो लुक् यङो
वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद्वुक् अबोभूवीत्, अबोभोत् । अबोभूताम् ।
अबोभुवुः । अबोभविष्यत् ।

इति यङ्लुगन्तप्रकरणम् ।

—: ० :—

स्तिङि' इति गुणनिषेधस्य यङ्लुकि भाषायामप्रवृत्त्या 'सार्वधातुके'ति गुणे
अवादेशे 'बोभवीति' इति । इडभावे 'बोभोति' इति ।

अबोभूवीत्–भूधातोर्यङि यङो लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् 'सन्यङोः'
इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासस्याचो ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति
अभ्यासभकारस्य बत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासोकारस्य गुणे 'बोभू' इति ।
तस्मात् धातुत्वात् लुङि, लः स्थाने तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, च्लेः
सिचि इचि गते 'गातिस्थे'ति सिचः सस्य लोपे 'यङो वा' इति ईटि 'बो भू ई
त्' इति स्थिते गुणं बाधित्वा 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः' इति वुगागमे अनुबन्धलोपे
'अबोभुवीत्' इति । ईडभावे—'लुङ्लङ्सम्बन्धयच्परत्वाभावेन वुगभावे 'सार्व
धातुके'ति गुणे 'अबोभोत्' इति ।

इति यङ्लुगन्तप्रकरणम् ।

—: ० :—

बोभवीति—(पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति)=बार-बार या अधिक
से अधिक होता है ।

यङ्लुगन्तप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ नामधातुप्रकरणम्

सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८ इषि कर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रयत्नो वा स्यात् । सुपो धातुप्रातिपदिकयोः १।४।७१। एतयोरवयवस्य सुपो लुक् स्यात् । क्यचि च ७।४।३३। अवर्णस्य ईत्स्यात्। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति । नः क्ये १।४।१५। क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं स्यात् नान्यत् । नलोपः । राजीयति । नान्तमेवेति किम् ? वाच्यति।

सुप आत्मनः क्यच्—स्वस्मै यदिष्यते कर्मकारकं तदनुवृत्तेः सुबन्तादिच्छायां क्यच् वा स्यादिति फलितार्थः ।

पुत्रीयति—आत्मनः पुत्रमिच्छतीत्यर्थे द्वितीयान्तात् पुत्रशब्दात् 'सुप आत्मनः क्यच्' इति क्यचि अनुबन्धलोपे 'सनाद्यन्ता–' इति क्यजन्तस्य धातुत्वात् 'सुपो धातु–' इति अमो लुकि 'पुत्र य' इति जाते 'क्यचि च' इति पुत्रशब्दाऽकारस्य ईत्वे 'पुत्रीय' इति, तस्मात् लटि, लः स्थाने तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'पुत्रीयति' इति ।

राजीयति—आत्मानं राजानमिच्छति इत्यर्थे 'सुप आत्मनः क्यच्' इति द्वितीयान्तात् राजन्शब्दात् क्यचि 'राजन् अम् क्यच्' इति स्थिते 'सनाद्यन्ताः' इति क्यजन्तस्य धातुत्वात् 'सुपो धातुः–' इति अमो लुकि कचयोरित्संज्ञायां लोपे च जाते 'नः क्ये' इति 'राजन्' इति नान्तस्य पदत्वात् 'न लोपः प्रातिपतिकान्तस्य' इति नलोपे 'क्यचि च' इति ईत्वे 'राजीय' इति तस्मात् धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'राजीयति' इति।

सुप—इच्छाजनकव्यापारार्थक जो इष् धातु, उसका जो व्यापार, उससे जन्य जो फल, उसका आश्रय जो, तद्वाचक (कर्मवाचक) शब्दस्वरूप, तदर्थ इच्छाजनक व्यापार कर्तृ सम्बन्धी रहे तो, उस सुबन्त तदादिशब्दस्वरूप से इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

सुपो—धात्ववयव तथा प्रातिपदिकावयव सुप् को लुक् होता है ।

क्यचि—क्यच् प्रत्यय के परे अवर्ण को ईत् होता है ।

नः क्ये—क्यच् और क्यङ् प्रत्यय के परे नान्त शब्द की ही पदसंज्ञा होती है ।

हलि च । गीर्यति । पूर्यति । धातोरित्येव, नेह । दिवमिच्छति दिव्यति । क्यस्य विभाषा ६।४।५०। हल: परयो: क्यच्क्यङोर्लोपो वा स्यादार्धधातुके । सादे: परस्य । अतो लोप: । तस्यस्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । समिधिता, समिध्यिता । काम्यच्च ३।१।९। उक्तविषये काम्यच् स्यात् । पुत्रमात्मन: इच्छति पुत्रकाम्यति पुत्रकाम्यिता । उपमानादाचारे ३।१।१०। उपमानात्कर्मण: सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् स्यात् । पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् । (सर्व-

---

दिव्यति–दिवमिच्छतीत्यर्थे क्यचि सुब्लुकि कचयोर्लोपे धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'दिव्यति' इति। अत्र 'हलि चे'-ति दीर्घस्तु न, धातुत्वाऽभावात् । दिवशब्दोऽव्युत्पन्नं प्रातिपदिकमिति भाव: ।

समिधिता—समिधमात्मानमिच्छतीत्यर्थे क्यचि 'सुपो धातु:-' इति अमो लुकि कचयोर्लोपे 'न: क्ये' इति नियमेन 'समिध' इत्यस्य पदत्वाभावेन धस्य जश्त्वाभावे 'समिध्य' इति । तस्माद्धातुत्वाल्लुटि लुटस्तिपि तिपो डात्वे तासी टलोपे तास: आर्धधातुकत्वात् इटि 'समिध् य इ ता' इति जाते 'क्यस्य विभाषा' इति यलोपे 'अतो लोप:' इत्यल्लोपे 'समिधिता' इति । क्यचो लोपाऽभावे 'समिध्यिता' इति ।

विष्णूयति–विष्णूमिवाचरतीत्यर्थे 'उपमानादाचारे' इति क्यचि अनुबन्ध-लोपे सुपो लुकि 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ:' इति दीर्घे 'विष्णूय' इति, तस्मात् धातुत्वाद् लटस्तिति शपि अनुबन्धलोपे पररूपे 'विष्णूयति' इति ।

क्यस्य – आर्धधातुक के परे हल् से पर क्यच् तथा क्यङ् का विकल्प से लोप होता है ।

काम्य—'सुप आत्मन: क्यच्' सूत्र के विषय में सुबन्ततदादि शब्दस्वरूप से इच्छा अर्थ में काम्यच् प्रत्यय होता है ।

उप—उपमान बाचक सुबन्त तदादि कर्मवाचक से आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है ।

सर्व—आचार अर्थ में सभी प्रातिपादिकों से क्विप् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

प्रातिपदिकेभ्यः क्विबा वक्तव्यः)अतो गुणे । कृष्ण इव आचरति कृष्णति । स्व इवाचरति स्वति । सस्वौ । **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** ६।४।१५ अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ क्ङिति । इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति । पन्था इव पथीनति । **कष्टाय क्रमणे** ३।१।१३ चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते कष्टायते । पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः । **शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे** ३।१।१७।एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति शब्दायते । 'तत्करोति तदाचष्टे इति णिच् । **(प्रातिपादिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च)** प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे

इदामति—इदमिव आचरतीत्यर्थे 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विप् वा वक्तव्यः' इति क्विपि तस्य सर्वापहारे प्रत्ययलक्षणेन क्विबन्तत्वात् धातुसंज्ञायाम् 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' इति उपधायाः दीर्घे 'इदाम्' इति, तस्मात् क्विबन्ताद्धातुसंज्ञायां लटस्तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'इदामति' इति ।

राजानति—राजेव आचरतीत्यर्थे 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः—' इति क्विपि क्विपः सर्वापहारे धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' इति दीर्घे 'राजानति' इति ।

कष्टायते—'कष्टया क्रमते' इत्यर्थे चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दात् 'कष्टाय क्रमणे' इति क्यङि 'सुपो धातुः—' इति ङेर्लुकि अनुबन्धलोपे 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' इति दीर्घे 'कष्टाय' इति तस्माल्लटि ङित्त्वादात्मनेपदे लः स्थाने तप्रत्यये टेरेत्वे शपि 'अतो गुणे' इति पररूपे 'कष्टायते' इति ।

अनु—क्विप् तथा झलादि कित् ङित् प्रत्यय के परे अनुनासिकान्त की उपधा का दीर्घ होता है ।

कष्टा—उत्साह अर्थ में चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्यङ् प्रत्यय होता है ।

शब्द—कर्मीभूत शब्द, वैर, कलह आदि शब्दों से करोति अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ।

प्राति—सभी प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् प्रत्यय विकल्प से होता है तथा इयन् प्रत्य के परे जैसे पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, विन्, मतुप् एवं यणादि

णिच् स्यात् । इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपविन्मतुल्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः इत्वल्लोपः । घटं करोत्याचष्टे वा घटयति ।

इति नामधातुप्रकरणम् ।

—: ० :—

पुंवद्भावः—यथा अतिशयेन पट्वी 'पटिष्ठः, अत्र "भस्याढे" इति पुंवत्त्वम् । रभावः—यथा–अतिशयेन दृढः द्रढिष्ठः, अत्र 'र ऋतो हलादेर्लघोः' इति रभावः । टिलोपः—यथा अतिशायेन साधु साधिष्ठः ।

विनो लुक्—यथा—अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, अत्र 'विन्मतोर्लुक्' इति विनो लोपः ।

मतुपो लुक्—यथा-अतिशयेन गोमान् गविष्ठः, अत्र उक्तसूत्रेण मतुपो लुक् ।

यणादिलोपः—यथा–अतिशयेन स्थूलः स्थविष्ठः अत्र 'स्थूलदूरयुव–' इत्यादिना यणादिलोपः, पूर्वस्य च गुणः ।

प्रस्थस्फाद्यादेशाः—यथा–अतिशयेन प्रियः प्रेष्ठः, इत्यादौ 'प्रियस्थिर–' इत्यादिना प्रादेशः । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, अत्र भत्वान्न कुत्वम् ।

घटयति—घटं करोति, घटमाचष्टे वेत्यर्थे 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इति णिचि इष्टवद्भावाद् भसंज्ञायां 'यस्येति च' इत्यकारलोपे तस्य स्थानिवद्भावादुपधावृद्ध्यभावे 'घटि' इति जाते, तस्माद्धातुसंज्ञायां लटि, लः स्थाने तिपि शपि अनुबन्धलोपे गुणे अयादेशे' घटयति इति ।

इति नामधातुप्रकरणम् ।

—: ० :—

का लोप, प्र, स्थ, स्फ आदि आदेश तथा भसंज्ञा कार्य होते हैं और ये सब इस णिच् के परे भी होते हैं ।

नामधातुप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ कण्ड्वादिप्रकरणम्

कण्ड्वादिभ्यो यक् १।१।२७। एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात्स्वार्थे। कण्डूञ् गात्रविघर्षणे ॥ १ ॥ कण्डूयति। कण्डूयते। इत्यादि।

इति कण्ड्वादिप्रकरणम्।

कण्ड्वादि:—द्विधा हि कड्वादय:—धातव: प्रतिपदिकानि च। तत्र प्रातिपदिकेभ्यो 'यग्' निवृत्त्यर्थं सूत्रे 'धातोरेकाच:' इति सूत्रात् धातोरित्यनुवृत्तम्।

नित्यमिति—'वा' ग्रहणनिवृत्त्यर्थं नित्यमित्युक्तम्, अन्यथा विकल्पपक्षे 'कण्ड्वति' इत्यपि स्यात्।

कण्डूयते—ञकारेत्संज्ञककण्डूधातोर्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' इति यकि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'कण्डूयति' इति सिद्धम्।

इति कण्ड्वादिप्रकरणम्।

—: ० :—

कण्ड्वा—कण्ड्वादि गणपठित धातुओं से स्वार्थ (प्रकृत्यर्थ) में नित्य ही यक् प्रत्यय होता है।

कण्ड्वादिप्रकरण समाप्त।

—: ० :—

अचोष्ट । ग्रह उपादाने ।।१७।। गृह्णाति, गृह्णीते । जग्राह, जगृहे । ग्रहोऽलिटि दीर्घः ७।२।३७। एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घः स्यात् न तु लिटि । ग्रहीता । गृह्णातु । हलः श्नः शानज्झौ । गृहाण । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । कुष निष्कर्षे ।।१८।। कुष्णाति । कोषिता । अश भोजने ।।१९।। अश्नाति । आश । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु । अशान । मुष स्तेये ।। २० ।। मोषिता । मुषाण । ज्ञा अवबोधने ।।२१।। जज्ञे । वृङ् सम्भक्तौ ।।२२।। वृणीते । ववृषे । ववृढ्वे । वरिता, वरीता । अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवृत ।

इति क्र्यादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

ग्रहीता—ग्रह् धातोर्लुटि, लः स्थाने तिपि, तासिप्रत्यये, तिपो डादेशे डित्त्वादभस्यापि टेर्लोपे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इतीटि अनुबन्धलोपे 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' इति इटो दीर्घः 'ग्रहीता' इति ।

गृहाण—ग्रह् धातोर्लोटि, तत्स्थाने सिपि अनुबन्धलोपे 'सेर्ह्यपिच्च' इति ह्यादेशे 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति श्नाप्रत्यये अनुबन्धलोपे शित्त्वात् सार्वधातुकत्वे 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्त्वे 'ग्रहिज्ये' ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'हलः श्नः शानज्झौ' इति श्नः शानजादेशे अनुबन्धलोपे नस्य णत्वे 'अतो हेः' इति हेर्लुकि 'गृहाण' इति ।

अग्रहीत्—ग्रह् धातोर्लुङि तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य सिचि इचि गते सस्य इटि 'अस्ति सिचः--' इति तस्य च ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे सति 'वदव्रज —' इति प्राप्तायाः वृद्धेः 'नेटि' इति निषेधे 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'ह्म्यन्तक्षण--' इति निषेधे 'अग्रहीत्' इति ।

इति क्र्यादिप्रकरणम् ।

—: ० :—

ग्रहो—लिट् लकार को छोड़कर एकाच् ग्रह् धातु से विहित इट् को दीर्घ होता है ।

क्र्यादिप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ चुरादिप्रकरणम्

चुर स्तेये ॥ १ ॥ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५। एभ्यो णिच् स्यात् । चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे । पुगन्तेति गुणः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् । तिप्शबादि-गुणावादेशौ । चोरयति । णिचश्च १।३।७४। णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । णिश्रीति चङ् । णौ चङीति ह्रस्वः । चङीति द्वित्वम् । हलादिः शेषः । दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः । अचूचुरत्, अचूचुरत । कथ वाक्यप्रबन्धे ॥२॥ अल्लोपः । अचः परस्मिन्पूर्व-

---

चुर स्तेये —'स्वार्थिकणिजन्ताः चुरादिधातवः' इति ज्ञेयम् । अत्र रेफादकार उच्चारणार्थः, नत्वित्संज्ञकः—प्रयोजनाभावात् ।

सत्याप—सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोमन्, त्वच्, वर्मन्, वर्ण, चूर्ण, चूरादि एषां द्वन्द्वात् पञ्चमी । तदाह—एभ्यो णिच् स्यादिति । कस्मिन्नर्थे इत्याकाङ्क्षायामाह—चूर्णान्तेभ्यः इति । सत्यादिभ्यो चूर्णान्तेभ्यो द्वादशभ्यः करोत्याचष्टे इत्याद्यर्थे 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलम्' इति वक्ष्यमाणेन सिद्धमेवाऽर्थनिर्देशनमित्यर्थः । ननु तेनैव सिद्धत्वात् इह चूर्णान्ताऽनुक्रमणं व्यर्थमित्यत आह—तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थमिति ।

अचूचुरत् —चुर् धातोः 'सत्यापपाशे'ति स्वार्थे णिचि अनुबन्धलोपे णिचः इकारस्यार्धधातुकत्वात् 'पुगन्ते'ति गुणे 'चोरि' इति जाते तस्मात् 'सनाद्यन्ताः' इति धातुत्वाल्लुङि लः स्थाने तिपि 'लुङ् लङ्-इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य 'णिश्रिद्रु—' इति चङि अनुबन्धलोपे 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इति उपधाह्रस्वे 'चङि' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः इति

सत्या—सत्याप, पाश तथा चुरादि गणपठित धातुओं से स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होता है ।

णिचश्च—कर्तृगामी क्रियाफल में णिजन्त धातु से आत्मनेपद होता है ।

अचः-पर को निमित्त मान कर होने वाला जो अच् के स्थान में आदेश विधौ १।१।५७। परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात्स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन

दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः । कथयति । अग्लोपित्वा-द्दीर्घसन्वद्भावौ न । अचकथत् । गण सङ्ख्याने ॥३॥ गणयति । ई च गणः ७।४।९७। गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्यच्चङ्परे णौ । अजीगणत्, अजगणत् ।

इति चुरादिप्रकरणम् ।

अभ्यासरेफस्य लोपे 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावे 'दीर्घो लघोः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'अचूचुरत्' इति । आत्मनेपदे 'अचूचुरत' इति ।

कथयति—'कथ'धातुरदन्तः, तस्माण्णिचि अनुबन्धलोपे 'आर्धधातुकं शेषः' इति णिचः आर्धधातुकत्वात् 'अतो लोपः' इति यकारोत्तरवर्तिनः अकारस्य लोपे सति 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ प्राप्तायाम् 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' इति अल्लोपस्य स्थानिवत्वात् तदभावे जाते 'सनाद्यन्ताः—' इति ण्यन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि, लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनुबन्धलोपे शित्त्वात् सार्वधातुकसंज्ञायां गुणे अयादेशे 'कथयति' इति ।

अचकथत् —कथ इत्यकारान्तधातोर्णिचि अल्लोपे तस्य स्थानिवद्भावात् वृद्ध्यभावे धातुत्वाल्लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे अटि च्लेः स्थाने 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः—' इति चङि द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये चुत्वे च कृते थकारोत्तरवर्तिनः अका-रस्य णिज्निमित्तेनाग्लोपित्वात् 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावाभावेन 'सन्यतः' इतीत्वस्य, 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घस्य च अप्राप्तौ 'अचकथत्' इति ।

अजीगणत्—अकारान्तात् गणधातोर्णिचि अल्लोपे तस्य स्थानिवत्त्वात् वृद्ध्यभावे लुङस्तिपि अनुबन्धलोपे 'लुङ्लङ्—' इत्यटि च्लेः स्थाने 'णिश्रिद्रुस्रु-भ्यः—' इति चङि द्वित्वादिकार्ये चुत्वे च कृते अग्लोपित्वात् दीर्घ-सन्वद्भावयोर-भावे 'ई च गणः' इति ईत्वे 'अजीगणत्' इति । चात् अत्पक्षे—' अजगणत्' इति ।

इति चुरादिप्रकरणम् ।

वह स्थानिवत् होता है; परन्तु स्थानिभूत अच् से पूर्व दृष्ट को यदि कार्य कर्तव्य हो तब । ई च—चङ्परक 'णि' के परे गण धातु के अभ्यास को ईत्व तथा चकारात् अत् भी होता है । चुरादिप्रकरण समाप्त ।

अथ ण्यन्तप्रकरणम्

स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४। क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्त्ता स्यात्। **तत्प्रयोजको हेतुश्च** १।४।५५। कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्। **हेतुमति च** ३।१।२६। प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति। **ओः पुयण्ज्यपरे** ७।४।८०। सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः। अबीभवत्। ष्ठा गतिनिवृत्तौ। **अर्तिह्रीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ** ७।३।३६। स्थापयति।

स्वतन्त्रः कर्ता—क्रियाजनने स्वातन्त्र्यम् अर्थात् धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वं कर्तृत्वम्। तेन 'स्थाल्यां पचति' इत्यादौ स्थाल्यादीनां स्वातन्त्र्याभावादपि धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वात् कर्तृत्वं सिद्धम्।

अबीभवत्—भूधातोः 'हेतुमति च' इति णिचि 'णिच्यच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये, इति निषेधात् पूर्वं वृद्ध्यभावे 'सनाद्यन्ताः–' इति धातुत्वाल्लुङ्स्तिपि अनुबन्धलोपे अटि च्लेः स्थाने 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः–' इति चङि अनुबन्धलोपे 'णेरनिट्' इति णिलोपे 'अ भू अ त्' इति जाते 'चङि' इति भूशब्दस्य द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इति ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे 'अ बुभू अ त् इति जाते प्रत्ययलक्षणात् वृद्धौ आवादेशे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इत्युपधाह्रस्वे 'सन्वल्लघुनि–' इति सन्वद्भावे 'ओः पुयण्ज्यपरे' इति अभ्यासोकारस्य इत्वे 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घे 'अबीभवत्' इति।

स्वतन्त्रः–क्रिया में स्वातन्त्र्येण विवक्षित जो अर्थ वह कर्तृसंज्ञक होता है।

तत्प्र–कर्ता का प्रयोजक हेतु संज्ञक और कर्तृ संज्ञक होता है।

हेतु–प्रयोजक का प्रेरणादि वाच्य रहने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है।

ओः पु–अवर्णपरक पवर्ग, यण् और जकार के परे 'सन्' परक जो अंगावयव अभ्यास, तदवयव जो उकार उसको इत्त्व होता है।

अर्ति–णिच् के परे ऋ, ह्री, ब्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी तथा आदन्त धातुओं को पुगागम होता है।

तिष्ठतेरित् ७।४।५। उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ। अतिष्ठिपत्। घट चेष्टायाम्। **मितां ह्रस्वः** ६।४।९२। घटादीनां ज्ञपादीनां च ह्रस्वः स्यात् णौ। घटयति। ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च। ज्ञपयति, अजिज्ञपत्।

इति ण्यन्तप्रकरणम्।

अतिष्ठिपत्—'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' इत्यत्र 'धात्वादेः षः सः' इति षस्य सत्वे 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति परिभाषया निमित्तस्य षत्वस्य अपाये सति नैमित्तिकस्य ष्टुत्वस्याऽपि अपाये जाते ष्टुत्वनिवृत्तौ 'स्था' इति, तस्माण्णिचि अनुबन्धलोपे 'अर्तिह्रीव्ली–' इति पुकि उकि गते धातुत्वाल्लुङि तत्स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्–' इत्यटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः–' इति च्लेश्चङि 'णिच्श्च आदेशो न स्यात् द्वित्वे कर्तव्ये' इति निषेधात् इत्वापेक्षया पूर्वं द्वित्वे अभ्यासत्वे 'शर्पूर्वा खयः' इति सलोपे अभ्यासह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति चर्त्वे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इत्युपधायाः ह्रस्वे 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'सन्वल्लघुनि–' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इति इत्वे षत्वे ष्टुत्वे 'तिष्ठतेरित्' इति इत्वे 'अतिष्ठिपत्' इति।

अजिज्ञपत्—ज्ञप्धातोर्णिचि उपधावृद्धौ ह्रस्वे 'ज्ञपि' इति तस्माद्धातुत्वाल्लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्–' इत्यटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः–' इति च्लेश्चङि 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'चङि' इति द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'सन्वल्लघुनि–' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इति इत्वे लघुत्वाऽभावात् 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घाभावे 'जिज्ञपत्' इति। इति ण्यन्तप्रकरणम्।

तिष्ठ—'चङ्' परक णि' के परे 'स्था' धातु की उपधा को इत्व होता है।

मितां—णि के परे घटादि तथा ज्ञपादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है।

ण्यन्तप्रकरण समाप्त।

अथ सनन्तप्रकरणम्

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७। इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि । **सन्यङोः** ६।१।९। सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । पठितुमिच्छति पिपठिषति । कर्मणः किम् ? गमनेनेच्छति । समानकर्तृकात् किम् ? शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः । वाग्रहणाद् वाक्यमपि लुङ्सनोर्घस्लृ । **सः स्यार्धधातुके** ७।४।४९ सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके । अत्तुमिच्छति जिघत्सति । एकाच इति नेट् । **अज्झनगमां सनि** ६।४।१६।

पिपठिषति—पठितुमिच्छतीति विग्रहे पठ्धातोः 'धातोः कर्मणः—' इति इच्छार्थे सनि अनुबन्धलोपे 'पठ् स' इति जाते 'आर्धधातुकं शेषः' इत्यार्धधातुकत्वे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इतीटि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इति अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'सन्यतः' इतीत्वे सस्य षत्वे 'पिपठिष्' इति तस्माद्धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'पिपठिषति' इति ।

जिघत्सति—अत्तुमिच्छतीति विग्रहे 'अद्धातोः' 'धातोः कर्मणः—' इति सनि 'लुङ्सनोः—' इति अदो घस्लादेशे अनुबन्धलोपे 'घस् स' इति जाते सनः सस्यार्धधातुकत्वात् इटि प्राप्ते 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति निषेधे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति घस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति जत्वे 'सन्यतः' इत्यभ्यासाकारस्य इत्वे 'जिघस् स' इति स्थिते 'सः स्यार्धधातुके' इति अभ्याससकारस्य तकारे 'जिघत्स' इति भूते 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'जिघत्सति' इति ।

धातोः—इष् धातु का जो कर्ता वही कर्ता हो जिसका ऐसा जो धातु उस धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

सन्य—सनन्त और यङन्त धातु के प्रथम तथा अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है

सः स्या—सादि आर्धधातुक के परे सकार को तकारादेश होता है ।

अज्झन—झलादि सन् के परे अजन्त धातु; हन् धातु तथा अजादि धातुओं

के अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घः स्याज्झलादौ सनि। **इको झल् १।२।९** इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात्। ऋत इद्धातोः। कर्तुमिच्छति चिकीर्षति। **सनि ग्रहगुहोश्च ७।२।१२।** ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन् इण् न स्यात्। बुभूषति।

इति सनन्तप्रकरणम्।

—:०:—

चिकीर्षति— कर्तुमिच्छतीति विग्रहे कृधातोः 'धातोः कर्मणः—' इति इच्छार्थे सनि अनुबन्धलोपे सनः आर्धधातुकत्वात् 'आर्धधातुकस्य—' इति इट् प्राप्ते 'एकाच उपदेशे—' इति निषेधे 'अज्झनगमां सनि' इति दीर्घे 'इको झल्' इति कित्त्वाद् गुणाभावे 'कृ स' इति जाते 'ऋत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वे 'किर् स' इति स्थिते 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'हलि च' इति दीर्घे षत्वे 'चिकीर्ष्' इति भूते 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'चिकीर्षति' इति।

बुभूषति—भवितुमिच्छति इति विग्रहे भूधातोः 'धातोः कर्मणः—' इति इच्छार्थे सनि सनः आर्धधातुकत्वात 'आर्धधातुस्येड्वलादेः' इति इट् प्राप्ते 'सनि ग्रहगुहोश्च' इति निषेधे 'भू स' इति स्थिते 'इको झल्' इति सनः कित्त्वात् 'क्ङिति चे'ति गुणनिषेधे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे 'अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासस्य ऊकारस्य ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासजकारस्य बत्वे सस्य षत्वे 'बुभूष' इति तस्माद्धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'बुभूषति' इति। इति सनन्तप्रकरणम्।

—:०:—

स्थान में विहित गम् को दीर्घ होता है।

इको— इगन्त धातु से पर झलादि सन् कित् हो जाता है।

सनि—ग्रह्, गुह् तथा उगन्त धातुओं से पर सन् को इट् नहीं होता है।

सनन्तप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ यङन्तप्रकरणम्

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२। पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् । **गुणो यङ्लुकोः** ७।४।८२। अभ्यासस्य गुणः स्यात् यङि यङ्लुकि च परतः । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति । बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट । **नित्यं कौटिल्ये गतौ** ३।१।२३। गत्यर्थात्कौटिल्य एव यङ् स्यात् न तु क्रियासमभिहारे । **दीर्घोऽकितः** ७।४।८३। अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् यङ्लुकोः ।

द्योत्ये— वाच्ये तु प्रत्ययवाच्यस्य प्रधानतया सनन्ते इच्छया इव तस्य विशेष्यत्वं स्यात्

बोभूयते—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवतीति विग्रहे भूधातोः 'धातोरेकाचः' इति यङि अनुबन्धलोपे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इति अभ्यासोकारस्य गुणे बोभूय' इति जाते 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लटि यङो ङित्वात् लः स्थाने तङि तस्य सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे तस्य टेरेत्वे 'बोभूयते' इति ।

वाव्रज्यते— कुटिलं व्रजतीति विग्रहे 'नित्यं कौटिल्ये गतौ' इति यङि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'दीर्घोऽकितः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'वाव्रज्य' इति, तस्मात् 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लटस्ते शपि 'अतो गुणे' इति पररूपे टेरेत्वे 'वाव्रज्यते' इति ।

धातोः—वारंवार अत्यधिकता द्योतित होने पर हलादि एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है ।

गुणोः—यङ् तथा यङ्लुक् के परे अभ्यास को गुण होता है ।

नित्यं—कौटिल्य अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है, किन्तु क्रिया के समभिहार अर्थ में नहीं होता ।

दीर्घो— यङ् तथा यङ्लुक् के विषय में अकित् अभ्यास को दीर्घ होता है ।

कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते । **यस्य हलः** ६।४।४९। यस्येति सङ्घातग्रहणम्। हलः परस्य यशब्दस्य लोपः स्यादार्धधातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः । वाव्रजाञ्चक्रे । वाव्रजिता । **रीगृदुपधस्य च** ७।४।९०। ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमः स्याद्यङ्यङ्लुकोः । वरीवृत्यते । वरीवृताञ्चक्रे । वरीवृतिता । **क्षुभ्नादिषु च** ८।४।३९। एषु णत्वं न स्यात् । नरीनृत्यते । जरीगृह्यते । इति यङन्तप्रकरणम् ।

—: ० :—

वाव्रजाञ्चक्रे—व्रज्धातोर्यङि द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये 'दीर्घोऽकितः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'वाव्रज्य' इति, तस्मात् धातुत्वाल्लिटि 'कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः' इत्यामि 'यस्य हलः' इति यलोपे 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'आमः' इति लिटो लुकि 'वाव्रजाम्' इति जाते 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे तप्रत्यये तस्य एशि अनुबन्धलोपे द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'वाव्रजाञ्चक्रे' इति ।

वरीवृत्यते—वृत्धातोर्यङि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इत्यभ्यासस्य अत्वे रपत्वे हलादिशेषे 'रीगृदुपधस्य च' इत्यभ्यासस्य रीगागमे 'वरीवृत्य' इति, तस्माद्धातुत्वाल्लटस्ते शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे टेरेत्वे 'वरीवृत्यते' इति । (पुनः पुनः अतिशयेन वा वर्तते इत्यर्थः) ।

नरीनृत्यते—नृत्धातोर्यङि द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'रीगृदुपधस्य च' इति रीगागमे 'नरीनृत्य' इति, तस्माद्धातुत्वाल्लटस्ते शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे इति पररूपे टेरत्वे नरीनृत्यते' इति । अत्र 'अट्कुप्वाङ्—' इति णत्वन्तु न, 'क्षुभ्नादिषु च' इति निषेधात् (पुनः पुनः, अतिशयेन वा नृत्यति, इत्यर्थः) ।

इति यङन्तप्रकरणम् ।

यस्य—आर्धधातुक के परे हल् से पर 'य' का लोप होता है ।

रीगृ—यङ् तथा यङ्लुक् के विषय में ऋदुपध धातु के अभ्यास को रीक् का आगम होता है । **क्षुभ्ना**—क्षुभ्नादि गणपठित धातुओं के नकार को णत्व नहीं होता है । यङन्तप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ यङ्लुगन्तप्रकरणम्

यङोऽचि च २।४।७४। यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात्तं विनापि क्वचित्। अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वमभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः। शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम्। चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्। **यङो वा ७।३।९४।** यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात्। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न। बोभूतु तेतिक्तेति च्छन्दसि निपातनात्। बोभवीति, बोभोति। बोभूतः।

प्रत्ययलक्षणेन—'न लुमताङ्गस्य' इत्यनेन हि लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं निषिध्यते, द्वित्वादिकं तु यङन्तस्य कार्यम्, न तु यङ्निमित्तकम्, यङि परतस्तद्विध्यभावादिति भावः।

भूसुवोः इति—अयम्भाव- 'दाधर्ति-दर्धर्ति-दर्धर्षि-बोभोतु-तेतिक्ते' इत्यादिसूत्रे भूधातोर्यङ्लुगन्तस्य गुणाऽभावो निपात्यते। 'भूसुवोस्तिङि' इत्येव गुणनिषेधे सिद्धे गुणाऽभावनिपातनं व्यर्थं, तदेव व्यर्थीभूय-यङ्लुकि छन्दस्येवाऽयं 'भूसुवोः' इति गुणनिषेधो, नान्यत्रेति ज्ञापयति। तेन लोकेऽपि यङ्लुगस्तीति विज्ञायते।

बोभवीति—भूधातोर्यङि 'यङोऽचि च' इति द्वित्वापेक्षया आदौ यङो लुकि ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासस्य गुणे 'अभ्यासे चर्च' इत्यभ्यासभकारस्य बत्वे 'बोभू इति, तस्मात् धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि 'चर्करीतञ्च' इति यङ्लुगन्तस्य अदादौ पाठात् 'अदिप्रभृतिभ्यः' शपः इति शपो लुकि 'बो भूति' इति 'जाते यङोऽचि च' इति विभाषया ईडागमे 'बोभोतुतेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात् 'भूसुवो-

---

यङो—अच् प्रत्यय के परे यङ् का लुक् होता है चकारात् अच् प्रत्यय के परे नहीं रहने पर भी लुक् होता है।

यङो—यङन्त से पर हलादि पित् सार्वधातुक को ईडागम विकल्प से होता है।

अदभ्यस्तात् । बोभुवति । बोभवाञ्चकार, बोभवामास । बोभविता । बोभविष्यति । बोभवीतु । बोभोतु । बोभूताम् । बोभवन्तु । बोभूहि । बोभवानि । अबोभवीत्, अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवुः । बोभूयात् । बोभूयाताम् । बोभूयुः । बोभूयात् बोभूयास्ताम् । बोभूयासुः । गतिस्थेति सिचो लुक् यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद्वुक् अबोभूवीत्, अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभुवुः । अबोभविष्यत् ।

इति यङ्लुगन्तप्रकरणम् ।

—: ० :—

स्तिङि' इति गुणनिषेधस्य यङ्लूकि भाषायामप्रवृत्त्या 'सार्वधातुके'ति गुणे अवादेशे 'बोभवीति' इति । इडभावे 'बोभोति' इति ।

अबोभूवीत्–भूधातोर्यङि यङो लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासस्याचो ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासोकारस्य गुणे 'बोभू' इति । तस्मात् धातुत्वात् लुङि, लः स्थाने तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि इचि गते 'गातिस्थे'ति सिचः सस्य लोपे 'यङो वा' इति ईटि 'बो भू ई त्' इति स्थिते गुणं बाधित्वा 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः' इति वुगागमे अनुबन्धलोपे 'अबोभुवीत्' इति । ईडभावे—'लुङ्लङ्सम्बन्ध्यच्परत्वाभावेन वुगभावे 'सार्वधातुके'ति गुणे 'अबोभोत्' इति ।

इति यङ्लुगन्तप्रकरणम् ।

—: • :—

बोभवीति—(पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति)=बार-बार या अधिक से अधिक होता है ।

यङ्लुगन्तप्रकरण समाप्त ।

—: • :—

अथ नामधातुप्रकरणम्

सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८ इषि कर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रयो वा स्यात् । **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** १।४।७१। एतयोरवयवस्य सुपो लुक् स्यात् । **क्यचि च** ७।४।३३। अवर्णस्य ईत्स्यात् । आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति । **नः क्ये** १।४।१५। क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं स्यात् नान्यत् । नलोपः । राजीयति । नान्तमेवेति किम् ? वाच्यति ।

सुप आत्मनः क्यच्—स्वस्मै यदिष्यते कर्मकारकं तदनुवृत्तेः सुबन्तादिच्छायां क्यच् वा स्यादिति फलितार्थः ।

पुत्रीयति—आत्मनः पुत्रमिच्छतीत्यर्थे द्वितीयान्तात् पुत्रशब्दात् 'सुप आत्मनः क्यच्' इति क्यचि अनुबन्धलोपे 'सनाद्यन्ता–' इति क्यजन्तस्य धातुत्वात् 'सुपो धातु–' इति अमो लुकि 'पुत्र य' इति जाते 'क्यचि च' इति पुत्रशब्दाऽकारस्य ईत्वे 'पुत्रीय' इति, तस्मात् लटि, लः स्थाने तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'पुत्रीयति' इति ।

राजीयति—आत्मानं राजानमिच्छति इत्यर्थे 'सुप आत्मनः क्यच्' इति द्वितीयान्तात् राजन्शब्दात् क्यचि 'राजन् अम् क्यच्' इति स्थिते 'सनाद्यन्ताः' इति क्यजन्तस्य धातुत्वात् 'सुपो धातुः–' इति अमो लुकि कचयोरित्संज्ञायां लोपे च जाते 'नः क्ये' इति 'राजन्' इति नान्तस्य पदत्वात् 'न लोपः प्रातिपतिकान्तस्य' इति नलोपे 'क्यचि च' इति ईत्वे 'राजीय' इति तस्मात् धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'राजीयति' इति ।

सुप—इच्छाजनकव्यापारार्थक जो इष् धातु, उसका जो व्यापार, उससे जन्य जो फल, उसका आश्रय जो, तद्वाचक (कर्मवाचक) शब्दस्वरूप, तदर्थ इच्छाजनक व्यापार कर्तृसम्बन्धी रहे तो, उस सुबन्त तदादिशब्दस्वरूप से इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

सुपो—धात्ववयव तथा प्रातिपदिकावयव सुप् को लुक् होता है ।

क्यचि—क्यच् प्रत्यय के परे अवर्ण को ईत् होता है ।

नः क्ये—क्यच् और क्यङ् प्रत्यय के परे नान्त शब्द की ही पदसंज्ञा होती है ।

हलि च । गीर्यति । पूर्यति । धातोरित्येव, नेह । दिवमिच्छति दिव्यति । क्यस्य विभाषा ६।४।५०। हल: परयो: क्यच्क्यङोर्लोपो वा स्यादार्धधातुके । सादेः परस्य । अतो लोप: । तस्यस्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । समिधिता, समिध्यिता । काम्यच्च ३।१।९। उक्तविषये काम्यच् स्यात् । पुत्रमात्मन: इच्छति पुत्रकाम्यति पुत्रकाम्यिता । उपमानादाचारे ३।१।१०। उपमानात्कर्मण: सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् स्यात् । पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् । (सर्व-

---

दिव्यति—दिवमिच्छतीत्यर्थे क्यचि सुब्लुकि कचयोर्लोपे धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'दिव्यति' इति। अत्र 'हलि चे'-ति दीर्घस्तु न, धातुत्वाऽभावात् । दिवशब्दोऽव्युत्पन्नं प्रातिपदिकमिति भाव: ।

समिधिता—समिधमात्मानमिच्छतीत्यर्थे क्यचि 'सुपो धातु:-' इति अमो लुकि कचयोर्लोपे 'न: क्ये' इति नियमेन 'समिध' इत्यस्य पदत्वाभावेन धस्य जश्त्वाभावे 'समिध्य' इति । तस्माद्धातुत्वाल्लुटि लुटस्तिपि तिपो डात्वे तासौ टलोपे तास: आर्धधातुकत्वात् इटि 'समिध् य इ ता' इति जाते 'क्यस्य विभाषा' इति यलोपे 'अतो लोप:' इत्यल्लोपे 'समिधिता' इति । क्यचो लोपाऽभावे 'समिध्यिता' इति ।

विष्णूयति—विष्णूमिवाचरतीत्यर्थे 'उपमानादाचारे' इति क्यचि अनुबन्ध-लोपे सुपो लुकि 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ:' इति दीर्घे 'विष्णूय' इति, तस्मात् धातुत्वाद् लटस्तिति शपि अनुबन्धलोपे पररूपे 'विष्णूयति' इति ।

क्यस्य – आर्धधातुक के परे हल् से पर क्यच् तथा क्यङ् का विकल्प से लोप होता है ।

काम्य—'सुप आत्मन: क्यच्' सूत्र के विषय में सुबन्ततदादि शब्दस्वरूप से इच्छा अर्थ में काम्यच् प्रत्यय होता है ।

उप—उपमान वाचक सुबन्त तदादि कर्मवाचक से आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है ।

सर्व—आचार अर्थ में सभी प्रातिपादिकों से क्विप् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

प्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः) अतो गुणे । कृष्ण इव आचरति कृष्णति । स्व इवाचरति स्वति । सस्वौ । **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** ६।४।१५ अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ क्ङिति । इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति । पन्था इव पथीनति । **कष्टाय क्रमणे** ३।१।१३ चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते कष्टायते । पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः । **शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे** ३।१।१७ एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति शब्दायते । 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच् । (प्रातिपादिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च) प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे

इदामति—इदमिव आचरतीत्यर्थे 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विप् वा वक्तव्यः' इति क्विपि तस्य सर्वापहारे प्रत्ययलक्षणेन क्विबन्तत्वात् धातुसंज्ञायाम् 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' इति उपधायाः दीर्घे 'इदाम्' इति, तस्मात् क्विबन्ताद्धातुसंज्ञायां लटस्तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'इदामति' इति ।

राजानति—राजेव आचरतीत्यर्थे 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः—' इति क्विपि क्विपः सर्वापहारे धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' इति दीर्घे 'राजानति' इति ।

कष्टायते—'कष्टया क्रमते' इत्यर्थे चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दात् 'कष्टाय क्रमणे' इति क्यङि 'सुपो धातु:—' इति ङेर्लुकि अनुबन्धलोपे 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' इति दीर्घे 'कष्टाय' इति तस्माल्लटि ङित्त्वादात्मनेपदे लः स्थाने तप्रत्यये टेरेत्वे शपि 'अतो गुणे' इति पररूपे 'कष्टायते' इति ।

अनु—क्विप् तथा झलादि कित् ङित् प्रत्यय के परे अनुनासिकान्त की उपधा का दीर्घ होता है ।

कष्टा—उत्साह अर्थ में चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्यङ् प्रत्यय होता है ।

शब्द—कर्मीभूत शब्द, वैर, कलह आदि शब्दों से करोति अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ।

प्राति—सभी प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् प्रत्यय विकल्प से होता है तथा इयन् प्रत्य के परे जैसे पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, विन्, मतुप् एवं यणादि

णिच् स्यात् । इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपविन्मतुल्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः इत्यल्लोपः । घटं करोत्याचष्टे वा घटयति ।

इति नामधातुप्रकरणम् ।

—: ० :—

पुंवद्भावः—यथा अतिशयेन पट्वी 'पटिष्ठः', अत्र "भस्याढे" इति पुंवत्त्वम् । रभावः—यथा–अतिशयेन दृढः द्रढिष्ठः, अत्र 'र ऋतो हलादेर्लघोः' इति रभावः । टिलोपः—यथा अतिशायेन साधु साधिष्ठः ।

विनो लुक्—यथा—अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, अत्र 'विन्मतोर्लुक्' इति विनो लोपः ।

मतुपो लुक्—यथा-अतिशयेन गोमान् गविष्ठः, अत्र उक्तसूत्रेण मतुपो लुक् ।

यणादिलोपः—यथा–अतिशयेन स्थूलः स्थविष्ठः अत्र 'स्थूलदूरयुव–' इत्यादिना यणादिलोपः, पूर्वस्य च गुणः ।

प्रस्थस्फाद्यादेशाः—यथा–अतिशयेन प्रियः प्रेष्ठः, इत्यादौ 'प्रियस्थिर–' इत्यादिना प्रादेशः । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, अत्र भत्वान्न कुत्वम् ।

घटयति—घटं करोति, घटमाचष्टे वेत्यर्थे 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इति णिचि इष्टवद्भावाद् भसंज्ञायां 'यस्येति च' इत्यकारलोपे तस्य स्थानिवद्भावादुपधावृद्ध्यभावे 'घटि' इति जाते, तस्माद्धातुसंज्ञायां लटि, लः स्थाने तिपि शपि अनुबन्धलोपे गुणे अयादेशे' घटयति इति ।

इति नामधातुप्रकरणम् ।

—: ० :—

का लोप, प्र, स्थ, स्फ आदि आदेश तथा भसंज्ञा कार्य होते हैं और ये सब इस णिच् के परे भी होते हैं ।

नामधातुप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ कण्ड्वादिप्रकरणम्

कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७। एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात्स्वार्थे। कण्डूञ् गात्रविघर्षणे ॥ १ ॥ कण्डूयति। कण्डूयते। इत्यादि।

इति कण्ड्वादिप्रकरणम्।

कण्ड्वादिः—द्विधा हि कड्वादयः—धातवः प्रतिपदिकानि च। तत्र प्रातिपदिकेभ्यो 'यग्' निवृत्त्यर्थं सूत्रे 'धातोरेकाचः' इति सूत्रात् धातोरित्यनुवृत्तम्।

नित्यमिति—'वा' ग्रहणनिवृत्त्यर्थं नित्यमित्युक्तम्, अन्यथा विकल्पपक्षे 'कण्ड्वति' इत्यपि स्यात्।

कण्डूयते—अकारेत्संज्ञककण्डूधातोर्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' इति यकि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'कण्डूयति' इति सिद्धम्।

इति कण्ड्वादिप्रकरणम्।

—: ० :—

कण्ड्वा—कण्ड्वादि गणपठित धातुओं से स्वार्थ (प्रकृत्यर्थ) में नित्य ही यक् प्रत्यय होता है।

कण्ड्वादिप्रकरण समाप्त।

—: ० :—

अथ आत्मनेपदप्रकरणम्

कर्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४। क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदं स्यात्। व्यतिलुनीते। अन्यस्य योग्यं लवनं अन्यः करोतीत्यर्थः। **न गतिहिंसार्थेभ्यः** १।३।१५। व्यतिगच्छन्ति। व्यतिघ्नन्ति। **नेर्विशः** १।३।१७। निविशते। **परिव्यवेभ्यः क्रियः** १।३।१८। परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते। **विपराभ्यां जेः** १।३।१९। विजयते। पराजयते। **समवप्रविभ्यः स्थः** १।३।२२। सन्तिष्ठते। अवतिष्ठते। वितिष्ठते। **अपह्नवे ज्ञः** १।३।४४। शतम-

---

कर्मव्यतिहारे—अत्र कर्मशब्दः क्रियापरः, व्यतिहारशब्दो विनिमयपरः।

व्यतिलुनीते—वि, अति इत्युपसर्गद्वयपूर्वकच्छेदनार्थकलूञ् धातोर्लटि लः स्थाने 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' इति आत्मनेपदे तप्रत्यये शपं प्रबाध्य 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति श्नाप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'प्वादीनां ह्रस्वः' इति लूञो ह्रस्वत्वे 'ई हल्यघोः' इति श्नासम्बन्धि-आकारस्य ईत्वे टेरेत्वे 'वि अति' इत्यत्र यणि 'व्यतिलुनीते' इति। (अन्यस्य योग्यम् अर्थात् शूद्रादियोग्यं, सस्यादिलवनं=छेदनम्, अन्यः=ब्राह्मणः, करोतीत्यर्थः)।

निविशते—निपूर्वाद्विशधातोर्लटि लः स्थाने 'नेर्विशः' इति आत्मनेपदे तप्रत्यये शपि अनुबन्धलोपे टेरेत्वे 'निविशते' इति।

अपह्नवे ज्ञः—अपह्नवः=अपलापः, तद्वृत्तेर्ज्ञाधातोरात्मनेपदमित्यर्थः।

शतम्, अपजानीते—अपोपसर्गपूर्वकज्ञाधातोर्लटस्थाने 'अपह्नवे ज्ञः इति आत्मनेपदे तप्रत्यये 'शपं प्रबाध्य 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति श्नाप्रत्यये 'ई हल्यघोः' इति दीर्घे टेरेत्वे 'शतम्-अपजानीते' इति। अपलपतीत्यर्थः।

कर्तरि—क्रिया का विनिमय अर्थ जहाँ द्योत्य हो वहाँ कर्ता में आत्मनेपद होता है। **न गति**—गत्यर्थक तथा हिंसार्थक धातुओं से क्रिया का विनिमय (अदलबदल) अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता है।

नेर्वि—'नि' उपसर्गक विश धातु से आत्मनेपद होता है।

परि—परि, वि तथा अव उपसर्गक क्रीञ् धातु से आत्मनेपद होता है।

विपरा—वि तथा परा उपसर्गपूर्वक जि धातु से आत्मनेपद होता है।

सम—सम्, अव, प्र तथा वि उपसर्गपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद होता है। **अप**—ज्ञा धातु से अपह्नव (अपलाप) अर्थ में आत्मनेपद होता है।

पजानीते । अपलपतीत्यर्थः । **अकर्मकाच्च** १।३।४५। सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तते इत्यर्थः । **उदश्चरः सकर्मकात्** १।३।५३। धर्ममुच्चरते । उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः । **समस्तृतीयायुक्तात्** १।३।५४। रथेन सञ्चरते । **दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे** १।३।५५। सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्ते युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । दास्या संयच्छते कामी । **पूर्ववत्सनः** १।३।६२। सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् । एदिधिषते । **हलन्ताच्च** १।२।१०। इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित् स्यात् । निविविक्षते ।

दास्या संयच्छते कामी—'अशिष्टव्यवहारे—' इति वार्तिकेन 'दास्या' इत्यत्र चतुर्थ्यर्थे तृतीया । ततश्च 'दास्या इति' तृतीयान्तयुक्तात् सम्पूर्वकात् दाण्धातोर्लटि, लः स्थाने 'दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे' इत्यात्मनेपदे तप्रत्यये शपि अनुबन्धलोपे 'पाघ्राध्मे'ति दाणो यच्छादेशे 'अतो गुणे' इति पररूपे टेरत्वे तत्सिद्धिः ।

एदिधिषते—एध्धातोः सनि ईटि अनुबन्धलोपे 'सन्यङोः इति 'धि' शब्दस्य द्वित्वे अभ्यासत्वे जश्त्वे षत्वे 'एदिधिष्' इति, तस्मात् धातुत्वाल्लटि लः स्थाने 'पूर्ववत्सनः' इत्यात्मनेपदे ते शपि अनुबन्धलोपे पररूपे टेरेत्वे तत्सिद्धिः ।

निविविक्षते—निपूर्वाद् विश्धातोः सनि 'हलन्ताच्च' इति सनः कित्त्वाद् गुणाभावे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'व्रश्चे'ति षत्वे षस्य कत्वे सस्य षत्वो 'निविविक्ष्' इति, तस्मात् धातुत्वाल्लटि लः स्थाने 'पूर्ववत्सनः' इत्यात्मनेपदे ते शपि अनुबन्धलोपे पररूपे टेरेत्वे तत्सिद्धिः ।

अकर्म—अकर्मक ज्ञा धातु में भी आत्मनेपद होता है ।

उदः—उत् उपसर्ग से पर सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद होता है ।

समः—तृतीयान्त से युक्त समुपसर्गक 'चर' धातु से आत्मनेपद होता है ।

दाणः—तृतीयान्त से युक्त समुपसर्गक दाण् धातु से आत्मनेपद होता है, वह तृतीया यदि चतुर्थी के अर्थ में रहे ।

पूर्व—सन् प्रत्यय के प्रकृतिभूत जो धातु उसके समान सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है ।

हल—इक् समीप हल् से पर झलादि सन् कित् होता है ।

गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।३२। गन्धनं सूचनम्। उत्कुरुते, सूचयतीत्यर्थः। अवक्षेपणं भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते, भर्त्सयतीत्यर्थः। हरिमुपकुरुते, सेवत इत्यर्थः। परदारान् प्रकुरुते, तेषु सहसा प्रवर्तते। एधोदकस्योपस्कुरुते, गुणमाधत्ते। कथाः प्रकुरुते, प्रकथयतीत्यर्थः। शतं प्रकुरुते, धर्मार्थं विनियुङ्क्ते। एषु किम्? कटं करोति। **भुजोऽनवने।** ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्? महीं भुनक्ति।

इत्यात्मनेपदप्रकरणम्।

—:०:—

एधोदकस्योपस्कुरुते—एधश्च उदकं चेति एधोदकं, तस्य एधोदकस्य उपस्कुरुते, गुणमाधत्ते, इत्यर्थः। अत्र 'गन्धनावक्षेपण' इति प्रतियत्नेऽर्थे आत्मनेपदं भवतीति।

भुजोऽनवने—अवनं=रक्षणम्, ततोऽन्यत्र भुजेरात्मनेपदमित्यर्थः। महीं भुनक्ति = पृथिवीं रक्षतीत्यर्थः।

इत्यात्मनेपदप्रकरणम्।

—:०:—

गन्ध—गन्धन, अवक्षेपण आदि अर्थों में कृञ् धातु से आत्मनेपद होता है।

भुजो—अनवन (रक्षण से भिन्न) अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद होता है।

आत्मनेपदप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ परस्मैपदप्रकरणम्

अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९। कर्तृगेऽपि फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात्। अनुकरोति। पराकरोति। **अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०।** क्षिप प्रेरणे स्वरितेत्। अभिक्षिपति। **प्राद्वहः १।३।८१।** प्रवहति। **परेर्मृषः १।३।८२।** परमृषति। **व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३।** रमु क्रीडायाम्। विरमति। **उपाच्च १।३।८४।** यज्ञदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्। **इति परस्मैपदप्रकरणम्।**

—:०:—

गन्धनादौ—गन्धन (सूचन)–अवक्षेपण (भर्त्सन)–सेवन–साहसिक्य-प्रतियत्न (गुणाधान)–प्रकथन–उपयोगेषु इत्यर्थः।

अनुकरोति, पराकरोति—अत्र 'गन्धने'ति आत्मनेपदे प्राप्ते 'अनुपराभ्यां कृञः' इति परस्मैपदम्।

परिमृषति—'मृष तितीक्षायां' स्वरितेत्। सर्वत्र कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायां 'स्वरितञितः–' इत्यात्मनेपदप्राप्तिः।

विरमति—अत्र 'अनुदात्तङित–' इत्यात्मनेपदप्राप्तिः।

उपाच्च—रम इत्येव। उपपूर्वाद् रमतेः परस्मैपदं भवतीत्यर्थः। ननु विरामार्थकत्वात् कथं सकर्मकतेत्यत आह मूले उपरमयतीत्यर्थः। ननु णिचा अभावात् कथमयमर्थो लभ्यते इत्यत आह—अन्तर्भावितेति। धातूनामनेकार्थत्वादिति भावः। इति परस्मैपदप्रकरणम्।

—:०:—

अनु—क्रियाजन्य फल कर्ता को प्राप्त होने पर तथा गन्धनादि अर्थों में भी अनु तथा परा पूर्वक कृञ् धातु से परस्मैपद होता है।

अभि—अभि, प्रति तथा अति उपसर्गक क्षिप् धातु से परस्मैपद होता है।

प्राद्—'प्र' उपसर्गक वह धातु से परस्मैपद होता है।

परे—परि उपसर्गक मृष् धातु से परस्मैपद होता है।

व्याङ्—वि, आङ् और परि उपसर्गक रम् धातु से परस्मैपद होता है।

उपा—उप उपसर्गक रम् धातु से परस्मैपद होता है।

परस्मैपदप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ भावकर्मप्रकरणम्

भावकर्मणोः १।३।१३। लस्यात्मनेपदम्। **सार्वधातुके यक्** ३।१।६७। भावकर्मवाचिनि धातोर्यक् स्यात् सार्वधातुके। भावः क्रिया, सा च भावार्थक-लकारेणानूद्यते। युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः। तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, किन्त्वेकवचन-मेवोत्सर्गतः। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे। **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भाव-**

भावकर्मणोः—भावो, भावना, क्रियेति पर्यायाः। कर्मशब्दः कर्मकारके वर्तते। भावे कर्मणि च यो लकारः, तस्य आत्मनेपदमित्यर्थः।

भावार्थकेति—द्वौ, त्रयः, इत्यादौ द्विवचन-बहुवचनवदिति भावः।

युष्मदस्मद्भ्याम्—युष्मदि अस्मदि च तिङ्समानाधिकरणे उपपदे मध्य-मोत्तमपुरुषौ विहितौ। युष्मदस्मदोः तिङ्समानधिकरण-तिङ्वाच्य-कारक-तिङ्वाच्यः न तु युष्मदस्मदर्थौ, अतो न मध्यमोत्तमावित्यर्थः। कर्मलकारे तु—त्वं वन्द्यसे, अहं वन्द्ये, इत्यादौ लकारस्य युष्मदस्मदोश्च सामानाधिकरण्य-सम्भवात् पुरुषत्रयमपि यथायथमुदाहरिष्यते।

तिङ्वाच्यक्रियायाः—सत्त्वं=द्रव्यम्, लिङ्गसङ्ख्यान्वययोग्यम्। तिङ्वाच्या या भावना क्रिया सा असत्वरूपा लिंगसंख्यान्वयाऽयोग्या, शब्दशक्ति-स्वभावात्, ततश्च तस्यां तिङ्वाच्यभावनायां द्वित्वबहुत्वयोरप्रतीतेः-'युवाभ्याम्, युष्वाभिर्वा आस्यते' इत्यादौ न द्विवचनं चेत्यर्थः।

किन्त्वेकवचनमेव—तिङ्वाच्यभावलकारस्येति शेषः।

त्वया मया अन्यैश्च—त्वत्कर्तृकं मत्कर्तृकम् अन्यकर्तृकं भवनमित्यर्थः।

भाव—भाव और कर्मवाच्य में लकार के स्थान में आत्मनेपद होता है।

सार्व—भाव और कर्मवाची सार्वधातुक के परे धातु से यक् प्रत्यय होता है

स्यसिच्—भाव तथा कर्म के अर्थ गम्यमान रहने पर उपदेश अवस्था में

कर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२। उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च । चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट् । चिण्वद्भावाद् वृद्धिः । भाविता, भविता । भाविष्यते, भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भाविषीष्ट, भविषीष्ट । **चिण् भावकर्मणोः** ३।१।६६। च्लेश्चिण् स्याद् भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे । अभावि । अभविष्यत्, अभविष्यत । अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम् । णिलोपः । भाव्यते । भावयाञ्चक्रे । भावयाम्बभूवे । भावयामासे । चिण्वदिट् । भाविता । आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः । भावयिता । भावयिषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम् अभावयिषाताम् । बुभूष्यते । बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते, बोभूय्यते, बोभूयते । अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । स्तूयते विष्णुः । स्ताविता, स्तोता । स्ताविष्यते,

---

भाविता—भूधातोर्भावे लुटि, लः स्थाने 'भावकर्मणोः' इति आत्मनेपदे ते 'स्यतासी लृलुटोः' इति तासि तस्य डादेशे अनुबन्धलोपे डित्वसामर्थ्याद्भस्याऽपि टेर्लोपे 'स्यसिच्सीयुट्—'इति तासः चिण्वद्भावे इटि च कृते चिण्वद्भावात् 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ आवादेशे 'भाविता' इति । चिण्वद्भावाभावे लुटि, लुटस्ते तासि तस्य डात्वे तासष्टेर्लोपे इटि 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे 'भविता' इति ।

अभावि—भूधातोर्भावे लुङि 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदे लुङो लः स्थाने तप्रत्यये 'लुङ्लङ्—' इत्यटि मध्ये च्लौ 'चिण् भावकर्मणोः' इति च्लेश्चिणि अनुबन्धलोपे वृद्धौ 'चिणो लुक्' इति तलोपे 'अभावि' इति ।

जो अच्, तदन्त जो धातु, उसको तथा हन्, ग्रह् और दृश् धातुओं को चिण् के परे जो-जो अंगकार्य होते हैं वे कार्य—स्य, सिच्, सीयुट् और तास् के परे विकल्प से होते हैं एवं स्य, सिच्, सीयुट् और तास् को चिण्वद्भाव तथा इट् का आगम भी होता है।

चिण्—भाव और कर्मवाची 'त' शब्द के परे च्लि को चिण् होता है।

स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम् । ऋ गतौ । गुणोऽर्तीति गुणः । अर्यते । स्मृ स्मरणे । स्मर्यते । सस्मरे । उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट् । आरिता, अर्ता । स्मारिता, स्मर्ता । अनिदितामिति नलोपः । स्रस्यते । इदितस्तु नन्द्यते । सम्प्रसारणम् । इज्यते । तनोतेर्यकि ६।४।४४। आकारान्तादेशो वा स्यात् । तायते, तन्यते । **तपोऽनुतापे च** ३।१।६५। तपश्च्लेश्चिण् न स्यात्कर्मकर्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन । घुमास्थेतीत्त्वम् । दीयते । धीयते । ददे । **आतो युक् चिण्कृतोः** ७।३।३३। आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । दायिता, दाता । दायिषीष्ट । अदायि । अदायिषाताम् । भज्यते । **भञ्जेश्च चिणि** ६।४।३३। नलोपो वा स्यात् । अभाजि, अभञ्जि । लभ्यते । **विभाषा चिण्णमुलोः** ७।१।६९। लभेर्नुमागमो वा स्यात् । अलम्भि, अलाभि ।

इति भावकर्मप्रकरणम् ।

—:०:—

अस्तावि—'ष्टुञ् स्तुतौ' तस्मात् कर्मणि लुङि 'धात्वादेः षः सः' इति षस्य सत्वे 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति न्यायेन ष्टुत्वे गते 'भावकर्मणोः' इति लुङस्ते अटि मध्ये च्लौ 'चिण् भावकर्मणोः' इति च्लेश्चिणि अनुबन्धलोपे वृद्धौ आवादेशे 'चिणो लुक्' इति तशब्दस्य लोपे 'अस्तावि' इति ।

अलम्भि—अभ्धातोः कर्मणि लुङि' 'भावकर्मणोः' इति लुङस्ते अटि मध्ये च्लौ, 'चिण् भावकर्मणोः' इति च्लेश्चिणि अनुबन्धलोपे 'विभाषा चिण्णमुलोः' इति नुमि अनुबन्धलोपे नस्य अनुस्वारे परसवर्णे 'अलम्भि' इति । नुमागमाभावे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'अलाभि' इति । इति भावकर्मप्रकरणम् ।

—:०:—

तनो—यक् प्रत्यय के पर तन् धातु को अकारान्त आदेश होता है ।

तपो—कर्म-कर्ता और अनुताप अर्थ में तन् धातु से पर च्लि को चिण् नहीं होता है । **आतो**—चिण् तथा ञित्, णित्, कित् के परे आदन्त धातु को युक् होता । **भञ्जेश्च**—चिण् के परे भञ्ज धातु के नकार का विकल्प से लोप होता है । **विभा**—चिण् तथा णमुल् के परे लभ् धातु को विकल्प से नुमागम होता है । भावकर्मप्रकरण समाप्त ।

—:०:—

अथ कर्मकर्तृप्रकरणम्

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च लकारः। **कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः** ३।१।८७ कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत्स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः। पच्यते फलम्। भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। भावे। भिद्यते काष्ठेन।

इति कर्मकर्तृप्रकरणम्।

—:०:—

यगाद्यात्मनेपद—'सार्वधातुके यक्' इति यक् 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदम्, 'चिण्भावकर्मणोः' इति चिण्, 'स्यसिच्-सियुट्-तासिषु' इति चिण्वत्त्वम्, तत्सन्नियोगशिष्ट इट् च स्युरित्यर्थः। कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां कर्तरि विहितानि शास्त्राण्येव न स्युरिति यावत्। **पच्यते फलम्**—'कालः फलं पचति' इत्यत्र यदा सौकर्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते, तदा कर्मणः एव कर्तृत्वात् पच्धातुरकर्मकः, तस्मात् 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' इति कर्तृरूपेऽर्थे वर्तमानक्रियायां लटि 'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः' इति कर्मवद्भावात् आत्मनेपदे ते 'सार्वधातुके यक्' इति यकि' अनुबन्धलोपे टेरेत्वे 'पच्यते' इति। कर्तरि लकारे कर्तरुक्तत्वात् कर्तृवाचकफलशब्दात् प्रथमा।

भिद्यते काष्ठम्—'कर्मकारः काष्ठं भिनत्ति' इत्यत्र कर्मकारस्य कर्तृत्वेन अविवक्षायां काष्ठरूपस्य कर्मणः एव कर्तृत्वेन विवक्षायां 'भिद्' धातोः अकर्मकत्वम्। तस्मात् कर्तरि लटि 'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः' इति कर्मवद्भावात् लः स्थाने ते यकि टेरेत्वे 'भिद्यते' इति। अत्र कर्तुः उक्तत्वात् प्रथमा। भावे तु काष्ठस्य कर्तुः अनुक्तत्वात् 'भिद्यते काष्ठेन' इति। इति कर्मकर्तृप्रकरणम्।

यदा—जिस समय सुगमता का अतिदेश बोधन करने के लिए कर्ता में रहने वाले व्यापार की विवक्षा न होती हो उस समय अपने व्यापार की स्वतन्त्रता के कारण अन्य कारक भी कर्तृसंज्ञा को प्राप्त होते है।

कर्मवत्—जिस कर्ता की क्रिया कर्मस्थ क्रिया से समान हो, वह कर्ता कर्मवत् होता है। कर्मकर्तृ प्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ लकारार्थप्रकरणम्

अभिज्ञावचने लृट् ३।१।११२। स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् स्यात् । लङोऽपवादः । वस निवासे । स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः । एवं बुध्यसे चेतयसे इत्यादि प्रयोगेऽपि । न यदि ३।२।११३। यद्योगे उक्तं न स्यात् । अभिजानासि कृष्ण ! यद्वने अभुञ्ज्महि । लट् स्मे ३।२।११८। लिटोऽपवादः । यजति स्म युधिष्ठिरः । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा ३।३।१३१। वर्तमाने

स्मृतिबोधिन्युपपदे—स्मृतिः=अभिज्ञा, सा उच्यते=बोध्यते, अनेनेति विग्रहः । स्मृतिबोधकपदे समीपे प्रयुज्यमाने सतीत्यर्थः ।

स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः—हे कृष्ण ! गोकुले अवसाम, इति यत् तत् स्मरसि इत्यर्थः । अत्र वाक्यार्थः कर्म । स्मरसीत्युपपदात् वस्-धातोः भूताऽनद्यतनेऽर्थे लङि प्राप्ते तं बाधित्वा 'अभिज्ञावचने लृट्' इति लृटि लृटो लः स्थाने मसि स्यप्रत्यये 'सः स्यार्धधातुके' इति सस्य तकारे 'अतो दीर्घो यञि' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'वत्स्यामः' इति ।

यजतिस्म युधिष्ठिरः—यज्धातोः 'परोक्षे लिट्' इति लिटि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'लट् स्मे' इति स्मयोगे लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे तत्सिद्धिः । अत्र 'स्म'शब्दो भूतकालद्योतकोऽव्ययः ।

अभि—उपपद स्मृतिबोधक होने पर भूत अनद्यतन कालवृत्ति क्रिया-वाचक धातु से (लङ् को बाधकर) लृङ्लकार होता है ।

न यदि—यत्पदार्थ के योग में स्मृतिबोधक उपपद रहने पर भूतानद्यतन कालवृत्ति क्रियावाचक धातु से लृट् नहीं होता है ।

लट् स्मे—'स्म' शब्द उपपद में रहने पर 'लिट्' के अर्थ में 'लट्' होता है ।

वर्तमान—वर्तमान काल में जो प्रत्यय कहे गये हैं वे वर्तमान के समीप भूत तथा वर्तमान के समीप भविष्यत् काल में भी विकल्प से होते हैं ।

ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः। कदाऽऽगतोऽसि। अयमागच्छामि, अयमागमं वा। कदा गमिष्यसि। एष गच्छामि, गमिष्यामि वा। **हेतुहेतुमतोर्लिङ्** ३।३।१५६। वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत् सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति। भविष्यत्येवेष्यते। नेह। हन्तीति पलायते। विधिनिमन्त्रणेति लिङ्। विधिः प्रेरणं भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। यजेत। निमन्त्रणं नियोगकरणमावश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं कामचाराऽनुज्ञा। इहासीत। अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद् भवान्। सम्प्रश्नः सम्प्रधारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। प्रार्थनं याच्ञा। भो! भोजनं लभेय। एवं लोट्।

इति लकारार्थप्रकरणम्।

—:o:—

विधिः—(उदाहरणान्तरम्)-यथा–भवान् वस्त्रं क्षालयतु क्षालयेत् वा।

निमन्त्रणम्—यथा—इह मातामहश्राद्धे दौहित्रादयो भवन्तः भुञ्जताम्, भुञ्जीरन् वा।

आमन्त्रणम्—यथा—मत्पुत्रोत्सवे भवान् आगच्छतु आगच्छेद् वा।

अधीष्टः—यथा–ममात्मजं भवान् अध्यापयतु अध्यापयेद् वा।

सम्प्रश्नः—यथा–किं भोः व्याकरणं भवान् अधीताम् अधीयीत वा।

प्रार्थनम्—यथा–भवान् मे फलं ददातु दद्याद् वा।

इति लकारार्थप्रकरणम्।

—:o:—

हेतु—हेतु तथा हेतुमद्भाव रूप अर्थ प्रतीयमान रहने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से लिङ् विकल्प से होता है।

लकारार्थप्रकरण समाप्त।

—:o:—

अथ कृदन्ते कृत्यप्रकरणम्

धातोः ३।१।९१ आतृतीयाध्यायसमाप्त्यन्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः कृदतिङिति कृत्संज्ञा। वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४। अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना। **कृत्याः** ३।१।९५। ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः। **कर्तरि कृत्** ३।४६७। कृत्यप्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते। तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०। एते भावकर्मणोरेव स्युः। **तव्यत्तव्यानीयरः** ३।१।९६ धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम्, एधनीयं वा त्वया। भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वम्।

एधितव्यम्—एध्धातोः 'कर्तरि कृत्' इति कर्तर्यर्थे कृत्प्रत्ययप्राप्ते तं बाधित्वा 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' इति अकर्मकाद्धातोर्भावे सकर्मकाच्च धातोः कर्मणि कृत्यक्तखलर्थानां प्राप्तौ सत्यां 'तव्यत्तव्यानीयरः' इत्यकर्मकाद् (एध-धातोः) भावेः तव्यति तस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'एधितव्य' इति स्थिते आर्धधातुकं शेषः' इति तव्यतः आर्धधातुकत्वे 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इतीटि अनुबन्धलोपे 'एधितव्य' इति जाते 'कृत्तद्धिते'ति प्रातिपदिकत्वात् सौ 'भावे औत्सर्गिके क्लीबत्वम्' इति क्लीबत्वात्सोरमि 'अमि पूर्वः'इति पूर्वरूपे तत्सिद्धिः।

धातोः—तृतीय अध्याय के समाप्तिपर्यन्त 'धातोः' का अधिकार है। (यह वक्ष्यमाण सूत्र में सम्बद्ध हो कर वक्ष्यमाण प्रत्यय धातु से पर में होंगे। धातु से विहित तिङ्-शित् से भिन्न की आर्धधातुकसंज्ञा होती है। सन्निहित धातु के अधिकार में विहित तिङ् भिन्न प्रत्ययों की 'कृदतिङ्' सूत्र से कृत्संज्ञा होती है। इत्यादि अनेक प्रयोजन इस अधिकार सूत्र के हैं)।

वाऽस--(यह परिभाषा सूत्र है, अनियम में नियमकारिणी को परिभाषा कहते हैं, यह परिभाषा का सामान्य लक्षण है) इस धातोः के अधिकार में असमान रूप अपवाद उत्सर्ग को विकल्प से बाध करता है। किन्तु 'स्त्रियां क्तिन्' से स्त्रियाम् के अधिकार युक्त प्रत्ययों में इसकी प्रवृत्ति नहीं है अर्थात् वे नित्य उत्सर्ग के बाधक हैं। **कृत्याः**—'ण्वुल्तृचौ' सूत्र से पूर्व उक्त प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। **कर्तरि**—**कृत्** प्रत्यय कर्ता में होता है। **तयोः**—कृत्य प्रत्यय, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव-कर्म में ही होता है।

तव्य—तव्यत्, तव्य और खलर्थ प्रत्यय भाव-कर्म में ही होता है।

चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया । (केलिमर उपसंख्यानम्)पचेलिमा माषा । पक्तव्या इत्यर्थः । भिदेलिमाः सरलाः । भेतव्या इत्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययाः ।

कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३।

"क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति" ॥

स्नात्यनेति स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः । **अचो यत्** ३।१।९७ अजन्ताद्धातोर्यत् । चेयम् । **ईद्यति** ६।४।६५। यति परे आत ईत्स्यात् । देयम् । ग्लेयम् । **पोरदुपधात्** ३।१।९८। पवर्गान्तादुपधाद्यत् स्यात् । ण्यतोऽपवादः । शप्यम् । लभ्यम् । **एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्** ३।१।१०९ एभ्यः क्यप् स्यात् । **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** ६।१।७१। इत्यः । स्तुत्यः । शासु अनुशिष्टौ । **शास इदङ्हलोः** ६।४।३४। शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति ।

देयम्—दातुं योग्यं देयम्, दाधातोः 'अचो यत्' इति यति 'ईद्यति' इति ईत्वे अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे कृदन्तत्वात् सोरमि पूर्वरूपे 'देयम्' इति ।

शप्यम्—शप्तुं योग्यं शप्यम्, शप्-धातोः 'पोरदुपधात्' इति यत्प्रत्यये सोरमि पूर्वरूपे 'शप्यम्' इति ।

इत्यः—एतुं योग्यः इति विग्रहे 'एतिस्तुशास्–' इति क्यपि तुकि अनुबन्धलोपे कित्त्वाद् गुणाऽभावे 'इत्यः' इति ।

केलि—धातु से केलिमर प्रत्यय भाव-कर्म में होता है ।

कृत्य—कृत्य और ल्युट् प्रत्यय बहुल प्रकार से होता है ।

अचो—अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है ।

ईद्यति—यत् प्रत्यय के परे आत् को ईत् होता है ।

पोर—पवर्गान्त अदुपध धातु से यत् प्रत्यय होता है ।

एति—इणादि धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है ।

ह्रस्व—पित्-कित् प्रत्यय के परे ह्रस्व को तुक् होता है ।

शास्—अङ् तथा हलादि कित्-ङित्प्रत्यय के परे शास् धातु की उपधा को ह्रस्व होता है ।

शिष्यः। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः। मृजेर्विभाषा ३।१।११३। मृजेः क्यब्वा स्यात्। मृज्यः। ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४। ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् स्यात्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। चजोः कु घिण्यतोः ७।३।५२। चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे। मृजेर्वृद्धिः ७।१।११४। मृजेरिको वृद्धिः स्यात् सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः। भोज्यं भक्ष्ये ७।३।६९। भोग्यमन्यत्।

इति कृदन्ते कृत्यप्रकरणम्।

—:०:—

शिष्यः—शासितुं योग्यः इति विग्रहे शास्धातोः 'एतिस्तुशास्—' इति क्यपि 'शास इदङ्हलोः' इतीत्वे 'शासिवसिघसीनां च' इति सस्य षत्वे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे 'शिष्यः' इति।

वृत्यः—वरितुं योग्यः इति विग्रहे क्यपि तुकि विभक्तिकार्ये वृत्यः' इति।

मृज्यः—मार्जितुं योग्यः इति विग्रहे मृज्धातोः 'मृजेर्विभाषा' इति विभाषया क्यपि अनुबन्धलोपे कित्त्वात् गुणाभावे विभक्तिकार्ये 'मृज्यः' इति। क्यपोऽभावे 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यति अनुबन्धलोपे 'चजोः कु घिण्यतोः' इति धातोर्जस्य कुत्वे 'मृजेर्वृद्धिः' इति वृद्धौ रपरत्वे विभक्तिकार्ये 'मार्ग्यः' इति।

भोज्यं भक्ष्ये—भक्ष्ये गम्यमाने, भुजेः कुत्वाऽभावो निपात्यते।

भोज्यम्—भुजधातोः भक्ष्येऽर्थे 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यति अनुबन्धलोपे 'पुगन्ते'ति गुणे 'चजोः कु—'इति जस्य कुत्वे प्राप्ते 'भोज्यं भक्ष्ये, इति निपातनात् कुत्वाऽभात्वे कृदन्तत्वात् सौ सोरमि पूर्वरूपे 'भोज्यम्' इति। भोग्येऽर्थे तु 'भोग्यम्' इति। तत्र ण्यति अनुबन्धलोपे 'पुगन्ते'ति गुणे 'चजोः कु—'इति जस्य कुत्वे कृदन्ततवात् सौ, सोरमि पूर्वरूपे 'भोग्यम्' इति।

इति कृदन्ते कृत्यप्रकरणम्।

—:०:—

मृजे—मृज् धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है।

चजोः—घित् और ण्यत् प्रत्यय के परे चकार, जकार को कुत्व होता है।

मृजे—सार्वधातुक तथा आर्धधातुक के परे मृज् धातु के इक् को वृद्धि होती ह। भोज्यं—भक्ष्य अर्थ में भोज्य तिपातन होता है।

कृदन्त का कृत्यप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ पूर्वकृदन्तप्रकरणम्

ण्वुल्तृचौ ३।१।१३३। धातोरेतौ स्तः कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे। **युवोरनाकौ** ७।१।११४। युवु एतयोरनाकौ स्तः। कारकः। कर्ता। **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** ३।१।१३४। नन्दयादेर्ल्युः ग्रह्यादेर्णिनिः पचादेरच् स्यात्। नन्दयतीति नन्दनः। जनमर्दयतीति जनार्दनः। लवणः। ग्राही। स्थायी। मन्त्री। पचादिराकृतिगणः। **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** ३।१।१३५। एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः। **आतश्चोपसर्गे** ३।१।१३६। प्रज्ञः। सुग्लः। **गेहे कः** ३।१।१४४। गेहे कर्तरि गेहे कः स्यात्। गृहम्। **कर्मण्यण्** ३।२।११।

ण्वुल्तृचौ—अनयोः वर्तमानकालादन्यत्र न प्रयोगः। इति भाष्यम्।

कारकः—करोतीति कारकः। कृधातोः 'कर्तरि कृत्' इति कर्त्रर्थे 'ण्वुल् तृचौ' इति ण्वुलि णलयोर्लोपे 'युवोरनाकौ' इति वोरकादेशे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे 'कारकः' इति।

जनार्दनः—जनमर्दयतीति जनार्दनः, उपपदसमासः। अत्र जनोपपदक-'अर्द्' धातोः 'नन्दग्रहि–' इति ल्युप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'युवोरनाकौ' इति योरनादेशे दीर्घे विभक्तिकार्ये 'जनार्दनः' इति।

ण्वुल्—कर्ता में धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होता है।

युवो—यु और वु को यथाक्रम से अन्, अक् आदेश होता है।

नन्दि—नद्यादिगण पठित धातु से ल्यु, ग्रह्यादि गणपठित से णिनि एवं पचादि गणपठित धातुओं से अच् प्रत्यय होता है।

इगु—इगुपध धातु तथा ज्ञा, प्री, कृ, इन तीनों से कर्ता में 'क' प्रत्यय होता है।

आतः—उपसर्ग उपपद में होने पर आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है।

कर्म—कर्म उपपद में रहने पर धातु से उत्तर कर्ता अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । **आतोऽनुपसर्गे कः** ३।२।३। आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे कः स्यात् । अणोऽपवादः । आतो लोपः । गोदः । धनदः । कम्बलदः । अनुपसर्गे किम् ? गोसन्दायः **(मूलविभुजादिभ्यः कः)** मूलानि विभुजतीति मूलविभुजो रथः । आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः । **चरेष्टः** ३।२।१६। अधिकरणे उपपदे । कुरुचरः । **भिक्षासेनादायेषु च** ३।२।१७। भिक्षाचरः । सेनाचरः । अदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः । **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** ३।२।२०। एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् । **अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य** ८।३।४६। आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः स्यात् करोत्यादिषु परेषु । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः । **एजेः खश्** ३।२।२८। ण्यन्तादेजेः

कुम्भकारः—कुम्भं करोतीति लौकिकविग्रहे कृधातोः 'कर्मण्यण्' इत्यणि अनुबन्धलोपे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे 'कार' इति जाते 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' इति कर्मणि षष्ठ्यां सत्यां 'गतिकारके'ति परिभाषया 'कुम्भ अस् कार' इत्यलौकिकविग्रहे एव 'उपपदमतिङ्' इति समासे सुब्लुकि 'एकदेशविकृत'-न्यायेन समुदायात् 'कुम्भकार'शब्दात् सौ रुत्वे विसर्गे 'कुम्भकारः' इति ।

यशस्करी—यशः करोतीत्यलौकिकविग्रहे यशः इति कर्मण्युपपदे कृ धातोः 'कृञो हेतुताच्छील्ये'ति सूत्रेण टप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे रपरत्वे 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठ्यां सत्यां 'यशस् अस् कर'

आतो—उपसर्ग पूर्व में न रहने पर कर्म उपपद में रहते आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है ।

मूल—मूलविभुजादि से 'क' प्रत्यय होता है ।

चरे—अधिकरण उपपद में रहते चर धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ।

भिक्षा—भिक्षा, सेना एवं ल्यबन्त अव्यय 'आदाय' उपपदक चर् धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ।

कृञो—हेतु, ताच्छिल्य एवं आनुलोम्य अर्थ की प्रतीति रहने पर कृञ् धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ।

अतः—कृ, कमि तथा कसादि उत्तर पद के परे समास में अत् से पर अनव्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में सत्व होता है ।

एजेः—कर्मोपपदक ण्यन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय होता है ।

खश् स्यात् । **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** ६।३।६७। अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् । खिदन्ते परे नत्वव्ययस्य । शित्त्वाच्छबादिः । जनमेजयतीति जनमेजयः । **प्रियवशे वदेः खच्** ३।२।३८ प्रियंवदः । वशंवदः । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** ३।२।७५। मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातो स्युः । **नेड्वशि कृति** ७।२।८। वशादेः कृत इण् न स्यात् । शॄ हिंसायाम् । सुशर्मा । प्रातरित्वा । **विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्** ३।४।४१। अनुनासिकस्याऽत्स्यात् ।

इति स्थिते 'गतिकारके'ति सुबुत्पत्तेः प्रागेव 'उपपदमतिङ्' इति समासे सुब्लुकि सस्य रुत्वे विसर्गे 'यसः कर' इति जाते 'अतः कृकमि—' इति विसर्गस्य सत्वे स्त्रीत्वविवक्षायां 'टिड्ढाणञ्—' इति ङीपि अनुबन्धलोपे भत्वात् 'यस्येति चे'ति अलोपे ङ्यन्तत्वात् सौ 'हल्ङ्याभ्यः—' इति सुलोपे 'यशस्करी' इति । 'विद्या' इति शेषः ।

जनमेजयः—जनम् एजयतीति लौकिकविग्रहे ण्यन्ताद् एज्धातोः 'एजेः खश्' इति खशि अनुबन्धलोपे शित्त्वात् सार्वधातुकसंज्ञायां शपि गुणेऽयादेशे पूर्वरूपे 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठ्यां सत्यां 'जन अस् एजय' इत्यलौकिकविग्रहे सुबुत्पत्तेः प्रागेव 'गतिकारके'ति समासे सुब्लुकि 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमि कृदन्तत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'जनमेजयः' इति ।

वशंवदः—वशं (कल्याणं) वदतीति लौकिकविग्रहे 'प्रियवशे वदेः खच्' इति खचि अनुबन्धलोपे 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठ्यां सत्यां 'वशम् अस् वद' इति जाते 'गतिकारके'ति सुबुत्पत्तेः प्रागेव समासे सुब्लुकि 'अरुर्द्विष' इति मुमि मस्यानुस्वारे कृदन्तत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'वशंवदः' इति ।

अरुर्—खिदन्त उत्तरपद के परे अरुष्, द्विषत् तथा अजन्त को मुमागम होता है—अव्यय को छोड़ कर ।

प्रिय—प्रिय तथा वश कर्मोपपदक वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है ।

अन्ये—आकारान्त धातु से भिन्न धातु से भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् तथा विच् प्रत्यय होता है । **नेड्**—वशादि कृत् प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता है । **विड्**—विट् तथा वनिप् प्रत्यय के परे अनुनासिक को आत्त्व होता है ।

विजायत इति विजावा । ओणृ अपनयने । अववा । विच् । रुष रिष हिंसायाम् । रोट् । रेट् । सुगण् । **क्विप् च** ३।२।७६। अयमपि दृश्यते । उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् । **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** ३।२।७८। अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिः स्यात् ताच्छील्ये द्योत्ये । उष्णभोजी । **मनः** ३।२।८२। सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् । दर्शनीयमानी । **आत्ममाने खश्च** ३।२।८३। स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् चाण्णिनिः । पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः । पण्डितमानी । **खित्यनव्ययस्य** ६।३।६६। खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः स्यात् । ततो मुम् । कालिम्मन्या । **करणे यजः** ३।२।८५। करणे उपपदे भूतार्थेय जेर्णिनिः स्यात् । कर्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी । **दृशेः क्वनिप्** ३।२।९४। कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान् पारदृश्वा । **राजनि युधि कृञः** ३।२।९५

पण्डितम्मन्यः—'पण्डितमात्मानं मन्यते' इति लौकिकविग्रहे कर्मण्युपपदे मन्धातोः 'आत्ममाने खश्च' इति खशि अनुबन्धलोपे शपं प्रबाध्य 'दिवादिभ्यः श्यन्' इति श्यनि अनुबन्धलोपे पररूपे 'मन्य' इति जाते 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठ्यां सत्यां 'पण्डित अस् मन्य' इति स्थिते उपपदसमासे सुपो लुकि 'अरुर्द्विष—' इति मुमि अनुबन्धलोपे मस्यानुस्वारे परसवर्णे कृदन्तत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'पण्डितम्मन्यः' इति ।

क्विप्—सामान्यतः सभी धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है ।

सुप्य—ताच्छील्य अर्थ में अजाद्यर्थक सुबन्त उपपद रहने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है ।

मनः—सुबन्त उपपद रहने पर मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है ।

आत्म—सुबन्त उपपद रहने पर स्वकर्मक मनन अर्थ में 'मन्' धातु से खश् तथा चकारात् णिनि प्रत्यय भी होता है ।

खित्य—खिदन्त उत्तरपदपरक अव्यय से भिन्न पूर्व पद को ह्रस्व होता है ।

करणे—करण उपपदक यज् धातु से भूतकाल में कर्ता में णिनि प्रत्यय होता है ।

दृशेः—कर्म उपपदक दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है ।

राजनि—राजन् कर्मोपपदक युध् तथा कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है ।

क्वनिप्स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । राजकृत्वा । **सहे च** ३।२।९६। कर्मणीति निवृत्तम् । सह योधितवान् सहयुध्वा । सहकृत्वा । **सप्तम्यां जनेर्डः** ३।२।९७। **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** ६।३।१४। ङेरलुक् स्यात् । सरसिजम् । सरोजम् । **उपसर्गे च संज्ञायाम्** ३।२।९९। 'प्रजा स्यात्सन्ततौ जने ।' **क्तक्तवतू निष्ठा** १।१।१६। एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः । **निष्ठा** ३।२।१०२। भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः । उकावितो स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विश्वं कृतवान् विष्णुः । **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** ८।२।४२। रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् । निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च । शॄ हिंसायाम् । ॠत इत् । रपरः णत्वम् । शीर्णः । भिन्नः । छिन्नः । **संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः**

सरसिजम्—'सरसि जातम्' इति लौकिकविग्रहे सप्तम्यन्तपदोपपदात् जन्धातोः 'सप्तम्यां जनेर्डः' इति डप्रत्यये अनुबन्धलोपे डित्वाट्टिलोपे उपपदसमासत्वात् 'सुपो धातुः–' इति सप्तम्याः लुकि प्राप्ते 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति विभाषया तन्निषेधे कृदन्तत्वात् समुदायात् सौ सोरमि पूर्वरूपे 'सरसिजम्' इति सप्तम्याः लुक्पक्षे तु सरस्-शब्दसम्बन्धिसस्य रुत्वे गुणे 'सरोजम्' इति ।

शीर्णः —'शॄ हिंसायाम्' इति धातोः कर्मणि 'निष्ठा' इति क्तप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'ॠत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वे 'हलि चे'ति दीर्घे 'रदाभ्याम्' इति निष्ठातस्य नत्वे नस्य णत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'शीर्णः' इति ।

सहे —सहोपपदक युध् तथा कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है ।

सप्त —सप्तम्यन्तोपपदक जन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है ।

तत्पुरुषे —तत्पुरुष समास में कृदन्तोत्तरपदक ङि विभक्ति का विकल्प से अलुक होता है ।

उप—उपसर्गोपपदक जन् धातु से संज्ञा में 'ड' प्रत्यय होता है ।

क्तक्त—क्त और क्तवतु प्रत्यय की निष्ठासंज्ञा होती है ।

निष्ठा–भूतार्थवृत्ति धातु से निष्ठा अर्थ में क्त और क्तवतु प्रत्यय होते हैं ।

रदा—रेफ दकार से पर निष्ठासम्बन्धी तकार तथा निष्ठा से पूर्व धातु सम्बन्धी दकार को भी नकार होता है ।

संयो—यण्वान् संयोगादि आकारान्त धातु से पर निष्ठासम्बन्धी तकार

८।२।४३। निष्ठातस्य नः स्यात् । द्राणः । ग्लानः । **ल्वादिभ्यः** ८।२।४४। एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत् । लूनः । ज्याधातुः । ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । **हलः** ६।४।२। अङ्गावयवाद्धलपरं यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः स्यात् । जीनः । **ओदितश्च** ८।२।४५। भुजो भुग्नः । टुओश्वि—उच्छूनः । **शुषः कः** ८।२।५१। निष्ठातस्य कः स्यात् । शुष्कः । **पचो वः** ८।२।५२। पक्वः । क्षै हर्षक्षये । **क्षायो मः** ८।२।५३। क्षामः । **निष्ठायां सेटि** ६।४।५२ णेर्लोपः । भावितः । भावितवान् । दृह हिंसायाम् । **दृढः स्थूलबलयोः** ७।२।२०। स्थूले बलवति च

भुग्नः—भुजधातोः भावे 'निष्ठा' इति क्तप्रत्यये अनुबन्धलोपे जस्य कुत्वे 'ओदितश्च' इति तस्य नत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'भुग्नः' इति ।

उच्छूनः—उत्पूर्वात् 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' इति धातोः भावे 'निष्ठा' इति क्तप्रत्यये कलोपे धातोः टकारस्य 'आदिर्ञिटुडवः' इत्यनेन ओकारस्य 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इत्यनेन च इत्संज्ञायां लोपे च कृते 'श्वि त' इति स्थिते 'वचिस्वपि—' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'श्वीदितो निष्ठायाम्' इतीण्निषेधे 'हलः' इति दीर्घे 'ओदितश्चः' इति तस्य नत्वे श्चुत्वे छत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'उच्छूनः' इति ।

शुष्कः—शुष् धातोः कर्तरि 'निष्ठा' इति क्तप्रत्यये कलोपे 'शुषः कः' इति निष्ठातस्य कत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'शुष्कः' इति ।

भावितः—ण्यन्तात् 'भावि' धातोः 'निष्ठा' इति कर्मणि क्ते कलोपे 'आर्ध-

---

को नकारादेश होता है ।

ल्वादि—ल्वादि २१ धातुओं से पर निष्ठा सम्बन्धी तकार को नकार होता है । **हलः**—अंगावयव हल् से पर जो सम्प्रसारण, तदन्त जो अंग उसको दीर्घ होता है । **ओदि**—ओदित् धातु से पर निष्ठासम्बन्धी तकार को नकार आदेश होता है । **शुषः**—शुष् धातु से पर निष्ठासम्बन्धी तकार को ककार आदेश होता है ।

पचो—पच् धातु से पर निष्ठासम्बन्धी तकार को नकारादेश होता है ।

क्षायो—क्षैधातु सम्बन्धी निष्ठा तकार को मकार होता है ।

निष्ठायां—सेट् निष्ठा के परे 'णि' का लोप होता है ।

दृढः—स्थूल और बलवान् अर्थ में दृढ निपातन होता है ।

निपात्यते। दधातेर्हिः ७।४।४२ तादौ किति। हितम्। दो दद्घोः ७।४।७६। घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्। दत्तः। लिटः कानज्वा ३।२।१०६। क्वसुश्च ३।२।१०७ लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः। तङानावात्मनेपदम्। चक्राणः। म्वोश्च ८।२।६५। मान्तस्य धातोर्नत्वं स्यात् म्वोः परतः। जगन्वान्। लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४। अप्रथमान्तेन समानाधिकिरणे लट एतौ वा स्तः। शबादि। पचन्तं चैत्रं पश्य। आने मुक् ७।२।८२। अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्रं

धातुकस्येड् वलादेः' इति इटि टगते 'निष्ठायां सेटि' इति णिलोपे विभक्त्यादिकार्ये 'भावितः' इति। कर्तरि क्तवतौ तु 'भावितवान्' इति।

एतौ वा स्तः—'वर्तमाने लट्' इति सूत्रविहितस्यैव शतृ-शानचौ वा स्तः। 'अनन्तरस्येति न्यायादिति भावः। परस्मैपदे शतृप्रत्ययः, आत्मनेपदे शानच्प्रत्ययः, इत्येव द्योतयितुं वृत्तौ 'वा' इत्युक्तं न तु विकल्पार्थमित्यवधेयम्।

पचन्तम्—पच्धातोर्लटि लः स्थाने 'लटः शतृशानचौ—' इति शतृ प्रत्यये अनुबन्धलोपे शित्त्वात् सार्वधातुकसंज्ञायां शपि शपशोरित्संज्ञायां लोपे च कृते 'पच् अ अत्' इति जाते 'अतो गुणे' इति पररूपे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां द्वितीयैकवचने अमि उगित्वान्नुमि उमि गते नस्यानुस्वारे परसवर्णे 'पचन्तम्' इति।

दधा—तादि कित् प्रत्यय के परे 'धा' धातु को 'हि' आदेश होता है।

दो दद्—तादि कित् प्रत्यय के परे घुसंज्ञक 'दा' धातु को दद् आदेश होता है।

लिटः—लिट् के स्थान में कानच् और क्वसु प्रत्यय विकल्प से होता है।

म्वोश्च—मकार और वकार के परे मान्त धातु के मकार को नकारादेश होता है।

लटः—अप्रथमासमानाधिकरण में लट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय होता है।

आने—आन् के परे अंगावयव अत् को नुक् का आगम होता है।

पश्य । लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात्प्रथमासमानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन् द्विजः । **विदेः शतुर्वसुः** ७।१।३६। वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा स्यात् । विदन् । विद्वान् । **तौ सत्** ३।२।१२७। तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः । **लृटः सद्वा** ३।३।१४। व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन प्रथमासमानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् । करिष्यमाणं पश्य । **आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** ३।२।१३४। क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः । **तृन्** ३।२।१३५। कर्त्ता कटान् । **जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्** ३।२।१५५। **षः प्रत्ययस्य** १।३।६। प्रत्ययस्यादिः षः इत्संज्ञः स्यात् । जल्पाकः । भिक्षाकः । कुट्टाकः । लुण्टाकः । वराकः । वराकी । **सनाशंसभिक्ष-**

विद्वान्—वेत्तीति विद्वान् । विद्धातोर्लटि 'लटः शतृशानचौ–' इति लटः शतरि तत्स्थाने 'विदेः शतुर्वसुः' इति शतृस्थाने वसुरादेशे उगते 'विद्वस्' इति तस्मात् कृदन्तत्वात् सौ उगित्वान्नुमि उमि गते 'अत्वसन्तस्य–' इति दीर्घे हल्ङ्यादिना सुलोपे संयोगान्तलोपे 'विद्वान्' इति । वस्वादेशाभावपक्षे लटः शतरि शपि शपो लुकि, कृदन्तत्वात् सौ नुमि सुलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति तलोपे 'विदन्' इति ।

जल्पाकः—जल्पति, तच्छीलः, इत्यर्थे 'जल्प-भिक्ष–' इति षाकनि 'षः प्रत्ययस्य' इति षस्येत्संज्ञालोपयोः 'जल्पाक' इति जाते कृदन्तत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'जल्पाकः' इति ।

विदेः—विद्धातु से पर शतृ के स्थान में वसु आदेश विकल्प से होता है ।

तौ सत्—शतृ और शानच् सत् संज्ञक होता है ।

लृटः—लट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

आक्वैः—वक्ष्यमाण 'भ्राज-भास' सूत्र से विहित क्विप् प्रत्यय तक जो प्रत्यय कहे गये हैं वे तच्छीलादि कर्ता अर्थ में होते हैं ।

तृन्—तच्छीलादि अर्थ रहने पर धातु से तृन् प्रत्यय होता है ।

जल्प—तच्छीलादि अर्थ में जल्पादि धातु से 'षाकन्' प्रत्यय होता है ।

षः प्रत्ययस्य—प्रत्यय के आदि षकार की इत्संज्ञा होती है ।

सना—तच्छीलादि अर्थ में सनन्त, आशंस् तथा भिक्ष् धातु से 'उ' प्रत्यय होता है ।

उः ३।२।१६८। चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः । **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** ३।१।१७७। विभ्राट् । भाः । **राल्लोपः** ६।४।२१ रेफाच्छ्वोर्लोपः स्यात् क्वौ झलादौ क्ङिति । धूः । विद्युत् । ऊर्क् । पूः । दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः । जूः । ग्रावस्तुत् । (**क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च**) वक्तीति वाक् । **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** ६।४।१९। सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति । पृच्छतीति प्राट् । आयतं स्तौतीति आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जूरुक्तः । श्रयति हरिं श्रीः । **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** ३।३।१८२। दाबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे । दात्यनेन दात्रम् । नेत्रम् । **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** ७।२।९। एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न स्यात् ।

चिकीर्षुः—कर्तुमिच्छतीति 'चिकीर्षुः' । कृधातोः इच्छार्थे सनि 'इको झल्' ति सनः कित्त्वाद् गुणाभावे 'अज्झनगमां सनि' इति ऋकारस्य दीर्घे 'ॠत इद्धातोः' इतीत्वे रपरत्वे 'हलि च' इति दीर्घे 'कीर्' इति भूते 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'अभ्यासकार्ये च कृते सनः सस्य षत्वे 'चिकीर्ष' इति जाते 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्युप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात् 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे विभक्त्यादिकार्ये 'चिकीर्षुः' इति ।

भ्राज—भ्राज, भास-आदि धातुओं से ताच्छील्यादि अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है ।

राल्लो—क्विप् तथा झलादि कित्-ङित् प्रत्यय के परे रेफ से पर छकार तथा वकार का लोप होता है ।

क्विब्वचि—वचादि धातुओं से क्विप्, अच् को दीर्घ तथा सम्प्रसारण का अभाव विधान होता है ।

च्छ्वोः—क्विप् तथा झलादि कित्-ङित् के परे तुक विशिष्ट 'छ' को 'श' तथा 'व' को ऊठ् आदेश होता है ।

दाम्नी—दाप् आदि धातुओं से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है ।

तितु—ति, तु, आदि दशों कृत्प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता है ।

शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्त्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नद्ध्री । **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** ३।२।१८४। अरित्रम् । लवित्रम् । पवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् । **पूर्वः संज्ञायाम्** ३।२।१८५। पवित्रम् ।

इति पूर्वकृदन्तप्रकरणम् ।

—: ० :—

पवित्रम्—पूयते अनेन आज्यमिति विग्रहे पूधातोः 'पूवः संज्ञायाम्' इति करऽणेर्थे इत्रप्रत्यये तस्यार्धधातुकसंज्ञायां गुणे अवादेशे विभक्तयादिकार्ये 'पवित्रम्' इति ।

इति पूर्वकृदन्तप्रकरणम् ।

—: ० :—

अर्ति—ऋ तथा लू आदि धातुओं से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है ।

पुवः—संज्ञा अर्थ में पूङ् और पूञ् धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है ।

पूर्वकृदन्तप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ उणादिप्रकरणम्

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ।।१।। करोतीति कारुः । वातीति वायुः । पायुर्गुदम् । जायुरौषधम् । मायुः पित्तम् । स्वादुः । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । आशु शीघ्रम् । **उणादयो बहुलम्** ३।३।१। एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः ।

"संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाच्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्ध-मेतच्छास्त्रमुणादिषु" ।।

इति उणादिप्रकरणम् ।

—:०:—

संज्ञास्विति—महाभाष्यस्थोऽयं श्लोकः । डित्थो डवित्थ इत्यादौ धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च यथासम्भवमुह्याः । गुणनिषेधादिकार्यवशात् अनूबन्धं विद्यात् । अनूबन्धमित्यत्र 'घञमनुष्ये बहुलम्' इति दीर्घः । एतत् उणादिषु शास्त्रं शासितव्यम् ।

इति उणादिप्रकरणम् ।

—:०:—

कृवा—कृ, वा आदि धातुओं से उण् प्रत्यय होता है ।

उणा—वर्तमानकाल में और संज्ञा में धातु से उणादि प्रत्यय होता है ।

संज्ञासु—संज्ञा में धातुओं की तथा उनसे पर प्रत्ययों की कल्पना करनी चाहिए । उसके बाद प्रयोगों में गुणाऽभाव अथवा वृद्धि आदि कार्यों को देखकर प्रत्ययों से कित्, ङित् आदि अनुबन्धों की कल्पना करनी चाहिए—यही उणादि की विशेषता है ।

उणादिप्रकरण समाप्त ।

—:०:—

अथ उत्तरकृदन्तप्रकरणम्

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०। क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति। **कालसमयवेलासु तुमुन्** ३।३।१६७। कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्। **भावे** ३।३।१८। सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् स्यात्। पाकः। **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** ३।३।१९। कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्। **घञि च भावकरणयोः** ६।४।२७। रञ्जेर्नलोपः स्यात्। रागः। अनयोः किम्? रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः। **निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः** ३।३।४१। एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च

क्रियार्थायाम्— क्रियार्थः प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्था, तस्याम्।

द्रष्टुम्—दृश्धातोः 'तुमुन्ण्वुलौ—' इति तुमुनि उनो लोपे 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' इति अमि मलोपे ऋकारस्य यणि 'व्रश्चभ्रस्ज—' इति शस्य षत्वे ष्टुत्वे कृदन्तत्वात् सौ 'कृन्मेजन्तः' इति मान्तत्वादव्ययत्वे सुपो लुकि 'द्रष्टुम्' इति। 'कृष्णं द्रष्टुं याति' इत्यत्र भावे तुमुन्।

रागः—रञ्ज्धातोः 'अकर्तरि च कारके—' इति घञि अनुबन्धलोपे 'घञि च भावकरणयोः' इति नलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'चजोः कु घिण्यतोः' इति जस्य कुत्वे विभक्तिकार्ये 'रागः' इति।

तुमुन्—क्रियार्थक क्रिया उपपद रहने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होता है।

काल—काल, समय और वेला उपपद रहने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।

भावे—सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ वाच्य हो तो धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

अक—कर्तृभिन्न कारक अर्थ में धातु से घञ् प्रत्यय होता है, संज्ञा में।

घञि—घञ् प्रत्यय के परे भाव और करण अर्थ में रञ्ज धातु सम्बन्धी नकार का लोप होता है।

निवा—निवासादि अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और धातु के आदि चकार को कुत्व हो जाता है।

ककारः । उपसमाधानं राशीकरणम् । निकायः । कायः । गोमयनिकायः । **एरच्** ३।३।५६। इवर्णान्तादच् स्यात् । चयः । जयः । **ॠदोरप्** ३।३।५७। ॠवर्णान्तादुवर्णान्तादप् स्यात् । करः । गरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः । **(घञर्थे कविधानम्)** प्रस्थः । विघ्नः । **ड्वितः क्त्रिः** ३।३।८८। **क्त्रेर्मम् नित्यम्** ४।४।२०। क्त्रिप्रत्ययान्ताद् मम् निर्वृत्तेऽर्थे । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । डुवप् । उप्त्रिमम् । **ट्वितोऽथुच्** ३।३।८९। टुवेपृ कम्पने । वेपथुः । **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** ३।३।९०। यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । **स्वपो नन्** ३।३।९१। स्वप्नः । **उपसर्गे घोः किः** ३।३।९२। प्रधिः । उपधिः **स्त्रियां क्तिन्** ३।३।९४। स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात् । घञोऽपवादः । कृतिः ।

उप्त्रिमम् — 'डुवप् बीजसन्ताने' धातोः अनुबन्धलोपे 'वप्' इति, तस्मात् 'ड्वितः क्त्रिः' इति क्त्रिप्रत्यये कलोपे कित्त्वात् 'वचिस्वपि—' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'क्त्रेर्मम् नित्यम्' इति मपि पगते विभक्त्यादिकार्ये 'उप्त्रिमम्' इति ।

याच्ञा—याच्धातोः 'यजयाच—' इति नङि ङलोपे श्चुत्वे स्त्रीत्वाट्टापि विभक्त्यादिकार्ये 'याच्ञा' इति ।

एरच्—इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है ।

ॠदो—ॠवर्णान्त और उवर्णान्त धातु से अप् प्रत्यय होता है ।

घञर्थे—घञ् के अर्थ में 'क' प्रत्यय होता है ।

ड्वितः—भावार्थक प्रत्यय में डकारेत्संज्ञक धातु से क्त्रि प्रत्यय होता है।

क्त्रेर्मम्—निवृत्त अर्थ में 'क्त्रि' प्रत्ययान्त से तद्धितसंज्ञक 'मप्' प्रत्यय नित्य ही होता है ।

ट्वितो—टकारेत्संज्ञक धातु से भाव में 'अथुच्' प्रत्यय होता है ।

यज—यजादि धातु से 'नङ्' प्रत्यय होता है ।

स्वपो—स्वप् धातु से 'नन्' प्रत्यय होता है ।

उप—उपसर्गोपपदक घुसंज्ञक धातु से 'कि' प्रत्यय होता है ।

स्त्रियां—भाव और कर्तृभिन्न कारक अर्थ में धातु से स्त्रीलिंग में क्तिन् प्रत्यय होता है ।

स्तुतिः (ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः) तेन नत्वम् । कीर्णिः । लूनिः । धूनिः । पूनिः (सम्पदादिभ्यः क्विप्) सम्पत् । विपत् । आपत् । (क्तिन्न- पीष्यते) सम्पत्तिः । विपत्तिः । आपत्तिः । ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३।३।९७। एते निपात्यन्ते । ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२० एषामुपधावकारयोरूठ् स्यादनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति । अतः क्विप् । जूः । तूः । सूः । ऊः । मूः । इच्छा ३।३।१०१। इषेर्निपातोऽयम् अ-प्रत्ययात् ३।३।१०२। प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् । चिकीर्षा । पुत्रकाम्या । गुरोश्च हलः ३।३।१०३। गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् । ईहा । ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७। अकारस्यापवादः । कारणा ।

कीर्णिः—कृधातोः 'स्त्रियां क्तिन्' इति क्तिनि ककारलोपे 'ॠत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वे 'हलि च' इति दीर्घे 'ऋल्वादिभ्यः—' इति क्तिनो निष्ठा-वद्भावात् 'रदाभ्याम्—' इति तस्य नत्वे 'राषाभ्यां णो नः—' इति णत्वे विभक्तिकार्ये 'कीर्णिः' इति ।

चिकीर्षा—कृधातोः सनि नगते सनः कित्त्वात् 'अज्झनगमां सनि' इति दीर्घे 'ॠत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वे 'हलि च' इति दीर्घे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये सस्य षत्वे 'चिकीर्ष इति तस्मात् धातुसंज्ञायाम् 'अप्रत्ययात् इति अप्रत्यये 'अतो लोपः' इति सनोऽकारलोपे स्त्रीत्वाट्टापि अनु-बन्धलोपे' सवर्णदीर्घे कृदन्तत्वात् सौ 'हल्ङ्याब्भ्यः-' इति सुलोपे चिकर्षा इति ।

ऋल्वा—ऋल्वादि धातुओं से पर क्तिन् प्रत्यय निष्ठावत् होता है ।

सम्प—सम्पदादि धातुओं से स्त्रीलिंग तथा भाव में 'क्विप्' प्रत्यय होता है ।

क्तिन्नपि—सम्पदादि धातुओं से 'क्तिन्' प्रत्यय भी होता है ।

ऊति—ऊति, यूति आदि का निपातन होता है ।

ज्वर—ज्वर, त्वर, स्त्रिव, अव तथा मव धातुओं की उपधासम्बन्धी वकार को 'ऊठ्' होता है, क्विप् तथा झलादि अनुनासिकादि प्रत्यय के परे ।

इच्छा—इष् धातु से 'इच्छा' निपातन होता है ।

अ प्रत्य—प्रत्ययान्त से स्त्रीलिंग में 'अ प्रत्यय होता है ।

गुरोश्च—गुरुमान हलन्त धातु से स्त्रीलिंग में 'अप्रत्यय होता है ।

ण्यास—ण्यन्त धातु, आस् धातु तथा श्रन्थ धातु से 'युच्' प्रत्यय होता है, स्त्रीलिंग और भाव में ।

हारणा। **नपुंसके भावे क्तः** ३।३।११४। **ल्युट् च** ३।३।११५। हसितम्। हसनम्। **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** ३।३।११८। **छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य** ६।४।९६। द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वः स्यात् घे परे। दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः। **अवे तॄस्त्रोर्घञ्** ३।३।१२०। अवतारः कूपादेः। अवस्तारो जवनिका। **हलश्च** ३।३।१२१ हलन्ताद् घञ् स्यात्। घापवादः। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः। अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः। **ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्** ३।३।२६। करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल्। तयोरेवेति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे--ईषत्करः। सुकरः। **आतो युच्** ३।३।१२८। खलोऽपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः।

अपामार्गः—अपोपसर्गक 'मृज्' धातोः 'हलश्च' इति घञि अनुबन्धलोपे 'मृजेर्वृद्धिः' इति वृद्धौ रपरत्वे 'चजोः कु घिण्यतोः' इति जस्य गत्वे 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये–' इति दीर्घे कृदन्तत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'अपामार्गः' इति।

सुपानः—सूपसर्गकपाधातोः 'अतो युच्' इति युचि चलोपे 'युवोरनाकौ' इति योरनादेशे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'सुपानः' इति।

नपुं—नपुंसक तथा भाव म धातु से 'क्त' प्रत्यय होता है।

ल्युट्—नपुंसक तथा भाव में धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय भी होता है।

पुंसि—करण तथा अधिकरण अर्थ रहने पर पुल्लिग तथा संज्ञा में धातु से प्रायः 'घ' प्रत्यय होता है।

छादे—'घ' प्रत्यय के परे द्वि-प्रभृति उपसर्ग से रहित अंगावयव 'छाद्' की उपधा को ह्रस्व होता है।

अवे—अवपूर्वक तॄ एवं स्तॄ से संज्ञा में करण एवं अधिकरण में घञ् प्रत्यय पुल्लिग में होता है। **हलश्च**—करण या अधिकरण अर्थ में हलन्त धातु से घञ् प्रत्यय होता है, पुल्लिग और संज्ञा में। **ईषद्**--भाव या कर्म द्योत्य रहने पर ईषदार्थक सुख या दुःख उपपद रहने पर धातु से खल् प्रत्यय होता है। **आतो**—ईषदार्थक सुख या दुःख उपपद रहने पर आदन्त धातु से 'युच्' प्रत्यय होता है।

अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८। प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपद समासः । दो दद्घोः । अलं दत्त्वा । घुमास्थेतीत्वम् । पीत्वा खलु । अलंखल्वोः किम् ? मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् ? अलंकारः । **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** ३।४।२१। समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानद्धातोः क्त्वा स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति । **न क्त्वा सेट्** १।२।१८। सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा । सेट् किम् ? कृत्वा । **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** १।२।२६। इवर्णोवर्णोपधाद्धलादे रलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः । द्युतित्वा । द्योतित्वा । लिखित्वा । लेखित्वा । व्युपधात्किम् ? वर्तित्वा । रलः किम् ? सेवित्वा । हलादेः किम् ? एषित्वा । सेट् किम् ? भुक्त्वा । **उदितो वा** ७।२।५६। उदितः परस्य क्त्व इड् वा स्यात् । शमित्वा, शान्त्वा । देवित्वा, द्यूत्वा । दधातेर्हिः । हित्वा । **जहातेश्च क्त्वि** ७।४।४३। हित्वा,

---

द्युतित्वा—द्युत्धातोः 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' इति क्त्वाप्रत्यये कलोपे 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इतीटि 'न क्त्वा सेट्' इति कित्त्वनिषेधे प्राप्ते 'रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च' इति क्त्वाप्रत्ययस्य वैकल्पिके कित्वे 'क्ङिति च' इति गुणनिषेधे सौ 'क्त्वातोसुन्–'इत्यव्ययत्वात् सुब्लुकि 'द्युतित्वा' इति । कित्वाभावे 'पुगन्ते'ति गुणे 'द्योतित्वा' इति ।

हित्वा—धाधातोः 'समानकर्तृकयोः–इति क्त्वाप्रत्यये कलोपे दधातेर्हिः' इति धास्थाने हित्वे कृदन्तत्वात् सौ अव्ययत्वात् सुब्लुकि 'हित्वा' इति । प्रहित्वे-

---

अलं—प्रतिषेधार्थक 'अलम्' अथवा 'खलु' शब्द पूर्व में रहने पर धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है । **समा**—दो या अनेक जो धातु, तदर्थक क्रियाजनक कर्ता के रहने पर पूर्वकालिक क्रियावाचक धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है ।

न क्त्वा—इट् सहित क्त्वा कित् नहीं होता है ।

रलो—इवर्ण तथा उवर्णोपध हलादि रलन्तधातुओं से पर सेट् क्त्वा और सन् विकल्प से कित् होता है ।

उदितो—उदित् धातु से पर क्त्वा को विकल्प से इट् होता है ।

जहा—क्त्वा प्रत्यय के परे 'हा' धातु को 'हि' आदेश होता है ।

हाङ्स्तु हात्वा । **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** ७।१।३७। अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात् । तुक् । प्रकृत्य । अनञ् किम् ? अकृत्वा । **आभीक्ष्ण्ये णमुल् च** ३।४।२२।आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च । **नित्यवीप्सयोः** ८।१।४। आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् । आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञकेषु कृदन्तेषु । स्मारं स्मारं नमति शिवम् । स्मृत्वा स्मृत्वा । पायं पायम् । भोजं भोजम् । श्रावम् श्रावम् । **अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्** ३।४।२७। एषु कृञो णमुल् स्यात् । सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवं भूतश्चेत् कृञ् । व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्हं इत्यर्थः । अन्यथाकारम् । एवंकारम् । कथंकारम् । इत्थंकारं भुङ्क्ते । सिद्धेति किम् ? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ।

इति उत्तरकृदन्तप्रकरणम्

—:०:—

त्यर्थः । 'आहोक् त्यागे' इत्यस्य क्त्वायां तु-'जहातेश्च क्त्वि' इति हित्वं ज्ञेयम् तस्य क्त्वेत्यर्थः । 'ओहाङ् गतौ' इत्यस्मात् क्त्वायां तु—'हात्वा' इति भवति । अत्र 'जहातेश्च' इति हित्वं कथं नेति चेन्न, तत्र सूत्रे 'जहाते' इति निर्देशात्, अन्यथा तत्र 'भृञा मित्' इतीत्वे 'जिहीतेः' इति सूत्रस्वरूपापत्तेः ।

स्मारं स्मारम्—स्मृधातोः 'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च' इति णमुलि अनुबन्धलोपे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे 'नित्यवीप्सयोः' इति द्वित्वे कृदन्तत्वात् सौ 'कृन्मेजन्तः' इत्यव्ययत्वे सुपो लुकि मस्यानुस्वारे 'स्मारं स्मारम्' इति । क्त्वाप्रत्यये तु—'स्मृत्वा स्मृत्वा' इति भवति । इति उत्तरकृदन्तप्रकरणम् ।

—:०:—

समासे—अनञ् समास में अव्ययपूर्वपदक 'क्त्वा' के स्थान में ल्यप् होता है । **आभी**-पौनः पुन्य अर्थ में धातु से णमुल् और क्त्वा प्रत्यय होता है।

नित्य—पौनः पुन्य तथा वीप्सा अर्थ होने पर पद को द्वित्व होता है ।

अन्यथैवं—अन्यथा, एवं, कथम्, इत्थम् इन चार अव्यय शब्दोपपदक कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है, यदि कृञ् का प्रयोग व्यर्थत्व प्रयुक्त प्रयोजनशून्य रहे ।

उत्तरकृदन्तप्रकरण समाप्त

—:०:—

अथ कारकप्रकरणम्

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६। नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। प्रातिपदिकार्थमात्रे–उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। लिङ्गमात्रे–तटः। तटी। तटम्। परिमाणमात्रे–द्रोणो व्रीहिः। वचनं संख्या। एकः। द्वौ। बहवः। **सम्बोधने च** २।३।४७। प्रथमा स्यात्। हे राम। (इति प्रथमा) **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** १।४।४९। कर्तुः क्रियाया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

प्रातिपदिकार्थ—पदं पदमिति प्रतिपदं, प्रतिपदे भवं प्रातिपदिकम्; तस्यार्थः प्रातिपदिकार्थः। प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गं च परिमाणं च वचनं चेति द्वन्द्वः। प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचनान्येव प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचनमात्रम् इत्यस्वपदविग्रहः (मात्रशब्दोऽवधारणे, 'मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे' इत्यमरः।) "द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते" इति भाष्योक्त्या मात्रशब्दस्यात्र द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् प्रातिपदिकार्थे, लिङ्गे परिमाणे वचने च प्रत्येकमन्वयः इत्यर्थः।

नियतोपस्थितिकः—यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते सति यस्यार्थस्य नियमेन उपस्थितिः स प्रातिपदिकार्थः इति भावः।

परिमाणमात्रे—'द्रोणो व्रीहिः' इत्यत्र द्रोणः परिमाणविशेषः, तस्मात् द्रोणशब्दात् प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमाविधाने अभेदान्वयो दुर्वारः स्यात्; स चात्र बाधितः, द्रोण-व्रीह्योर्भिन्नत्वात्, अतोऽत्र परिमाणमात्रे प्रथमा भवति। तेन द्रोणरूपं यत् परिमाणं, तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः सम्पद्यते।

कर्तुरीप्सित—अत्र सूत्रे, 'कारके' इत्यनुवर्तते, तच्च प्रथमया विपरिणम्यते। 'कर्तुः' इत्यत्र 'क्तस्य च वर्तमाने' इति कर्तरि षष्ठी। आप्तुम् इष्यमाणम्

प्राति—प्रातिपदिकार्थ मात्र में लिंगमात्रा की अधिकता में तथा परिमाण मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। सम्बो-सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

कर्तुः—कर्ता को क्रिया द्वारा प्राप्त करने में जो अतिशय इष्ट हो वह कारकसंज्ञक होकर कर्मसंज्ञक होता है।

कर्मणि द्वितीया २।३।२। अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात् । हरिं भजति । अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा । हरिः सेव्यते । लक्ष्म्या सेवितः । अकथितं च १।४।५१। अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

"दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्" ।।

गां दोग्धि पयः । बलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलानोदनं पचति । गर्गान् शतं दण्डयति । व्रजमवरुणद्धि गाम् । माणवकं पन्थानं पृच्छति । वृक्षमवचिनोति फलानि । माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा । शतं जयति देवदत्तम् । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं मुष्णाति । ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।

ईप्सितम्, अतिशयेन ईप्सितम्, ईप्सिततमम् । धातूपात्तव्यापाराश्रयः कर्ता । "केन आप्तुम्' इत्याकाङ्क्षायां 'कर्तृविशेषणीभूतेन व्यापारेण' इत्यर्थाल्लभ्यते । ततश्च-'कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्' इत्यर्थः सम्पद्यते ।

हरिं भजति—अत्र भजनक्रियया सम्बन्धं देवदत्तादिकर्तुः अत्यन्तेच्छाविषयीभूतस्य हरेः 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इत्यनेन कर्मत्वात् 'कर्मणि द्वितीया' इति द्वितीया भवति ।

दुह्याच्—दुह प्रपूरणे, टुयाचृ याच्ञाम्, डुपचष् पाके, दण्ड दण्डनिपातने, रुधिर आवरणे, प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, चिञ् चयने; ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि, शासु अनुशिष्टौ, जि जये, मुष स्तेये, णीञ् प्रापणे, हृञ् हरणे, कृष विलेखने, वह प्रापणे-एषां धातूनां कर्मणा यदुक्तं कर्म तद् 'अकतिथकर्म' इत्युच्यते इत्यर्थः ।

गां दोग्धि पयः—अत्र 'गोः पयो दोग्धि' इति विग्रहे 'गोः' अपादानस्य अविवक्षया कर्मत्वविवक्षायाम् 'अकथितं च' इति कर्मसंज्ञायां 'कर्मणि द्वितीया' इति द्वितीया भवति ।

कर्मणि—अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है ।

अक—अपादानादि विशेष से अविवक्षित कारक कर्मसंज्ञक होता है ।

दुह्याच्—दुह् आदि सोलह धातुओं के कर्म के साथ जो युक्त होता है वही अकथित कर्म कहा जाता है ।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा । बलिं भिक्षते वसुधाम् । माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि । (इति द्वितीया) **स्वतन्त्रः कर्त्ता** १।४।५४। क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् । **साधकतमं करणम्** १।४।४२। क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् । **कर्तृकरणयोस्तृतीया** २।३।१८। अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण बाणेन हतो वाली । (इति तृतीया) । **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** १।४।३२। दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् । **चतुर्थी सम्प्रदाने** २।३।१३। विप्राय गां ददाति । **नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च** २।३।१६। एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः।

अर्थनिबन्धनेयम्—अर्थाऽऽश्रितेयं कर्मसंज्ञेत्यर्थः । तथा च—दुहाद्यर्थकधात्वन्तरयोगेऽपि द्विकर्मकत्वं ज्ञेयम् । अत एव 'बलिं भिक्षते वसुधाम्' इत्यत्र याचनार्थक 'भिक्ष' धातुयोगेऽपि बलेः अपादानत्वाऽविवक्षायां कर्मत्वात् 'अकथितं च' इति कर्मत्वाद् द्वितीया भवति ।

रामेण बाणेन हतो वाली—'रामकर्तृक–बाणकरणक–हननाश्रयो वाली' इति शाब्दबोधः । अत्र 'रामो बाणेन वालिनं जघान' इति विग्रहे 'हन्' धातोः कर्मणि 'क्त'प्रत्यये कृते कर्मणः उक्तत्वात् तत्र प्रथमा, हननक्रियायां रामस्य स्वातन्त्र्यविवक्षया 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' इति कर्तृसंज्ञा, बाणस्य च हननक्रियायाम् अत्यन्तोपकारकत्वात् 'साधकतमं करणम्' इति करणसंज्ञा । ततश्च उभयत्र कर्तृकरणयोरनुक्तत्वात् 'कर्तृकरणयोः–' इति तृतीयायां सत्याम् उक्तं रूपं सिद्धम् ।

कर्मणा—सम्यक् प्रदीयते अस्मै, तत् सम्प्रदानम् । दानक्रियाकर्मणा कर्ता यम् अभिप्रैति=सम्बध्नाति, सम्बन्धुमीप्सति वा, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञकमित्यर्थः ।

स्वतन्त्रः—क्रिया में स्वतन्त्रता से विवक्षित अर्थ कर्तृसंज्ञक होता है—वह कर्ता कहलाता है ।

साधक—क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त उपकारक होता है, वह करण कहलाता है । **कर्तृ**—अनुक्त कर्ता-करण में तृतीया विभक्ति होती है ।

कर्मणा—दान के कर्मसे जो सम्बन्धित होता है वह सम्प्रदान कहलाता है ।

चतुर्थी सम्प्र—अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

नमः—नमः, स्वस्ति आदि के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभुः, शक्त इत्यादि । (इति चतुर्थी) ।

ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४। अपायो विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात् । **अपादाने पञ्चमी** २।३।२८। ग्रामादायाति । धावतोऽश्वात्पततीत्यादि । (इति पञ्चमी) **षष्ठी शेषे** २।३।५०। कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात् । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो जानीते । मातुः स्मरति । एधोदकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः (इति षष्ठी ।) **आधारोऽधिकरणम्** १।४।४५। कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् । **सप्तम्यधिकरणे च** २।३।३६। अधिकरणे सप्तमी स्यात् । चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छाऽस्ति । सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा । (इति सप्तमी ।

इति कारकप्रकरणम् ।

—: ० :—

आधारः त्रिधा—(१) औपश्लेषिकः = उप—समीपे, श्लेषः—सम्बन्धः उपश्लेषः, तत्कृतम् औपश्लेषिकम् । अस्योदाहरणं—'कटे आस्ते' । (२) वैषयिकः=विषये भवः वैषयिकः । अस्योदाहरणं—'मोक्षे इच्छास्ति' । (३) अभिव्यापकः=अभि-सर्वतोभावेन व्याप्नोतीति अभिव्यापकः (यः आधारः सर्वम् अभिव्याप्नोति सः अभिव्यापक इत्युच्यते) । इति कारकप्रकरणम् ।

—: ० :—

ध्रुव—अपाय (विभाग) में जो अवधिभूत हो, उसकी अपादानसंज्ञा होती है । अपा—अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है ।

षष्ठी—कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभावादि सम्बध (शेष) में षष्ठी विभक्ति होती है । आधारो—कर्ता और कर्म के द्वारा जो कर्तृ-कर्मनिष्ठ किया का आधार हो वह अधिकरण संज्ञक है । सप्त—अनुक्त अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है । कारकप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ केवलसमासप्रकरणम्

समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः। स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः। प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः। तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः। कर्मधारयभेदो द्विगुः। प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः। **समर्थः पदविधिः २।१।१।** पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः। **प्राक्कडारात्समासः २।१।३।** कडाराः कर्मधारये इत्यतः प्राक्समास इत्यधिक्रियते।

समासः—समसनं=मिलनम्, तच्च—पृथगर्थानां पदानाम् एकार्थोपस्थितिजनकत्वम्। स च समासः पञ्चधा—

(१) केवलसमासः—अव्ययीभावादिविशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः।

(२) अव्ययीभावः—प्रायेण यस्मिन् समासे पूर्वपदार्थस्य प्राधान्यं सोऽव्ययीभावसमासः। उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन्निति विग्रहे 'अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्' इत्यव्ययीभावसमासे 'उन्मत्तगङ्गम्' इत्यत्र पूर्वपदार्थस्य अप्राधान्यात् लक्षणे 'प्रायेण' इत्युक्तम्।

(३) तत्पुरुषः—प्रायेण यस्मिन् समासे उत्तरपदार्थस्य प्राधान्यं स तत्पुरुषसमासः। अतिक्रान्तो मालाम् 'अतिमालः' इति तत्पुरुषसमासे अतिक्रमणकर्तृत्वरूपपूर्वपदार्थस्यैव प्राधान्यदर्शनात् लक्षणे 'प्रायेण' इत्युक्तम्।

(४) बहुव्रीहिः—प्रायेण यस्मिन् समासे अन्यपदार्थस्य प्राधान्यं स बहुव्रीहिसमासः। द्वौ वा त्रयो वा 'द्वित्राः' इत्यत्र अन्यपदार्थस्य अप्राधान्यात् 'प्रायेण' इत्युक्तम्।

(५) द्वन्द्वः—प्रायेण यस्मिन् समासे उभयपदार्थस्य प्राधान्यं स द्वन्द्वसमासः। पाण्योः पादयोश्च समाहारः 'पाणिपादम्' इत्यत्र उभयपदार्थस्य अप्राधान्यात् 'प्रायेण' इत्युक्तम्।

समर्थः—पदसम्बन्धी जो विधि वह समासाश्रय विधि कही जाती है।

प्राक्—'कडाराः कर्मधारये' सूत्र से पूर्व समास का अधिकार होता है।

सह सुपा २ १।४। सुप् सुपा सह वा समस्यते। समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। परार्थाभिधानं वृत्तिः। कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा। तत्र पूर्वं भूतो भूतपूर्वं इति लौकिकः, पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः। भूतपूर्वे चरडिति निर्देशाद् भूतशब्दस्य पूर्वनिपातः। (इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च) वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इति केवलसमासप्रकरणम्।

—: ० :—

परार्थाभिधानं वृत्तिः—प्रत्ययान्तर्भावेण, अपरपदार्थान्तर्भावेण वा यः विशिष्टोऽर्थः स 'परार्थः', सोऽभिधीयते येन तत्परार्थाभिधानमित्यर्थः।

लौकिकोऽलौकिकश्च—लोके प्रयोगार्हः—लौकिकः, यथा—'पूर्वं अम् भूत सु'। लोके प्रयोगाऽनर्हः—अलौकिकः, यथा—पूर्वं भूतः इत्यादि।

भूतपूर्वः—'पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'सह सुपा' इति समासे समासत्वात् सौ 'सुपो धातुः—'इति सुब्लुकि 'पूर्व भूत' इति जाते 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इत्यनेन पूर्व-भूतशब्दयोः उभयोरपि पूर्वनिपाते प्राप्ते 'भूतपूर्वे चरट्' इति निर्देशात् भूतशब्दस्यैव पूर्वनिपाते 'एकदेशविकृत'न्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'भूतपूर्वः' इति।

इति केवलसमासप्रकरणम्।

—: ० :—

सह—सुबन्त का सुबन्त के साथ समास विकल्प से होता है।

इवेन—इव के साथ समास होने पर विभक्ति का लोप नहीं होता है।

केवलसमासप्रकरण समाप्त।

—: ० :—

अथ अव्ययीभावसमासप्रकरणम्

अव्ययीभावः २।१।५। अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात्। **अव्ययं विभक्ति-समीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु** २।१।६ विभक्त्यर्थादिषु वर्तमान-मव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ—हरि ङि अधि इति स्थिते **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** १।२।४३ समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्। **उपसर्जनं पूर्वम्** २।२।३० समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। इत्यधेः प्राक् प्रयोगः, सुपो लुक्। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्, प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः। अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात्सुपो लुक्। अधिहरि। **अव्ययीभावश्च** २।४।१८। अयं नपुंसकं स्यात्। **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** २।४।८३। अदन्ता-दव्ययीभावात्सुपो न लुक् तस्य तु पंचमीं विना अमादेशश्च स्यात्। गाः पातीति

अव्ययं—विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्धि-अर्थाभाव-अत्यय-असम्प्रति-शब्द-प्रादुर्भाव-पश्चात्-यथा-आनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्य-अन्त-वचनेषु, इति पदच्छेदः। **अधिहरि**—हरौ इत्यधिहरि। 'हरि ङि अधि' इत्यलौकिक-विग्रहे 'अव्ययं विभक्ति—' इति समासे सुब्लुकि 'प्रथमानिर्दिष्टं—' इति अधीत्य-स्योपसर्जनसंज्ञायाम् 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति तस्य पूर्वप्रयोगे समुदायात् समास-त्वात् सौ अव्ययत्वात् सोर्लुकि 'अधिहरि' इति।

अव्ययी—तत्पुरुष समास से पहले अव्ययीभाव का अधिकार है—अर्थात् अव्ययीभाव समास में समासविधायक सूत्र से समास के साथ-साथ अव्ययीभाव संज्ञा भी होती है। **अव्ययं**—विभक्त्यर्थादि में वर्तमान अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ नित्य ही समस्त होता है। **प्रथमा**—समास विधायक शास्त्र घटित प्रथमान्त पदनिर्दिष्ट की उपसर्जन संज्ञा होती है। **उप**—उपसर्जनसंज्ञक पद का समास में पूर्वप्रयोग होता है।

अव्ययी—अव्ययीभाव समास नपुंसकलिंग होता है।

नाव्ययी—अदन्त अव्ययीभाव समास से पर 'सुप्' का लुक् नहीं होता,

गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम्। **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४।** अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात्। अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा। कृष्णस्य समीपम्, उपकृष्णम्। उपकृष्णेन। मद्राणां समृद्धिः समुद्रम्। यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम्। अर्थमर्थं प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति। **अव्ययीभावे चाकाले ६।३।८१।** सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले। हरेः सादृश्यं सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत्सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि। **नदीभिश्च २।१।२०।** नदीभिः। सह संख्या समस्यते **(समाहारे चायमिष्यते)** पञ्चगङ्गम्। द्वियमुनम्। **तद्धिताः ४।१।७६** आपञ्चमसमाप्तेर-

---

उपकृष्णम्—'कृष्ण ङस् उप' इति विग्रहे 'अव्ययम्–' इति समासे सुपो लुकि 'प्रथमानिर्दिष्टम्–' इति 'उप' इत्यस्योपसर्जनसंज्ञायां पूर्वप्रयोगे समुदायात् टाविभक्तौ 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' इति टाविभक्तिस्थाने अमादेशे पूर्वरूपे 'उपकृष्णम्' इति। अमादेशाऽभावपक्षे इनादेशे गुणे 'उपकृष्णेन' इति। एवं सप्तमीविभक्तावपि–'उपकृष्णम्–उपकृष्णे' इति बोध्यम्। प्रथमाविभक्तौ तु 'अव्ययीभावश्च' इत्यव्ययत्वात् सुब्लुकि प्राप्ते 'नाऽव्ययीभावात्– इति तन्निषेधे सोरमि पूर्वरूपे 'उपकृष्णम्' इत्येकमेव रूपं भवति।

किन्तु पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर सभी विभक्तियों के स्थान में 'अम्' आदेश हो जाता है।

तृती—अदन्त अव्ययीभाव समास से पर तृतीया और सप्तमी विभक्ति को विकल्प से 'अम्' आदेश हो जाता है। **अव्ययी**—कालवाचक शब्द को छोड़कर अव्ययीभाव समास में 'सह' को 'स' आदेश होता है।

नदी—नदीवाचक सुबन्त के साथ संख्यावाचक समर्थ सुबन्त का विकल्प से समास होता है। **समा**—समाहार में भी नदीवाचक सुबन्त का समास होता है।

तद्धिताः—पंचम अध्याय के समाप्तिपर्यन्त इस सूत्र का अधिकार है।

विकारोऽम् । **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** ५।४।१०७। शरदादिभ्यष्टच् स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदः समीपमुपशरदम्। प्रतिविपाशम् । (**जराया जरश्च**) । उपजरसमित्यादि । **अनश्च** ५।४।१०८। अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात् । **नस्तद्धिते** ६।४।१४४। नान्तस्य भस्य टेर्लोपः स्यात् तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् । **नपुंसकादन्यतरस्याम्** ५।४।१०९। अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् । उपचर्मम् । उपचर्म । **झयः** ५।४।१११। झयन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात् । उपसमिधम् । उपसमित् ।

इति अव्ययीभावसमासप्रकरणम् ।

—:०:—

पञ्चगङ्गम्—पञ्चानां गङ्गानां समाहारः इति विग्रहे 'नदीभिश्च' इति सूत्रेण समासे सुब्लुकि 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे 'पञ्चगङ्गा' इति जाते 'अव्ययीभावश्च' इत्यव्ययत्वात् 'ह्रस्वो नपुंसके-' इति ह्रस्वत्वे समासत्वात् सौ 'नाव्ययीभावात्-' इति सोरमि पूर्वरूपे 'पञ्चगङ्गम्' इति ।

अध्यात्मम्—अव्ययीभावसमासे अधीत्यस्योपसर्जनसंज्ञायां पूर्वप्रयोगे यणि च कृते 'अध्यात्मन्' इति स्थिते 'अनश्च' इति टचि भत्वात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे समुदायात् सौ 'नाव्ययीभावात्—' इति सोरमि पूर्वरूपे 'अध्यात्मम्' इति ।

इति अव्ययीभावसमासप्रकरणम् ।

—:०:—

अव्य—अव्ययीभाव समास में शरदादि से समासान्त टच् प्रत्यय होता है।

जराया—अव्ययीभाव समास होने पर जरा शब्द को जरस् आदेश और चकारात् 'टच्' प्रत्यय भी होता है ।

अनश्च—अन्नन्त अव्ययीभाव से भी समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है ।

नस्त—तद्धित प्रत्यय के परे नान्त भसंज्ञक 'टि' का लोप होता है ।

नपुं—अन्नन्त जो क्लीब, तदन्त जो अव्ययीभाव, उससे समासान्त 'टच्' प्रत्यय विकल्प से होता है । **झयः**—झयन्त अव्ययीभाव समास से समासान्त 'टच्' प्रत्यय विकल्प से होता है । अव्ययीभावसमासप्रकरण समाप्त ।

—:०:—

अथ तत्पुरुषसमासप्रकरणम्

तत्पुरुषः २।१।२२। अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः। **द्विगुश्च** २।१।२३। द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्। **द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** २।१।२४। द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः इत्यादि। **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** २।१।३०। तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थशब्देन च सह वा प्राग्वत्। शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः। धान्येनार्थो धान्यार्थः। तत्कृतेति किम्? अक्ष्णा काणः। **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** २।१।३२। कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातो हरित्रातः। नखैर्भिन्नो नखभिन्नः 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्याऽपि ग्रहणम्'। नखनिर्भिन्नः। **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** २।१।३६। चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्।

द्विगुरपि—'तद्धितार्थोत्तरपद-' इति वक्ष्यमाणसमासस्य 'संख्यापूर्वो द्विगुः' इति द्विगुसंज्ञा विधास्यते, स द्विगुसमासोऽपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यादिति भावः। एतत्सूत्राऽभावे एकसंज्ञाधिकारात् द्विगुसंज्ञया तत्पुरुषसंज्ञा बाध्यतेति तात्पर्यम्।

नखनिर्भिन्नः—नखैर्भिन्नः इति विग्रहे 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वपदस्यापि ग्रहणम्' इति परिभाषाबलात् 'कर्तृकरणे कृताबहुलम्' इति समासे सुब्लुकि विभक्त्यादिकार्ये 'नखनिर्भिन्नः' इति।

तत्पुरुषः—बहुव्रहि समास से पूर्व तत्पुरुष का अधिकार है।

द्विगुश्च—द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञक है।

द्विती—द्वितीयान्त पद श्रितादि प्रकृतिक सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होता है। **तृती**—तृतीयान्त पद तृतीयान्तार्थकृत गुणवचन के साथ और अर्थ शब्द के साथ विकल्प से समस्त होता है।

कर्तृ—कर्ता तथा कर्म में जो तृतीयान्त पद वह विकल्प से समस्त होता है।

कृद्—कृद् ग्रहण में गतिसंज्ञक तथा कारक पूर्वपद का भी ग्रहण होता है।

चतु—चतुर्थ्यन्तार्थ वाचक समर्थ सुबन्त के साथ अर्थादि प्रकृतिक सुबन्त विकल्प से समस्त होता है।

यूपाय दारु यूपदारु । तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः । तेनेह न—रन्धनाय स्थाली । (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्) द्विजार्थः सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् । **पञ्चमी भयेन** २।१।३७। चोराद्भयं चोरभयम् । **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** २।१।३९ । **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** ६।३।२ । अलुगुत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्यासादागतः । दूरादागतः । कृच्छ्रादागतः । **षष्ठी** २।२।८ । सुबन्तेन प्राग्वत् । राजपुरुषः । **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** २।२।१ । अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसङ्ख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः । एकाधिकरणे किम् ? पूर्वश्छात्राणाम् । **अर्धं नपुंसकम्** २।२।२ ।

राजपुरुषः—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः । 'राजन् स् पुरुष स्' इत्यलौकिकविग्रहे 'षष्ठी' इति समासे सुब्लुकि 'राजन् पुरुष' इति स्थिते प्रत्ययलक्षणेन अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वात् 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे विभक्तिकार्ये 'राजपुरुषः' इति ।

अर्थेन—अर्थ शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त का नित्य समास और विशेष्य लिंगता भी होती है ।

पञ्चमी—भयवाचक समर्थ सुबन्त के साथ पंचम्यन्त का विकल्प से समास होता है ।

स्तोका—क्तान्तप्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ स्तोकादि का विकल्प से समास होता है ।

पञ्चम्याः—उत्तर पद के परे स्तोकादि से पर पञ्चमी का अलुक् होता है ।

षष्ठी—समर्थ सुबन्त के साथ षष्ठयन्त का समास होता है ।

पूर्व—यदि एकत्व संख्यावाची अवयवी रहे तो अवयववाची के साथ पूर्वादि समर्थ सुबन्त का विकल्प से समास होता है ।

अर्द्धं—नित्य नपुंसक समासवाची अर्ध शब्द का सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है ।

समासवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली । **सप्तमी शौण्डैः** २।१।४०। सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः इत्यादि । द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः । **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** २।१।५०। संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम् । पूर्वेषुकामशमी । सप्तर्षयः । तेनेह न । उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः । **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** २।१।५१। तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्यां शालायां भवः—पूर्वा शाला इति समासे जाते । (**सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः**) **दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः** ४।२।१०७। अस्माद्भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम् । **तद्धितेष्वचामादेः** ७।१।११७। ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । यस्येति च । पौर्वशालः । पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ (द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे

पौर्वशालः—पूर्वस्यां शालायां भवः इति लौकिकविग्रहे 'तद्धितार्थे'ति समासे सुब्लुकि 'दिक्पूर्वपदात्–' इति ञप्रत्यये 'यस्येति च' इत्यलोपे 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धौ 'सर्वनाम्नो–' इति पूर्वाशब्दस्य पुंवत्त्वे विभक्तिकार्ये 'पौर्वशालः' इति ।

सप्तमी—शौण्डादि प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ सप्तम्यन्त पद का विकल्प से समास होता है ।

दिक्—दिशावाची और संख्या वाची शब्दों का संज्ञा में ही समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है ।

तद्धि—तद्धितार्थ के विषय में उत्तर पद के परे समाहार वाच्य रहने पर दिशा वाचक और संख्या वाचक का विकल्प से समास होता है ।

सर्व—सर्वनाम शब्द को वृत्तिमात्र में पुंवद्भाव होता है ।

दिक्—भवादि अर्थों में दिक्पूर्वपदक समास से असंज्ञा में 'ञ' प्रत्यय होता है ।

तद्धिते—ञित्, णित् तद्धित प्रत्यय के परे अचों के मध्य में आदि अच् को वृद्ध्यादेश होता है ।

द्वन्द्व—समास चरमावयव उत्तर पद के परे अवान्तर द्वन्द्व और तत्पुरुष को नित्य ही समास होता है ।

नित्यसमासवचनम्) । गोरतद्धितलुकि ५।४।९२। गोन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि । पञ्चगवधनः । तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १।२।४२। सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५२। तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् । द्विगुरेकवचनम् २।४।१ द्विग्वर्थः समाहारः एकवत् स्यात् । स नपुंसकम् २।४।१७। समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम् । विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५७। भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलं

पञ्चगवधनः—पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदबहुव्रीहौ अवान्तर-पञ्चन्-गोशब्दयोः 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति विकल्पेन समासे प्राप्ते 'द्वन्द्व-तत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' इति धनशब्दे उत्तरपदे परे पूर्वयोः नित्यसमासे सुब्लुकि प्रत्ययलक्षणेन अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वात् पंचन्शब्दस्य नस्य लोपे 'गोरतद्धितलुकि' इति पञ्चगोशब्दात् टचि अनुबन्ध-लोपे अवादेशे च कृते अवान्तरतत्पुरुषे जाते पञ्चगव धन सु इति स्थिते बहुव्रीहिसमासस्यापि प्रातिपदिकत्वात् धनशब्दोत्तरसोर्विभक्तेर्लुकि समुदायात् सौ रुत्वे विसर्गे 'पञ्चगवधनः' इति ।

पञ्चगवम्—पञ्चानां गवां समाहारः इति विग्रहे 'तद्धितार्थोत्तरपद— इति समासे सुब्लुकि प्रत्ययलक्षणेन पदत्वान्नलोपे 'गोरतद्धितलुकि' इति टचि टचयोर्लोपे अवादेशे 'संख्यापूर्वो द्विगुः' इति द्विगुत्वे 'द्विगुरेकवचनम्' इत्येकवद्भावे सौ 'स नपुंसकम्' इति नपुंसकत्वात् सोरमि पूर्वरूपे 'पंचगवम्' इति ।

गोर—तद्धित लुक् को छोड़कर गोन्त तत्पुरुष से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है । तत्पुरुष—समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारय संज्ञक होता है ।

संख्या—'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्रविहित संख्यापूर्वक समास द्विगुसंज्ञक होता है । द्विगु—द्विगु अर्थक समाहार एकवत् होता है ।

स न—समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक लिंग होता है ।

विशे—विशेषण और विशेष्य समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है ।

नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्—कृष्णसर्पः । क्वचिन्न—रामो जामदग्न्यः । **उपमानानि सामान्यवचनैः** २।१।५५। घन इव श्यामो घनश्यामः। **(शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्)** शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः । **नञ्** २।२।६। नञ् सुपा सह समस्यते । **नलोपो नञः** ६।३।७३ नञो नस्य लोपः स्यादुत्तरपदे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः । **तस्मान्नुडचि** ३।३।४७ । लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात् । अनश्वः । नैकधेत्यादौ तु नशब्देन सह 'सुप् सुपे'ति समासः । **कुगतिप्रादयः** २।२।१८। एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः । **ऊर्यादिच्विडाचश्च** १।४।६१। ऊर्यादयः च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञाः स्युः । ऊरीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य । सुपुरुषः । **(प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया)** । प्रगत आचार्यः प्राचार्यः । **(अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया)** । अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे । एकविभक्ति चापूर्व-

---

अनश्वः—'न अश्वः' इति विग्रहे 'नञ्' इति समासे सुब्लुकि नञः पूर्वनिपाते 'नलोपो नञः' इति नस्य लोपे 'तस्मान्नुडचि' इति अश्वगताकारस्य नुटि उटि गते विभक्त्यादिकार्ये 'अनश्वः' इति ।

उपमा—उपमानवाची सुबन्त, समानाधिकरण सामान्यर्थवाचक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त होता है ।

शाक—शाक-पार्थिवादि की सिद्धि के लिये उत्तर पद का लोप होता है।

नञ्—नञर्थक का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है ।

न लोपो—उत्तर पद के परे नञ् के नकार का लोप होता है ।

तस्मा—लुप्त नकार से पर अजादि उतर पद को नुट् होता है ।

कुगति—कु-गति और प्रादि उपसर्गों का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य ही समास होता है ।

ऊर्या—ऊर्यादि तथा च्व्यन्त और डाजन्त शब्दों की क्रिया के योग में गतिसंज्ञा होती है ।

प्रादयो—गत्याद्यर्थक प्रादि का प्रथमान्त के साथ नित्य समास होता है ।

अत्या—क्रान्ताद्यर्थक अत्यादि का द्वितीयान्त के साथ नित्य समास होता है।

एक—विग्रह में नियत विभक्त्यन्त की उपसर्जन संज्ञा होती है किन्तु

निपाते १।२।४४। विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपातः। **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** १।२।४८। उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः (**अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया**)। अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः। **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या**) परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः। **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या**) निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः। **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** ३।१।९२। सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्। **उपपदमतिङ्** २।२।१९। उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। अतिङ् किम्? मा भवान् भूत्। माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्। "गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः" व्याघ्री। अश्वक्रीती। कच्छपीत्यादि। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** ५।४।८६। सङ्ख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यो

कुम्भकारः—कुम्भं करोतीत्यर्थे 'कर्मण्यण्' इत्यणि 'कुम्भ अम् कृ अण्' इत्यलौकिकविग्रहे 'अचोऽञ्णिति' इति वृद्धौ 'तत्रोपपद–' इति कुम्भ शब्दस्योपसर्जनसंज्ञायाम् 'उपपदमतिङ्' इति समासे सुब्लुकि विभक्त्यादिकार्ये 'कुम्भकारः' इति।

उसका पूर्वनिपात नहीं होता है।

गोस्त्रि—उपसर्जन गोशब्द और स्त्री प्रत्ययान्त तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है।

अवादयः—क्रुष्ट आदि अर्थों में तृतीयान्त के साथ अवादि का नित्य ही समास होता है।

गति—गति संज्ञक, कारक संज्ञक तथा उपपद संज्ञक का सुबुत्पत्ति से पूर्व ही कृदन्त के साथ समास होता है।

तत्पुरुष—संख्यादि तथा अव्ययादि अंगुल्यन्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

निरङ्गुलम् । अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७। एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्संख्याव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्। रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९। एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्चाऽहोरात्रः। सर्वरात्रः। संख्यातरात्रः। सङ्ख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्। द्विरात्रम्। त्रिरात्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** ५।४।९१। एतदन्तात्तत्पुरुषात् टच् स्यात्। परमराजः। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** ६।३।४६। महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे। महाराजः। प्रकारवचने जातीयर्। महाप्रकारो महाजातीयः। द्व्यष्टनः **सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** ६।३।४७। आत्स्यात्। द्वौ च दश च द्वादश। अष्टाविंशतिः। **त्रेस्त्रयः**६।३।४८। त्रयोदश।

परमराजः—परमश्चासौ राजा परमराजः। अत्र 'सन्महत्' इति समासे सुब्लुकि 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टचि भत्वात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे विभक्तिकार्ये 'परमराजः' इति।

महाराजः—महांश्चाऽसौ राजा महाराजः। अत्र 'सन्महत्—' इति समासे सुब्लुकि 'राजाहःसखिभ्यष्टच्—' इति टचि भत्वात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे 'आन्महतः' इत्यात्वे विभक्त्यादिकार्ये 'महाराजः' इति।

अहः—अहरादि, संख्यादि तथा अव्ययादि पूर्वपदक रात्रि शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

रात्रा-रात्रि, अह्न तथा अहःशब्दान्त द्वन्द्व और तत्पुरुष पुल्लिंग होता।

संख्या—संख्यापूर्वक रात्र शब्द नपुंसकलिंग होता है।

राजा—राजन् और अहन् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है।

आन्म—समानाधिकरण उत्तर पद में हो या जातीयर् प्रत्यय पर में हो तो महत् शब्द को आकारान्त आदेश होता है।

द्व्यष्ट—संख्या के परे द्वि और अष्टन् शब्द को आत्व होता है, परन्तु बहुव्रीहि में तथा अशीति शब्द के परे आत्व नहीं होता है।

त्रेस्त्रयः—संख्या के परे 'त्रि' शब्द को त्रयस् आदेश होता है, परन्तु

त्रयोविंशतिः। त्रयस्त्रिंशत्। परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।४।२६। एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली। (द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः)। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः पुरोडाशः। प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।४।४। एतौ समस्येते, अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। अलङ्कुमार्यै अलङ्कुमारिः। अत एव ज्ञापकात्समासः। निष्कौशम्बिः। अर्धर्चाः पुंसि च १।४।३। अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः। अर्धर्चम्। एवं ध्वजतीर्थशरीरमण्डपीयूषदेहाङ्कुशपात्रसूत्रादयः। सामान्ये नपुंसकम्। मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्।

इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम्।

:०:—

अलङ्कुमारिः—अलङ्कुमार्यैः—अलङ्कुमारिः। अत्र 'दिगुप्राप्तापन्नालम्—' इति ज्ञापकात् समासे परपदलिङ्गत्वनिषेधे च कृते 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इत्युपसर्जनसंज्ञायां 'गोस्त्रियोः' इति ह्रस्वे विभक्त्यादिकार्ये 'अलङ्कुमारिः' इति।

इति तत्पुरुषमासप्रकरणम्।

—:०:—

बहुव्रीहि में तथा अशीति के परे त्रयस् आदेश नहीं होता है।

पर—द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर पद के समान ही लिंग होता है।

द्विगु—द्विगु समास तथा प्राप्त, आपन्न और अलम् पूर्वपदक समास एवं गतिसमास में पर पद के समान लिंग नहीं होता है।

प्राप्ता—प्राप्त और आपन्न शब्द द्वितीयान्त के साथ समस्त होता है।

अर्ध—अर्धर्चादि गण में पठित शब्द पुंलिंग और नपुंसकलिंग में भी प्रयुक्त होते हैं

सामान्ये—अर्थात् किसी लिंग-विशेष की विवक्षा नहीं करके लिङ्गसामान्य की ही विवक्षा हो तो नपुंसकलिंग होता है।

तत्पुरुषसमासप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्

शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३। अधिकारोऽयं प्राग् द्वन्द्वात् । **अनेकमन्यपदार्थे** २।२।२४। अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः। **सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ** २।२।३५।सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । **हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्** ६।३।९। हलन्तादन्ताच्च सप्तम्या अलुक् । कण्ठे कालः । प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः । ऊढरथोऽनड्वान् । अपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरिः । वीरपुरुषको ग्रामः (**प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः**) । प्रपतितपर्णः प्रपर्णः(**नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः**)। अविद्यमानपुत्रोऽपुत्रः । **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** ६।३।३४ उक्तपुंस्कादनूङ ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिर्निपातनात्पञ्चम्या अलुक् षष्ठयाश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्क

शेषः—'द्वितीयाश्रिते' त्यादिसूत्रेण यस्य त्रिकस्य (विभक्तेः) विशिष्यसमासो नोक्तः, स शेषः—प्रथमान्त इत्यर्थः ।

शेषो—द्वन्द्व समास से पूर्व बहुव्रीहि का अधिकार होता है ।

अने—अन्य पदार्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्त विकल्प से समस्त होता है और बहुव्रीहि समास कहलाता है ।

सप्त—सप्तम्यन्त और विशेषण पद का बहुव्रीहि में पूर्वनिपात होता है ।

हल—संज्ञा में हलन्त तथा अदन्त से पर सप्तमी का लुक् नहीं होता है ।

प्रादि—प्रादि से पर जो धातुज (पतितादि) तत्प्रकृतिभूत जो प्रथमान्त, तदन्त जो प्रपतितादि पद, उनका पदान्तर के साथ समास होता है और पतितादि उत्तर पद का विकल्प से लोप हो जाता है ।

नञो—नञ् से पर अस्त्यर्थक सुबन्त का बहुव्रीहि समास होता है और उत्तरपदस्थ अस्त्यर्थक शब्द का विकल्प से लोप हो जाता है ।

स्त्रियाः—भाषितपुंस्क से पर ऊङ् प्रत्यय का अभाव है जिसमें, ऐसा जो स्त्रीवाचक शब्द, उसका पुंवाचक की तरह रूप होता है, समानाधिकरण

तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। गोस्त्रियो-रितिह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्यः। अनुङ् किम् ? वामोरूभार्यः। पूरण्यां तु **अप्पूरणीप्रमाण्योः** ५।४।११६। पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्य-न्ताच्च बहुव्रीहेरप्स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपंचमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य सः स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम् कल्याणीप्रिय इत्यादि। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्** ५।४।११३। स्वाङ्गवाचिसक्थ्य-क्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात् दीर्घसक्थः। जलजाक्षी। स्वाङ्गात्किम् ? दीर्घ-सक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।

चित्रगुः—'चित्रा गौर्यस्य' इति विग्रहे 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुब्लुकि 'स्त्रियाः पुंवत्—' इति चित्राशब्दस्य पुंवद्भावे 'एकविभक्तिचाऽपूर्वनिपाते' इति गोशब्दस्य उपसर्जन संज्ञायां 'गोस्त्रियोः' इति गोशब्दस्य ह्रस्वत्वे विभक्तिकार्ये' चित्रगुः' इति।

कल्याणीपञ्चमा—पंचानां पूरणीति विग्रहे 'तस्य पूरणे डट्' इति डटि 'नान्तात् संख्यादेर्मट्' इति मटि मलोपे टित्वात् ङीपि यस्येति चेति अलोपे पंचमी इति। ततः 'कल्याणी सु पंचमी सु' इति विग्रहे समासे सुब्लुकि 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्त्यादिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

जलजाक्षी—जलजे इव अक्षिणी यस्याः इति विग्रहे अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुब्लुकि 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः—' इति षचि षच्योर्लोपे भत्वात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे षित्वात् ङीषि अनुबन्धलोपे 'यस्येति च' इत्यलोपे विभक्तिकार्ये 'जलजाक्षी' इति।

स्त्रीलिंग उत्तर पद के परे, किन्तु पूरण प्रत्यायान्त और प्रियादि उत्तर पद के परे यह पुंवद्भाव नहीं होता है।

अप्पू—पूरणार्थ प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिंग, तदन्त बहुव्रीहि से और प्रमाण्यन्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय होता है। **बहु**—स्वांगवाची सक्थ्यन्त और अक्ष्यन्त बहुव्रीहि से समासान्त षच् प्रत्यय होता है।

द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः ५।४।११। आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः। **अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः** ५।४।११७। आभ्यां लोम्नोऽप्स्याद्बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः। **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** ५।४।१३८। हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद्बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिपादः। कुसूलपादः। **संख्यासुपूर्वस्य** ५।४।१४०। पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्। **उद्विभ्यां काकुदस्य** ५।४।१४८। लोपः स्यात्। उत्काकुत्। विकाकुत्। **पूर्णाद्विभाषा** ५।४।१४९। पूर्णकाकुत्। पूर्णकाकुदः। **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः** ५।४।१५०। सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते सुहृन्मित्रम्। दुर्हृन्मित्रम्। **उरःप्रभृतिभ्यः कप्** ५।४।१५१। **सोऽपदादौ** ८।३।३८। पाशकल्पककाम्येषु विसर्गस्य सः। **कस्कादिषु च** ८।३।४८ एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः

द्विमूर्धः—द्वौ मूर्धानौ यस्येति विग्रहे समासे सुब्लुकि 'द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः' इति षप्रत्यये 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे विभक्त्यादिकार्ये 'द्विमूर्धः' इति।

द्वित्रि द्वि-त्रि शब्द से पर मूर्धन् शब्द से बहुव्रीहि में 'ष' प्रत्यय होता है।

अन्तर्बहि—अन्तर और बहिस् शब्द से पर लोमन् शब्द से अप् प्रत्यय होता है।

पादस्य—हस्त्यादि भिन्न उपमानवाची से पर पादशब्दान्त प्रत्यय का बहुव्रीहि में लोप हो जाता है। **संख्या**—'संख्या' तथा 'सु' पूर्वक पादशब्दान्त प्रत्यय का बहुव्रीहि में लोप हो जाता है।

उद्वि—'उत् और 'वि' उपसर्ग से पर काकुद शब्दान्त प्रत्यय का बहुव्रीहि में लोप हो जाता है। **पूर्णाद्**—'पूर्ण शब्द से पर काकुदशब्दान्त प्रत्यय का बहुव्रीहि में विकल्प से लोप होता है।

सुहृद्—मित्र और अमित्र अर्थ में सुहृत् और दुर्हृत् निपातन होता है। **उरः**—'उरः' प्रभृत्यन्त बहुव्रीहि से 'क' प्रत्यय होता है।

सोऽप—पाश, कल्प, क तथा काम्य प्रत्यय के परे विसर्जनीय के स्थान में 'स्' आदेश होता है।

कस्का—कस्कादि गणपठित जो शब्द, उनमें इण् से उत्तर विसर्ग के स्थान में षत्व होता है और इण् से अनुत्तर विसर्ग के स्थान में सत्व होता है।

स्यादन्यत्र तु सः। इति सः, व्यूढोरस्कः। इणः षः ८।३।३९। इण उत्तरस्य विसर्गस्य षः पाशकल्पककाम्येषु परेषु। प्रियसर्पिष्कः। निष्ठा २।२।३६। निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। युक्तयोगः। शेषाद्विभाषा ५।४।१५४। अनुक्तसमासान्तशेषाद्बहुव्रीहेः कप् वा स्यात्। महायशस्कः। महायशाः।

इति बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्।

—:०:—

महायशस्कः—महत् यशो यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिसमासे सुब्लुकि 'आन्महतः—' इत्यात्वे 'शेषाद्विभाषा' इति कपि अनुबन्धलोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'सोऽपदादौ' इति विसर्गस्य सत्वे 'महायशस्कः' इति। कपोऽभावे 'अत्वसन्तस्ये'ति दीर्घे 'महायशाः' इति।

इति बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्।

—:०:—

इणः—पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय के परे इण् से पर विसर्ग के स्थान में षत्व होता है।

निष्ठा—बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त शब्द का पूर्व निपात होता है।

शेषा—अनुक्त समासान्त शेषाधिकारस्थ बहुव्रीहि से समासान्त 'क' प्रत्यय विकल्प से होता है।

बहुव्रीहि समासप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ द्वन्द्वसमासप्रकरणम्

चार्थे द्वन्द्वः २।२।२९। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः। समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः। तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः। 'भिक्षामट गां चानय' इति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात्समासो न। धवखदिरौ छिन्धि इति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः। संज्ञापरिभाषम्। समूहः समाहारः। **राजदन्तादिषु परम् २।२।६१** एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्। दन्तानां राजा राजदन्तः। **(धर्मादिष्वनियमः)।** अर्थधर्मौ धर्मार्थावित्यादि। **द्वन्द्वे घि २।२।३२।** द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात्। हरश्च हरिश्च हरिहरौ। **अजाद्यदन्तम् २।२।३३।** इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ। **अल्पाच्तरम् २।२।३४।** शिवकेशवौ। **पिता मात्रा १।२।७०।** मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च

हरिहरौ—हरश्च हरिश्चेति विग्रहे 'चार्थे द्वन्द्वः' इति समासे सुब्लुकि 'द्वन्द्वे घि' इति घिसंज्ञकस्य हरिशब्दस्य पूर्वनिपाते विभक्त्यादिकार्ये उक्तं रूप सिद्धम्।

शिवकेशवौ—शिवश्च केशवश्चेति विग्रहे द्वन्द्वसमासे सुब्लुकि 'अल्पाच्तरम्' इति शिवशब्दस्य पूर्वनिपाते विभक्त्यादिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

चार्थे—चार्थ अर्थात् इतरेतर योग और समाहार अर्थ में वर्तमान अनेक समर्थ सुबन्त का समास विकल्प से होता है और वह समास द्वन्द्व समास कहलाता है। **राज**—राजदन्तादि में पूर्वप्रयोगार्हं का पर प्रयोग होता है।

धर्मा—धर्मादि गणपठित शब्दों में पूर्वनिपात का कोई नियम नहीं है।

द्वन्द्वे—द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक शब्द का पूर्व निपात होता है।

अजा—द्वन्द्व समास में अजादि जो अदन्त शब्द, उसका पूर्व निपात होता है। **अल्पा**—द्वन्द्व समास में अल्प अच् का पूर्व निपात होता है।

पिता—द्वन्द्व समास में मातृ शब्द के साथ उपादान पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है।

पिता च पितरौ, मातापितरौ वा। द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२। एषां द्वन्द्व एकवत्। पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्वारोहम्। द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ५।४।१०६। चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात् समाहारे। वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ।

इति द्वन्द्वसमासप्रकरणम्।

—:०:—

पितरौ—माता च पिता चेति पितरौ। 'मातृ सु पितृ सु' इत्यलौकिक-विग्रहे 'चार्थे द्वन्द्वः' इति समासे सुब्लुकि 'पिता मात्रा' इति पितृशब्दस्य शेषे मातृशब्दस्य लोपे च कृते समासत्वात् प्रथमाद्विवचने औ 'ऋतो ङिसर्वनाम-स्थानयोः' इति गुणे रपरत्वे 'पितरौ' इति। एकशेषाऽभावे 'पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते' इति स्मृत्या मातुरभ्यर्हितत्वात् 'अभ्यर्हितं चे' ति मातृ-शब्दस्य पूर्वनिपाते 'आनङ्ऋतो द्वन्द्वे' इति मातृशब्दस्य पितृशब्दे परे आनङि अनुबन्धलोपे 'मातान् पितृ' इति जाते 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे 'मातापितृ' इति, तस्मात् औ 'ऋतो ङि–' इति गुणे रपरत्वे 'मातापितरौ' इति।

इति द्वन्द्वसमासप्रकरणम्।

—:०:—

द्वन्द्व—प्राण्यंग, तूर्यांग तथा सेनांग वाची शब्द द्वन्द्व समास में एकवत् होता है।

द्वन्द्वा—चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त तथा हकारान्त द्वन्द्व से समासान्त टच् प्रत्यय होता है, समाहार में।

द्वन्द्व समास प्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ समासान्तप्रकरणम्

ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ५।३।७४। अ अनक्षे इति च्छेदः। **ऋगाद्यन्तस्य** समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः। अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। **अर्धर्चः**। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः। राजधुरा। अक्षे तु अक्षधूः। दृढधूरक्षः। सखिपथः। रम्यपथो देशः। **अक्ष्णोऽदर्शनात्** ५।४।७६। अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्तः। गवामक्षीव गवाक्षः। **उपसर्गादध्वनः** ५।४।८५। प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः। **न पूजनात्** ५।४।६९। पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः। सुराजा। अतिराजा। **इति समासान्तप्रकरणम्।**

—: ० :—

ऋगाद्यन्तस्य—ऋक्–पुर्–अप्–धुर्–पथिन्–एतदन्तस्येत्यर्थः।

अर्धर्चः—'ऋचोऽर्धम्' इति विग्रहे 'अर्धं नपुंसकम्' इति समासे सुब्लुकि 'ऋक्पूरब्धू—' इति समान्त–अकारप्रत्यये गुणे रपरत्वे 'अर्धर्चाः पुंसि च' इति पुंस्त्वे विभक्त्यादिकार्ये 'अर्धर्चः' इति।

सुराजा—सु=शोभनो राजेति विग्रहे 'कुगतिप्रादयः' इति प्रादिसमासे सुब्लुकि 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति प्राप्तटचः 'न पूजनात्' इति निषेधे समासत्वात् सौ अनङादिकार्ये 'सुराजा' इति। इति समासान्तप्रकरणम्।

—: ० :—

ऋक्पू—ऋक् शब्दान्त, पुर्शब्दान्त' अप् शब्दान्त, धुर् शब्दान्त तथा पथिन् शब्दान्त समास से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है, किन्तु अक्ष के धुरीवाचक जो धूः शब्द तदन्त समास में 'अ' प्रत्यय नहीं होता है।

अक्ष्णो—अदर्शनार्थक अक्षिशब्दान्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है। उप—उपसर्गादि अध्वन् शब्दान्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है। न पू–पूजनार्थक शब्दोत्तरवर्ती होने पर समासान्त प्रत्यय की प्रकृति के रूप में निर्दिष्ट राजन्, अहन् आदि शब्दों से समासान्त प्रत्यय नहीं होता है।

समासान्तप्रकरण समाप्त

—: ० :—

अथ तद्धिते साधारणप्रत्ययाः

समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२। इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत्। **अश्वपत्यादिभ्यश्च** ४।१।८४। एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। अश्वपतेरपत्यादि—आश्वपतम्। गाणपतम्। **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** ४।१।८५। दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात्। अणोऽपवादः। दितेरपत्यं दैत्यः। अदितेरादित्यस्य वा। **हलो यमां यमि लोपः** ७।४।६४ हलः परस्य यमो लोपः स्याद्वा यमि। इति यलोपः। आदित्यः। प्राजापत्यः। **(देवाद्यञञौ)** दैव्यम्, दैवम्। **(बहिषष्टिलोपो यञ्च)**

आश्वपतम्—अश्वपतेः अपत्यमिति विग्रहे 'तस्यापत्यम्' इत्यपत्यार्थे 'अश्वपत्यादिभ्यः' इत्यणि अनुबन्धलोपे 'कृत्तद्धिते'ति प्रातिपदिकत्वे सुपो लुकि जाते भत्वात् 'यस्येति च' इति इकारलोपे 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धौ तद्धितान्तत्वात् सौ सोरमि पूर्वरूपे 'आश्वपतम्' इति।

आदित्यः—अदितेः आदित्यस्य वा अपत्यम् आदित्यः। प्रथमपक्षे—अदिति-शब्दात् जातार्थे 'दित्यदित्यादि—' सूत्रेण ण्यप्रत्यये णगते आदिवृद्धौ 'यस्येति च'

सम—'प्राग्दिशो विभक्तिः' इस सूत्र पर्यन्त—समर्थानाम्, प्रथमात्, वा—इन तीनों पदों का अधिकार होता है।

अश्व—प्राग्दीव्यतीय (अपत्यादि) अर्थों में अश्वपत्यादि शब्दों से अण् प्रत्यय विकल्प से होता है।

दित्य—प्राग्दीव्यतीय अर्थों में दित्यादि तथा पत्युत्तर पद से ण्य प्रत्यय विकल्प से होता है।

हलो—हल् से पर यम् के परे यम् का लोप विकल्प से होता है।

देवा—प्राग्दीव्यतीय अर्थों में देव शब्द से यञ् तथा अञ् प्रत्यय विकल्प से होता है।

बहि—प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् शब्द से यञ् प्रत्यय और बहिष् की टी का लोप विकल्प से होता है।

बाह्यः । (ईकक् च) किति च ७।२।११८। किति तद्धिते चाचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । वाहीकः । (गोरजादिप्रसङ्गे यत्) गोरपत्यादि गव्यम् । उत्सादिभ्योऽञ् ४।२।८६। औत्सः ।

इति तद्धिते साधारणप्रत्ययाः ।

—: ० :—

इतीकारलोपे विभक्तिकार्ये 'आदित्यः' इति । द्वितीयपक्षेऽपि पूर्ववत् ण्ये आदिवृद्धौ 'यस्येति चे'त्यलोपे 'हलो यमां यमि लोपः' इति यलोपे विभक्तिकार्ये 'आदित्यः' इति ।

इति तद्धिते साधारणप्रत्ययाः ।

—: ० :—

ईकक् —प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् शब्द से ईकक् प्रत्यय भी होता है ।

किति—कित् तद्धित के परे अचों के मध्य में आदि अच् की वृद्धि होती है ।

गोर—प्राग्दीव्यतीय अर्थों में गो शब्द से अजादि प्रत्यय के प्रसंग में यत् प्रत्यय होता है ।

उत्सा - प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्सादि से अञ् प्रत्यय होता है ।

साधारणप्रत्ययप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ अपत्याधिकारप्रकरणम्

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४।१।८७। धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः। स्त्रैणः। पौंस्नः। **तस्यापत्यम्** ४।१।९२। षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः। **ओर्गुणः** ६।४।१४६। उवर्णान्तस्य भस्य गुणः स्यात् तद्धिते। उपगोरपत्यमौपगवः। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः। **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** ४।१।१६२। अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्। **एको गोत्रे** ४।१।९३। गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात्। उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः। **गर्गादिभ्यो यञ्** ४।१।१०५। गोत्रापत्ये। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। वात्स्यः। **यञञोश्च** ४।४।६४। गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते

स्त्रैणः - स्त्रीषु भवः, स्त्रियाः अपत्यम्, स्त्रीणां समूहः, वस्तुतस्तु—स्त्रीषु आसक्तः—स्त्रैणः। **पौंस्नः**—पुंसि भवः, पुंसां समूहः अथवा पुंसोऽपत्यम् पौंस्नः।

औपगवः—'उपगोः अपत्यम्' इति विग्रहे 'तस्यापत्यम्' इत्यणि अनुबन्धलोपे 'तद्धितेष्वचामादेः इत्यादिवृद्धौ 'ओर्गुणः' इति उकारस्य गुणे अवादेशे विभक्त्यादिकार्ये 'औपगवः' इति।

गार्ग्यः—गर्गस्य गोत्रापत्यमिति विग्रहे 'गर्गादिभ्यो यञ्' इति गर्गशब्दात् यञि अनुबन्धलोपे आदिवृद्धौ 'यस्येति च' इत्यलोपे विभक्तिकार्ये 'गार्ग्यः' इति।

स्त्रीपुंसा—धान्यानां भवने क्षेत्रे' इस सूत्र से पूर्व अर्थों में स्त्री शब्द से नञ् और पुम्स् शब्द से स्नञ् प्रत्यय विकल्प से होता है।

तस्या - षष्ठ्यन्त कृतसन्धि समर्थ सुबन्त से उक्त अणादि प्रत्यय तथा वक्ष्यमाण इञादि प्रत्यय विकल्प से होता है।

ओर्गु तद्धित प्रत्यय के परे उवर्णान्त भसंज्ञक को गुण होता है।

अपत्यं— अपत्यत्वेन विवक्षित पुत्र, पौत्रादि गोत्रसंज्ञक होते हैं।

एको—गोत्र में एक ही अपत्य प्रत्यय होता है।

गर्गादि गोत्रापत्य अर्थ में षष्ठ्यन्त गर्गादि समर्थ से यञ् प्रत्यय होता है।

यञ्—गोत्रापत्यकृत्य बहुत्व रहने पर यञन्त तथा अञन्तावयव यकाराऽकार का लुक् हो जाता है, किन्तु स्त्रीलिंग में लुक् नहीं होता।

बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः । **जीवति तु वंश्ये युवा** ४।१।१६३। वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात् । **गोत्राद् यून्यस्त्रियाम्** ४।१।९४। यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् । स्त्रियां तु न युवसंज्ञा । **यञिञोश्च** ४।१।१०१। गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक् स्यात् । **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ७।१।२। प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य इन्, छस्य ईय्, घस्य इय् स्युः । गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । दाक्षायणः । **अत इञ्** ४।१।९५। अदन्तं यत्प्रातिपदिकं तस्मादिञ् स्यात् अपत्येऽर्थे । दाक्षिः । **बाह्वादिभ्यश्च** ४।१।९६। बाहविः । औडुलोमिः । (**लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः**) । उडुलोमाः । आकृतिगणोऽयम् । **अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्** ४।१।१०४। ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे । विदस्य गोत्रं वैदः । वैदौ । विदाः । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः, पौत्रौ । पौत्राः । एवं दौहित्रादयः । **शिवादिभ्योऽण्** ४।१।११२। अपत्ये । शैवः । गाङ्गः । **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** ४।१।११४। ऋषिभ्यः—वासिष्ठः । वैश्वामित्रः ।

जीवति— वंश में पिता आदि के जीवित रहने पर पौत्रादि का अपत्य चतुर्थ–प्रपौत्रादि को युवसंज्ञा ही होती है न कि गोत्रसंज्ञा ।

गोत्रा–युवा अपत्य विवक्षित होने पर गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होता है और स्त्रीलिंग में युवसंज्ञा नहीं होती है ।

यञि— गोत्रार्थक यञन्त और इञन्त से फक् प्रत्यय होता है ।

आय - प्रत्ययादि भूत फादि को यथाक्रमेण आयनादि आदेश होता है ।

अत—अदन्त प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है ।

बाह्वा— बाह्वादि से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है ।

लोम्नो–लोमन्शब्द से बहुत्वविशिष्ट अपत्यार्थ में अकार प्रत्यय होता है ।

अनृ विदादि गणपठित ऋषिवाचक शब्दों से गोत्र अर्थ में और तत्-भिन्नार्थक शब्दों से अपत्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है । **शिवा**—शिवादि से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । **ऋष्य**—ऋष्यादि से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

अन्धकेभ्यः–श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः । वासुदेवः । कुरुभ्यः–नाकुलः । साहदेवः । **मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः** ४।१।११५ । सङ्ख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः । **स्त्रीभ्यो ढक्** ४।१।१२० स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात् । वैनतेयः । **कन्यायाः कनीन च** ४।१।११६ । चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च । **राजश्वशुराद्यत्** ४।१।१३७। **(राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्)** । **ये चाभावकर्मणोः** ६।४।१६८। यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राजन्यः । श्वशुर्यः । जातावेवेति किम् ? **अन्** ६।४।१६७। अन् प्रकृत्या स्यादणि परे । राजनः । **क्षत्राद् घः**

द्वैमातुरः– द्वयोर्मात्रोरपत्यमिति विग्रहे तद्धितार्थेति समासे सुब्लुकि 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' इति अणि मातुरुदादेशे रपरत्वे च कृते आदिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'द्वैमातुरः' इति । एवं षण्णां मातॄणामपत्यं 'षाण्मातुरः' इति ।

वैनतेयः—विनतायाः अपत्यमिति विग्रहे विनताशब्दात् 'स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढकि कगते 'आयनेयी–' इति ढस्य एयादेशे 'यस्येति च' इत्याकारलोपे 'किति च' इत्यादिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'वैनतेयः' इति ।

राजन्यः—क्षत्रियात् क्षत्रियायां स्वभार्यायामुत्पन्नो राजन्यः । राजन्-शब्दाद् 'राजश्वशुराद् यत्' इति यत्प्रत्यये तगते 'ये चाभावकर्मणोः' इति प्रकृतिभावात् टिलोपाभावे विभक्तिकार्ये 'राजन्यः' इति ।

राजनः—जातिमात्राऽभावे 'राज्ञः अपत्यम्' इति विग्रहे 'तस्यापत्यम्'

मातु– संख्यादि पूर्वक मातृ शब्द को उत् आदेश तथा उससे अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय भी होता है ।

स्त्रीभ्यो – स्त्री प्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ।

कन्या—कन्या शब्द को कनीन आदेश और चकारात् अपत्यार्थक अण् प्रत्यय भी होता है ।

राज—राजन् तथा श्वशुर शब्दों से यत् प्रत्यय होता है ।

ये चा—भाव और कर्मार्थक प्रत्यय से भिन्न यकारादि तद्धित प्रत्यय के परे 'अन्' प्रकृतिवत् होता है । अन्–अण् प्रत्यय के परे 'अन्' प्रकृतिवत् होता है ।

क्षत्रा – क्षत्र शब्द से अपत्य अर्थ में 'घ' प्रत्यय होता है—समुदाय से

४।१।१३८। क्षत्रियः। जाताविन्येव। क्षात्रिरन्यत्र। **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** ४।१।१४६। **ठस्येकः** ७।३।५०। अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात्। रैवतिकः। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** ४।१।१६८। जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये। पाञ्चालः। (**क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्**)। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः। (**पुरोरण् वक्तव्यः**) पौरवः। (**पाण्डोर्ड्यण्**) पाण्ड्यः। **कुरुनादिभ्यो ण्यः** ४।१।१७२। कौरव्यः। नैषध्यः। **ते तद्राजाः** ४।१।१७४। अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः। **तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम्** २।४।६२। बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् स्यात्। तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम्। इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः। इत्यादि। **कम्बोजाल्लुक्** ४।१।१७५। अस्मात्तद्राजस्य लुक् स्यात्। कम्बोजः। कम्बोजौ। (**कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्**)। चोलः। शकः। केरलः। यवनः। **इत्यपत्याधिकारः।**

—:०:—

इत्यणि णलोपे 'अन्' इत्यनः प्रकृतिभावे विभक्तिकार्ये 'राजनः' इति।

कौरव्यः—कुरोरपत्यं कुरूणां राजेति वा विग्रहे 'कुरुनादिभ्यो ण्यः' इति ण्यप्रत्यये वृद्धौ विभक्त्यादिकार्ये 'कौरव्यः' इति। इति अपत्याधिकारः।

—:०:—

जाति गम्यमान रहने पर। **रेव**—रेवत्यादि से अपत्य अर्थमें ठक्प्रत्यय होता है।

ठस्ये—अंग से पर 'ठ' को 'इक्' आदेश होता है। **जन**—जनपद वाचक जनपद के समान जो क्षत्रिय वाचक शब्द उससे अपत्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। **क्षत्रिय**—क्षत्रिय वाचक जनपद शब्द से राजा अर्थ में अपत्यवत् प्रत्यय होता है। **पूरो**—पूरु शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

पाण्डो—पाण्डु शब्द से अपत्य अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होता है।

कुरु-जनपद वाची तथा क्षत्रिय वाची कुरु शब्द तथा नकारादि शब्दों से अपत्य अर्थ में ण्य प्रत्यय होता है। **ते तद्**—'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' इत्यादि सूत्र से विहित अञ् आदि प्रत्यय की तद्राज संज्ञा होती है। **तद्रा**—तद्राज प्रत्ययार्थकृत बहुत्व रहने पर बहुत्व अर्थ में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का स्त्रीलिंग से भिन्न में लुक् हो जाता है। **कम्बो**—कम्बोज से पर तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है। **कम्बो**—पूर्वोक्त सूत्र से कम्बोजादि से पर तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है। अपत्याधिकार समाप्त।

—:०:—

अथ चातुरर्थिकः (रक्ताधिकारः)

तेन रक्तं रागात् ४।२।१। अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति रागः । कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम् । **नक्षत्रेण युक्तः कालः** ४।२।३। अण् स्यात् (**तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्**) । पुष्येण युक्तं पौषमहः । **लुबविशेषे** ४।२।४। पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् षष्ठिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः । **दृष्टं साम** ४।२।७। तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम । **वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ** ४।२।९। वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम् । **परिवृतो रथः** ४।२।१०। अस्मिन्नर्थेऽण्प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो

तेन रक्तं—रागवाचकात् तृतीयान्तात् समर्थात् रक्तमित्यस्मिन्नर्थे अण्प्रत्ययः स्यादित्यर्थः ।

काषायम्—कषायेण रक्तं वस्त्रमिति विग्रहे 'तेन रक्तं रागात्' इत्यणि सुब्लुकि आदिवृद्धौ भत्वे 'यस्येति च' इत्यलोपे विभक्तिकार्ये 'काषायम्' इति ।

तेन— राग वाचक तृतीयान्त पद से रक्त अर्थ मे अण् प्रत्यय होता है ।

नक्ष—तृतीयासमर्थ नक्षत्रविशेषवाचक तृतीयान्त शब्द से 'युक्त' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि वह युक्त पदार्थ काल हो ।

तिष्य—नक्षत्र सम्बन्धी अण् प्रत्यय के परे तिष्य और पुष्य के यकार का लोप होता है ।

लुब—यदि नक्षत्र विशेष युक्त काल के रात्रि आदि विशेष का अभिधान न होता हो तो उक्त प्रत्यय का लुप् (लोप) हो जाता है ।

दृष्टं—तृतीयान्त समर्थ शब्द से दृष्ट अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं । यदि वह दृष्ट पदार्थ साम हो ।

वाम—तृतीया समर्थ वामदेव शब्द से दृष्टं साम अर्थ में 'ड्यत्' तथा 'ड्य' प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

परि—तृतीया समर्थ शब्द से परिवृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं यदि वह परिवृत पदार्थ रथ होता हो ।

रथः । **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** ४।२।१४। शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः । **संस्कृतं भक्षाः** ४।२।१६। सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भ्राष्ट्राः भक्षाः । **साऽस्य देवता** ४।२।२४। इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पतम् । **शुक्राद्घन्** ४।२।२६। शुक्रियम् । **सोमाट्ट्यण्** ४।२।३०। सौम्यम् । **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** ४।२।३१। वायव्यम् । ऋतव्यम् । **रीङ् ऋतः** ७।४।२७। अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ च परं ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः स्यात् । 'यस्येति च' । पित्र्यम् । उषस्यम् । **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः** ४।२।२६। एते निपात्यन्ते । पितुर्भ्राता पितृव्यः । मातुर्भ्राता मातुलः । मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः । तस्य

पित्र्यम्—पितरो देवता अस्येति विग्रहः । अत्र 'वाय्वृतु–' इति यति तलोपे 'रीङ् ऋतः' इति ऋतो रीङि ङगते भत्वे 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्तिकार्ये 'पित्र्यम्' इति ।

तत्रो—सप्तमी समर्थ पात्रवाचक शब्द से उद्धृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ।

संस्कृतं—सप्तमी समर्थ शब्द से संस्कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि वह संस्कृत पदार्थभक्ष (भोज्य) होता है ।

सास्य—प्रथमा समर्थ शब्द से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं । यदि वह षष्ठ्यर्थ देवता हो ।

शुक्रा—शुक्र शब्द से 'सास्य देवता' अर्थ में 'घन्' प्रत्यय होता है ।

सोमा—सोम शब्द से 'सास्य देवता' अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है ।

वाय्वृतु—वायु, ऋतु, पितृ, तथा उषस् शब्दों से 'सास्य देवता' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

रीङ्—ऋदन्त अंग को रीङ् आदेश होता है—कृद्भिन्न यकार और असार्वधातुक यकार के परे तथा च्वि प्रत्यय के परे ।

पितृव्य—भ्राता के अभिधान के लिये प्रयुक्त पितृ तथा मातृ शब्दों से क्रमशः व्यत् और डुलच् प्रत्यय होते हैं । **तस्य**—षष्ठी समर्थ शब्द से समूह

समूहः ४।२।३७। काकानां समूहः काकम्। भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८। भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। इह (भस्याढे तद्धिते) इति पुंवद्भावे कृते। इनण्यनपत्ये ७।४।१६४। अनपत्यार्थेऽणि परे इन्प्रकृत्या स्यात्। तेन 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न। युवतीनां समूहो यौवनम्। ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३। तलन्तं स्त्रियाम्। ग्रामता। जनता। बन्धुता। (गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्) गजता। सहायता (अह्नः खः क्रतौ) अहीनः। अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४।२।४७। इसुसुक्तान्तात्कः ७।३।५१। इस् उस् उक् तान्तात्परस्य ठस्य कः स्यात्। साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम्। तदधीते तद्वेद ४।२।५९। न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७।३।३। पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किं तु ताभ्यां पूर्वौ

गर्भिणम्—गर्भिणीनां समूह इति विग्रहे 'भिक्षादिभ्योण्', इत्यणि सुब्लुकि भत्वात् 'भस्याढे तद्धिते' इति पुंवद्भावे 'गर्भिण् अ' इति जाते 'नस्तद्धिते इति टिलोपे प्राप्ते 'इनण्यनपत्ये' इति इनः प्रकृतिभावे आदिवद्धौ विभक्तिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

यौवनम्—'युवतीनां समूहः' इति विग्रहे भिक्षादित्वादणि सुब्लुकि भत्वात्

अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। भिक्षा—भिक्षादि से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

इन—अनपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे अन् प्रकृतिवत् रहता है।

ग्राम—ग्राम, जन तथा बन्धु शब्दों से समूहार्थ में तल् प्रत्यय होता है।

तलन्त—तलन्त शब्द स्त्रीलिंग होता है।

गज—गज तथा सहाय शब्दों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होता है।

अह्नः—अहन् शब्द से ऋतु अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

अचित्त—अप्राणिवाचक शब्द, हस्तिन् शब्द तथा धेनु शब्दों से समूहार्थ मे ठक् प्रत्यय होता है।

इसु—इसन्त, उसन्त, उगन्त तथा तान्त से पर 'ठ' को 'क' आदेश होता है। तद—अधीत और वेद अर्थ में द्वितीयान्त से अणादि प्रत्यय होता है।

न य्वा—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् तथा कित् प्रत्यय के परे यकार तथा

क्रमादैजागमौ स्तः। व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः। **क्रमादिभ्यो वुन्** ४।२।६१। क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः। **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** ४।२।६७। उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरो देशः। **तेन निर्वृत्तम्** ४।२।६८। कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी। **तस्य निवासः** ४।२।६९। शिवानां निवासो देशः शैवः। **अदूरभवश्च** ४।२।७०। विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम्। **जनपदे लुप्** ४।२।८१। जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् स्यात्। **लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने** १।२।५१। लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने

'भस्याढे—' इति पुंवद्भावे आदिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'यौवनम्' इति। 'अनुदात्तादेरञ्' 'यौवतम्' इति (शेषं पूर्ववत्)।

वैयाकरणः—व्याकरणमधीते वेद वेति विग्रहे 'तदधीते तद्वेद' इति अणि सुब्लुकि भत्वे 'यस्येति च' इत्यलोपे आदिवृद्धि बाधित्वा 'न य्वाभ्याम्—' इति वकारादुत्तरं यकारात् पूर्वम् ऐकारे जाते विभक्तिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

वकार से उत्तरवर्ती आदि अच् के स्थान में प्राप्त वृद्धि नहीं होती है, अपितु उनसे पूर्व ऐच् का यकार से पूर्व ऐ और वकार से पूर्व औ हो जाता है।

क्रमा——क्रमादि से वुन् प्रत्यय होता है अधीत और वेद अर्थ में।

तद—अस्त्युपाधिक प्रथमान्त शब्द से सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि उस प्रत्ययान्त नामक कोई देश हो।

तेन—निर्वृत्त अर्थ में तृतीयान्त से यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं, यदि उस प्रत्ययान्त नामक कोई देश हो।

तस्य—निवास अर्थ में षष्ठयन्त से यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं, यदि उस प्रत्ययान्त से किसी देश की संज्ञा हो।

अदूर—अदूरभव अर्थ में षष्ठयन्त से यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं, यदि उस प्रत्ययान्त से किसी देश की संज्ञा होती हो।

जन—जनपद वाच्य रहने पर चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् (लोप) हो जाता है। **लुपि**—लोप होने पर प्रकृति की तरह ही लिंग और वचन होते हैं।

स्तः । पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः । **वरणादिभ्यश्च** ४।२।८२। अजनपदार्थ आरम्भः । वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः । **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** ४।२।८७। **झयः** ८।२।१०। झयन्तान्मतोर्मस्य वः । कुमुद्वान् । नड्वान् । **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** ८।२।९। मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः । वेतस्वान् । **नड्शादाड्ड्वलच्** ४।२।८८। नड्वलः । शाद्वलः । **शिखाया वलच्** ४।२।८९। शिखावलः । इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ।

—: ० :—

पञ्चालाः—पञ्चालानां निवासो जनपदः इति विग्रहे 'तस्य निवासः' इत्यणि 'जनपदे लुप्' इति तस्य लुपि 'लुपि युक्तवत्–' इति बहुवचने सति विभक्त्यादिकार्ये 'पञ्चालाः' इति ।

वेतस्वान्—वेतसाः सन्ति अस्मिन्निति विग्रहे 'कुमुदनड–' इति ड्मतुपि डलोपे सुब्लुपि डित्वात् टिलोपे 'मादुपधायाश्च–' इति मस्य वत्वे 'वेतस्वत्' इति जाते 'उगिदचां–' इति नुमि उमि गते 'हल्ङ्याब्भ्यः–' इति सुलोपे 'अत्वसन्तस्य' इति दीर्घे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति तलोपे 'वेदस्वान्' इति ।

इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ।

—: ० :—

वर—वरणादि से पर चातुरर्थिक प्रत्यय का लोप होता है ।

कुमु–कुमुदादि से चारों अर्थों में ड्मतुप् प्रत्यय होता है ।

झयः—झयन्त से पर मतुप् सम्बन्धी मकार को वकार आदेश होता है ।

मादु—मवादि वर्जित मवर्णान्त, अवर्णान्त तथा मवर्णोपध, अवर्णोपध से पर मतुप् सम्बन्धी मकार को वकार आदेश होता है ।

नड—नड तथा शाद से चारों अर्थों में ड्वलच् प्रत्यय होता है ।

शिखा—शिखा शब्द से चारों अर्थों में वलच् प्रत्यय होता है ।

चातुरर्थिकप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ शैषिकप्रकरणम्

शेषे ४।२।९४। अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः। चतुर्भिरुह्यतं चातुरं शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः। 'तस्य विकारः' इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः। राष्ट्राऽवारपाराद्घखौ ४।२।९३। आभ्यां क्रमात् घखौ स्तः शेषे। राष्ट्रे जातादिः राष्ट्रियः। अवारपारीणः। (अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्) अवारीणः। पारीणः। पारावारीणः। इह प्रकृतिविविशेषात् घादयष्टचुटचुलन्ताः प्रत्यया

अवारपाराद्—अवारशब्दात्, पारशब्दात्, विगृहीतात्=पृथग्भूतात्, विपरीतात्=पारावारशब्दात्, अपि खो वक्तव्यः इत्यर्थः।

अवारीणः—अवारे जातः इति विग्रहः। अत्र अवारशब्दात् खे खस्य ईनादेशे भत्वे 'यस्येति च' इत्यलोपे नस्य णत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः। एवं पारे जातः-पारीणः। पारावारे जातः पारावारीणः।

इह प्रकृतिविशेषात्—'राष्ट्रावारपार' इत्यादिसूत्राणां प्रकृतिविशेषेभ्यः केवलप्रत्ययविधीनाम् अर्थविशेषविभक्तिविशेषाकाङ्क्षायां 'तत्र जातः' इत्यादिसूत्राणां च केवलमर्थविशेषनिर्देशपराणां 'समर्थानाम्' इति सूत्रलब्धतत्तद्विभक्तिप्रकृतिविशेषाणां विधेयप्रत्ययविशेषकाङ्क्षायां परस्परमेकवाक्यत्वे सति 'तत्र जातः' इत्याद्यर्थेषु प्रथमोच्चारित-तत्तद्विभक्त्यन्तेभ्यः राष्ट्रादिशब्देभ्यः घादयः टचुट्टचुलन्ताः प्रत्ययाः स्युरिति लभ्यते इति भावः। राष्ट्राद्यन्तेभ्यस्तु प्रकृतिभ्यो

शेषे—अपत्यादि चातुरर्थिक प्रत्ययार्थ से भिन्न जो शेष (जातादि) अर्थ उन अर्थों में तत्-तत् प्रकृतियों से पूर्वोक्त अणादि प्रत्यय और वक्ष्यमाण घादि प्रत्यय होते हैं।

राष्ट्रा—राष्ट्र शब्द से 'घ' और अवारपार शब्द से 'ख' प्रत्यय होते हैं, शेष (जातादि) अर्थों में। **अवार**—अवार शब्द से, पार शब्द से तथा पारावार शब्द से भी 'ख' प्रत्यय होता है।

उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थविशेषः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते। ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४। ग्राम्यः, ग्रामीणः। नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७। नादेयम्। माहेयम्। बाराणसेयम्। दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।९८। दाक्षिणात्यः। पाश्चत्त्यः। पौरस्त्यः। द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१। दिव्यम्। प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्। अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४। (अमेहक्वतसित्रेभ्य एव) अमात्यः। इहत्यः। क्वत्यः। ततस्त्यः। तत्रत्यः। (त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्) नित्यः। वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।६३। यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिवृद्धिस्तद् वृद्धसंज्ञं स्यात्। त्यदादीनि च १।१।७४।

जाताद्यर्थेषु अणादयः साधारणाः प्रत्ययाः भवन्त्येव। ततश्च—अवारे जातः—'अवारीणः', पारे जातः—'पारीणः', पारावारे जातः—'पारावारीणः' इति रूपत्रयं सिद्धं भवति। सर्वत्र खस्य ईनादेशः, भत्वादलोपः, नस्य णत्वमिति विशेषः।

ग्रामा—ग्राम शब्द से 'य' और 'खञ्' प्रत्यय होते हैं—जातादि अर्थों में।

नद्या—नद्यादि से ढक् प्रत्यय होता है—शेष अर्थ में।

दक्षिणा – दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्दों से जातादि अर्थ त्यक् प्रत्यय होता है।

द्युप्रा –दिव, प्राञ्च्, अप्राञ्च्, उदञ्च् तथा प्रत्यञ्च् शब्दों से जातादि अर्थों में यत् प्रत्यय होता है।

अव्यया—अव्यय से जातादि अर्थों में त्यप् प्रत्यय होता है।

अमे—अमा, इह, क्व, तसि, त्र—इन अव्ययों से जातादि अर्थों में त्यप् प्रत्यय होता है।

त्यब्ने—'नि' रूप अव्यय से ध्रुव अर्थ में त्यप् प्रत्यय होता है।

वृद्धि—जिस समुदाय के अचों के मध्य में आदि अच् वृद्धिस्वरूप हो, वह समुदाय वृद्धिसंज्ञक होता है।

त्यदा—त्यदादि की भी वृद्धसंज्ञा होती है।

वृद्धसंज्ञानि स्युः। वृद्धाच्छः ४।२।११४। शालीयः मालीयः। (वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या)। देवदत्तीयः, दैवदत्तः। गहादिभ्यश्च ४।२।१३८। गहीयः। युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४।३।१। चाच्छः। पक्षेऽण्। युवयोर्युष्माकं वाऽयं युष्मदीयः। अस्मदीयः। तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२। युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च। यौष्माकीणः। आस्माकीनः। यौष्माकः। आस्माकः। तवकममकावेकवचने ४।३।३। एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च। तावकीनः, तावकः। मामकीनः; मामकः। प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८। मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः। त्वदीयः। मदीयः। त्वत्पुत्रः। मत्पुत्रः। मध्यान्मः ४।३।८। मध्यमः। कालाट्ठञ् ४।३।११। कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्।

शालीयः—शालायां भवः शालीयः। अत्र 'वृद्धिर्यस्ये'ति शालाशब्दस्य वृद्धसंज्ञायां 'वृद्धाच्छः' इति छे छस्य ईयादेशे भत्वादल्लोपे विभक्तिकार्ये 'शालीयः' इति।

युष्मदीयः—युवयोर्युष्माकं वाऽयम्—युष्मदीयः, यौष्माकीणः, यौष्माकः। अत्र 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' इति चात् छे छस्य ईयादेशे विभक्तिकार्ये

वृद्धा—वृद्धसंज्ञक से जातादि अर्थों में छ प्रत्यय होता है।

वा नाम—नमाधेय की विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है।

गहा—यथासंभव देशवाची गहादि से जातादि अर्थों में छ प्रत्यय होता है।

युष्मद—युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों से छ प्रत्यय विकल्प से होता है।

तस्मिन्—खञ् और अण् प्रत्यय के परे युष्मद्-अस्मद् शब्द को क्रमिक युस्माक और अस्माक आदेश होता है।

तवक—खञ् और अण् प्रत्यय के परे युष्मद्-अस्मद् शब्द को यथाक्रम से तवक, ममक आदेश होता है।

प्रत्य—प्रत्यय के परे तथा उत्तर पद के परे एकार्थवाची युष्मद्-अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को यथाक्रम से त्व, म आदेश होता है।

मध्यान्—मध्य शब्द से जातादि अर्थों में 'म' प्रत्यय होता है।

काला—कालवाचक शब्दों से जातादि में ठञ् प्रत्यय होता है।

कालिकम् । मासिकम् । सांवित्सरिकम् । (**अव्ययानां भमात्रे टिलोपः**) सायंप्रातिकः । पौनः पुनिकः । **प्रावृष एण्यः** ४।३।१७। प्रावृषेण्यः। **सायंचिरं-प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युटयुलौ तुट् च** ४।३।२३। सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्यो-ऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युटयुलौ स्तस्तयोस्तुट् च । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णे प्रगेऽनयोरेदन्तत्वं निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् । **तत्र जातः** ४।३।२५। सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः । उत्से जात औत्सः । राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः । अवारपारे जातः अवारपारीणः इत्यादि । **प्रावृषष्ठप्** ४।३।२६। एण्यापवादः । प्रावृषिकः । **प्रायभवः** ४।३।३९। तत्रेत्येव स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः । **सम्भूते** ४।३।४१। स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः । **कोशाड्ढञ्** ४।३।४२। कौशेयं वस्त्रम् ।

'युष्मदीयः' इति । पक्षे–'तस्मिन्नणि च'ति खे ईनादेशे युष्माकादेशे आदिवृद्धौ णत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'यौष्माकीणः' इति । अण्पक्षे तु—'यौष्माकः' इति । (साधनप्रकारस्तु पूर्ववत् ।)

राष्ट्रियः—राष्ट्रे जातः राष्ट्रियः । 'तत्र जातः' इति सूत्रोक्तार्थे 'राष्ट्रावारपाराद् घखौ' इति घे 'आयनेयी–'इति सूत्रेण घस्य इयादेशे भत्वे 'यस्येति च' इत्यलोपे विभक्तिकार्ये 'राष्ट्रियः' इति ('राष्ट्रीयः' इति अशुद्धम्) ।

अव्य—भसंज्ञक अव्यय के 'टि' का लोप होता है ।

प्रावृ—कालवृत्ति प्रावृष् शब्द से जातादि अर्थों में एण्य प्रत्यय होता है ।

सायं—सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रगे–इन अव्ययों से ट्यु तथा ट्युल् प्रत्यय होते हैं और प्रत्ययों को तुट् का आगम भी हो जाता है ।

तत्र—सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से जातादि अर्थों में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं । **प्रावृषः**–प्रावृष शब्द से जातादि अर्थों में ठप् प्रत्यय होता है ।

प्रायभवः—प्रायभव अर्थ में सप्तम्यन्त पद से यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

सम्भूते—संभूत (संभव) अर्थ में सप्तम्यन्त पद से अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

कोशा—सप्तम्यन्त कोश शब्द से संभूत अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ।

तत्र भवः ४।३।५३। स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः। **दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४।** दिश्यम्। वर्ग्यम्। **शरीरावयवाच्च ४।३।५५।।** दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। (अध्यात्मादेष्ठञिष्यते)। अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम्। **अनुशतिकादीनां च ७।३।२०।** एषामुभयपदवृद्धिः स्यात्। ञिति णिति किति च। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्। आकृतिगणोऽयम्। **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छ ४।३।६२।** जिह्वामूलीयम्। अङ्गुलीयम्। **वर्गान्ताच्च ४।३।६३।** कवर्गीयम्। तत आगतः ४।३।७४ स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः। **ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५।** शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ४।१।७७।** औपाध्यायकः। पैतामहकः। **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१।** समादागतं समरूप्यम्। पक्षे गहादि-

---

आधिदैविकम्-अधिदेवे भवम् आधिदैविकम्। अत्र 'अध्यात्मादेष्ठञिष्यते' इति ठञि ठस्येकादेशे 'अनुशतिकादीनां च' इत्युभयपदवृद्धौ भत्वे अलोपे विभक्ति-

---

तत्र—भवार्थ में सप्तम्यन्त पद से अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं।

दिगा—सप्तम्यन्त दिगादि से भावार्थ में यत् प्रत्यय होता है।

शरी—शरीरावयववाची सप्तम्यन्त से भवार्थ में यत् प्रत्यय होता है।

अनु—अनुशतिकादि गणपठित शब्दों के उभयपद की ञित्, णित्, कित् के परे वृद्धि होती है।

जिह्वा—सप्तम्यन्त जिह्वामूल तथा अंगुलि शब्दों से भावार्थ में छ प्रत्यय होता है। **वर्गान्ता**—सप्तम्यन्त वर्गान्त शब्द से भावार्थ में छ प्रत्यय होता है।

तत—आगत अर्थ में पञ्चम्यन्त शब्दों से यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं।

ठगा—आगत अर्थ में आयस्थानवाची पञ्चम्यन्त शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है।

विद्या—आगत अर्थ में विद्या तथा योनि सम्बन्धवाची सप्तम्यन्त शब्दों से वुञ् प्रत्यय होता है।

हेतु—आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाचक शब्दों से रूप्य प्रत्यय विकल्प से होता है।

त्वाच्छः । समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् । **मयट् च** ४।३।८२। सममयम् । देवदत्तमयम् । **प्रभवति** ४।३।८३। हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा । **तद्गच्छति पथिदूतयोः** ४।३।८५। स्रुघ्नं संगच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा । **अभिनिष्क्रामति द्वारम्** ४।३।८६। स्रुघ्नमभिगच्छति स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम् । **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे** ४।३।८७। शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः । **सोऽस्य निवासः** ३।३।८८। स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः । **तेन प्रोक्तम्** ४।३।१०१। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् । **तस्येदम्** ४।३।१२०। उपगोरिदम् औपगवम् । इति शैषिकप्रकरणम् ।

—: ० :—

कार्ये तत्सिद्धिः । एवम्–इहलोके भवम्–ऐहलौकिकम्, परलोके भवं पारलौकिकम् इत्यादि ।   इति शैषिकप्रकरणम् ।

—: ० :—

मयट्—आगत अर्थ में हेतुवाचक और मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त शब्दों से मयट् प्रत्यय होता है । **प्रभवति**—प्रभवति अर्थ में पञ्चम्यन्त शब्दों से यथाविहित अणादि तथा घादि प्रत्यय होते हैं ।

तद्गच्छति—जाने वाले मार्ग या जाने वाले दूत अर्थों में द्वितीया समर्थ शब्दों मे यथाविहित अणादि तथा घादि प्रत्यय होते हैं ।

अभि—निष्क्रामक द्वार अर्थ में द्वितीया समर्थ शब्दों से यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

अधि—विषय में निर्मित ग्रन्थ अर्थ में द्वितीया समर्थ शब्दों से यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

सोऽस्य—'इसका वह निवास है' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ शब्दों से यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

तेन—'प्रोक्त' अर्थ में तृतीया समर्थ शब्दों से यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

तस्येदम्—'इदम्' अर्थ में षष्ठी समर्थ शब्दों से यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।   शैषिकप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ विकारार्थकाः

तस्य विकारः ४।३।१३४। (**अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः**)। अश्मनो विकार आश्मः। भास्मनः। मार्त्तिकः। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** ४।३।१३५। चाद्विकारे। मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः। मौर्वं काण्डं भस्म वा। पैप्पलम्। **मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** ४।३।१३४। प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्यात् विकारावयवयोः। अश्ममयम्। आश्मनम्। अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम्। **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** ४।३।१४४। आम्रमयम्। **गोश्च पुरीषे** ४।३।१४५। गो. पुरीष गोमयम्। **गोपयसोर्यत्** ४।३।१६०। गव्यम्। पयस्यम्। **इति विकारार्थकाः।**

—:०:—

आश्मः—अश्मनो विकारः आश्मः। अत्र अश्मन्-शब्दात् 'तस्य विकारः' इत्यणि 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे प्राप्ते 'अन्' इति निषेधे 'अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः' इति टिलोपे आदिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'आश्मः' इति।

अश्ममयम्—पाषाणभिन्नमनुष्यवाचकात् अश्मन्-शब्दात् तस्य विकारः अवयवो वेत्यर्थे 'मयड्वैतयोर्भाषा-' इति मयटि नलोपे विभक्तिकार्ये 'अश्ममयम्' इति। मयडभावपक्षे 'तस्य विकारः' इत्यणि 'अन्' इति प्रकृतिभावाट्टिलोपाऽभावे आदिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'आश्मनम्' इति। इति विकारार्थकाः।

—:०:—

तस्य—विकार अर्थ में षष्ठयन्त शब्दों से अणादि प्रत्यय होता है।

अश्म—विकारार्थक प्रत्यय के परे अश्मन् शब्द के 'टि' का लोप होता है।

अवयवे—षष्ठीसमर्थ प्राणिवाचक, ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दों से अवयवार्थ तथा विकारार्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं।

मयड्—भाषाविषय में भक्ष्य तथा आच्छादन से भिन्न विकार तथा अवयव अर्थों में प्रकृति मात्र से मयट् प्रत्यय विकल्प से होता है।

नित्यं—भक्ष्य तथा आच्छादन से भिन्न वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से विकार तथा अवयव अर्थों में मयट् प्रत्यय नित्य ही होता है। **गोश्च**—पुरीष (विष्ठा) अर्थ में गोशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त से मयट् प्रत्यय होता है।

गोप—विकारादि अर्थ में गो और पयस् शब्द प्रकृतिक षठयन्त से यत् प्रत्यय होता है। विकारार्थकप्रत्ययप्रकरण समाप्त।

:—०:—

अथ ठगधिकारप्रकरणम्

प्राग्वहतेष्ठक् ४।४।१। तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** ४।४।२। अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितं वा आक्षिकः। **संस्कृतम्** ४।४।३। दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। मारीचिकम्। **तरति** ४।४।५। तेनेत्येव। उडुपेन तरति औडुपिकः। **चरति** ४।४।८। तृतीयान्ताद्गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात्। हस्तिना चरति हास्तिकः। दध्ना चरति दाधिकः। **संसृष्टे** ४।४।२२। दध्ना संसृष्टं दाधिकम्। **उञ्छति** ४।४।३२। बदराण्युच्छति बादरिकः। **रक्षति** ४।४।३३। समाजं रक्षति सामाजिकः। **शब्ददर्दुरं करोति** ४।४।३४। शब्दं करोति शाब्दिकः। दर्दुरं करोति दार्दुरिकः। **धर्मं चरति**

सामाजिकः—समाजं रक्षति सामाजिकः। अत्र 'रक्षति' इति सूत्रेण द्वितीयासमर्थात् रक्षतीत्येतस्मिन्नर्थे समाजशब्दात् ठकि ठस्य इकादेशे भत्वे अलोपे 'किति च' इत्याद्यचो वृद्धौ विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

एवं धर्मं चरति धार्मिकः। अत्र 'धर्मं चरति' इति ठकि, शेषं पूर्ववत्।

प्राग्व—'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' इस सूत्र तक ठक् का अधिकार है।

तेन—तृतीया समर्थ शब्दों से दीव्यति (क्रीडा करता है) खनति (खोदता है) जयति (जीतता है) तथा जितम् (जीता गया) अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है।

संस्कृतम्—संस्कृत अर्थ में तृतीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

तरति—तरति अर्थ में तृतीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

चरति—तरति अर्थ में तृतीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

संसृ—संसृष्ट अर्थ में तृतीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

उञ्छति—उञ्छति अर्थ में द्वितीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

रक्षति—रक्षति अर्थ में द्वितीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

शब्द—शब्द तथा दर्दुर प्रकृतिक द्वितीयान्त से करोति अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। **धर्मं**—धर्म प्रकृतिक द्वितीयान्त से चरति अर्थ में भी ठक् होता है।

४।४।४१। धार्मिकः। (अधर्माच्चेति वक्तव्यम्) अधार्मिकः। **शिल्पम्** ४।४।५५। मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः। **प्रहरणम्** ४।४।५७। तदस्येत्येव। असिः प्रहरणमस्य आसिकः। धानुष्कः। **शीलम्** ४।४।७१। अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः। **निकटे वसति** ४।४।५३। नैकटिको भिक्षुकः।

इति ठगधिकारः।

—:०:—

धानुष्कः—धनुः प्रहरणमस्येति धानुष्कः। अत्र 'प्रहरणम्' इति ठकि 'इसुसुक्तान्तात् कः' इति ठस्य कादेशे कित्त्वादादिवृद्धौ विभक्त्यादिकार्ये तत्सिद्धिः।

इति ठगधिकारः।

—:०:—

अधर्मा—अधर्मप्रकृतिक द्वितीयान्त से भी चरति अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है—ऐसा कहना चाहिये।

शिल्प—'अस्य शिल्पम्' इस अर्थ में प्रथमान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

प्रहरणं—'अस्य प्रहरणम्' इस अर्थ में प्रथमान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

शीलं—'अस्य शीलम्' इस अर्थ में प्रथमान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

निकटे—'वसति' इस अर्थ में निकट प्रकृतिक सप्तम्यन्त से ठक् प्रत्यय होता है।

ठगधिकारप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ यदधिकारः

प्राग्घिताद्यत् ४।४।७५। तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधिक्रियते । **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** ४।४।७६। रथं वहति रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः । **धुरो यड्ढकौ** ७।७।४४। हलि चेति दीर्घे प्राप्ते । **न भकुर्छुराम्** ८।२।७९। भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात् । धुर्यः, धौरेयः । **नौवयोधर्मविषमूलामूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु** ४।४।९१। नावा तार्यं नाव्यं जलम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम् । विषेण वध्यं विष्यः । मूलेन आनाम्यं मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया संमितं तुल्यम् । **तत्र साधुः** ४।४।९८ अग्रे साधुः अग्र्यः । सामसु साधुः सामान्यः । ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः । कर्मण्यः । शरण्यः । **सभाया यः** ४।४।१०५। सभ्यः । इति यतोऽधिकारः ।

-: ० :-

युगं वहति 'युग्यः' । प्रासङ्गं वहति 'प्रासङ्ग्यः' उभयत्र 'तद्वहति–' इति यति भत्वादल्लोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः । सामसु साधुः 'सामान्यः' यति कृते 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे प्राप्ते 'ये चे'ति प्रकृतिभावः । अन्यत्पूर्ववत् । एवं— कर्मणि साधुः—कर्मण्यः । सभायां साधुः—सभ्यः । इति यतोऽधिकारः ।

-: ० :-

प्राग्—'तस्मै हितम्' इस सूत्र तक 'यत्' का अधिकार है ।

तद्व—'वहति' अर्थ में रथादि प्रकृतिक द्वितीयान्त से यत् तथा ठक् प्रत्यय होते हैं । **न भकु**—रेफान्त अथवा वान्त भसंज्ञक पद एवं कुर् तथा छुर् शब्दों के उपधाभूत इक् के स्थान में दीर्घादेश नहीं होता है ।

नौवयो—तृतीया समर्थ नौ आदि आठ शब्दों से क्रमशः तार्य आदि आठ अर्थों में यत् होता है । **तत्र**—सप्तम्यन्त से साधु अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है ।

सभा—सभा प्रकृतिक सप्तम्यन्त से साधु अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है ।

यदधिकारप्रकरण समाप्त ।

-: ० :-

अथ छयतोरधिकारः

प्राक्क्रीताच्छः ५।१।१। तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते। **उगवादिभ्यो यत्** ५।१।२। प्राक् क्रीतादित्येव। उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्याच्छस्यापवादः। शंकवे हितं शंकव्यं दारु। गव्यम्। **(नाभि नभं च)**। नभ्योऽक्षः। नभ्यमञ्जनम्। **तस्मै हितम्** ५।१।५। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्। **शरीरावयवाद्यत्** ५।१।६। दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। नस्यम्। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** ५।१।९। **आत्माध्वानौ खे** ६।४।१६९ एतौ खे प्रकृत्या स्तः। आत्मने हितम् आत्मनीनम्। विश्वजनीनम्। मातृभोगीणः।

इति छयतोरधिकारः।

—: ० :—

गव्यम्—गवे हितं 'गव्यम्'। अत्र 'उगवादिभ्यो यत्' इति यति परे 'वान्तो यि प्रत्यये' इति वान्तादेशो विशेषः। दन्तेभ्यो हितं 'दन्त्यम्'। कण्ठाय हितं '**कण्ठ्यम्**'। नासिकायै हितं '**नस्यम्**'। मातृभोगाय हितं '**मातृभोगीणः**'। अत्र 'आत्मन् विश्वजन—' इति खे खस्य ईनादेशे भत्वादल्लोपे 'कुमति च' इति नस्य णत्वे विभक्त्यादिकार्ये तत्सिद्धिः। **इति छयतोरधिकारः।**

—: ० :—

प्राक्—'तेन क्रीतम्' इस सूत्र तक 'छ' का अधिकार है।

उगवा—उवर्णान्त और गवादि से हितादि अर्थों में यत् प्रत्यय होता है।

नाभि—नाभि-शब्द से यत् प्रत्यय और नाभि को नभादेश होता है।

तस्मै—हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त से यथाविहित पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण प्रत्यय होते हैं। **शरी**—शरीरावयववाची चतुर्थ्यन्त से हित अर्थमें यत् प्रत्यय होता है।

आत्मन्—आत्मादि प्रकृतिक चतुर्थ्यन्तसे हित अर्थमें ख प्रत्यय होता है।

आत्मा—ख प्रत्यय के परे आत्मन् और अध्वन् शब्द प्रकृतिवत् होते हैं।

छयोतोरधिकारप्रकरण समाप्त।

—: ० :—

अथ ठञधिकारः

प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८। तेन तुल्यमिति वतिः वक्ष्यति । ततः प्राक् ठञधिक्रियते । तेन क्रीतम् ५।१।३७। सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् । तस्येश्वरः ५।१।४२ । सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः । अनुशतिकादीनाञ्च ७।३।२०। सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः । पार्थिवः । पंक्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५।१।५८। एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते । तदर्हति ५।१।६३। लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताठ्ठञादयः स्युः । श्वेतच्छत्रमर्हति श्वेतच्छत्रिकः । दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६। एभ्यो यत् स्यात् । दण्डमर्हति दण्ड्यः । अर्घ्यः । वध्यः । तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९। अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम् । इति ठञोऽधिकारः ।

—: ० :—

सार्वभौमः—सर्वभूमेः ईश्वरः 'सार्वभौमः' । अत्र 'तस्येश्वरः' इत्यणि मत्वादिलोपे 'अनुशतिकादीनां च' इत्युभयपदवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'सार्वभौमः' ।

इति ठञोऽधिकारः ।

—: ० :—

प्राग्वते—'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' सूत्र तक 'ठञ्' का अधिकार है ।

तेन—क्रीत अर्थ में तृतीयान्त से यथाविहित ठक्, ठञ् आदि आर्हीय प्रत्यय होते हैं ।

तस्य—षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि तथा पृथिवी शब्दों से ईश्वर अर्थ में क्रमशः अण् तथा अञ् प्रत्यय होते हैं ।

अनु—अनुशतिकादि गणपठित शब्दों के उभय पद की वृद्धि होती है ।

पंक्ति—प्रथमासमर्थ परिमाणोपाधिक संख्यावाचक पञ्चन् आदि शब्दों से षष्ठयर्थ में—पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्ठि, सप्तति, अशीति, नवति तथा शत शब्दों का निपातन होता है । तदर्हति—द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से 'अर्हति' अर्थ में यथाविहित ठञादि प्रत्यय होते हैं ।

दण्डा—दण्डादि प्रकृतिक द्वितीयान्त से 'अर्हति' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

तेन—कालवाची तृतीयान्त से 'निर्वृत्त' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

ठञधिकारप्रकरण समाप्त ।

—: ० :—

अथ त्वतलधिकारः

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५। ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् अधीते। क्रिया चेदिति किम्? गुणतुल्ये मा भूत्—पुत्रेण तुल्यः स्थूलः। तत्र तस्येव ५।१।११६। मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः। चैत्रस्यैव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः। तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९। प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। गोर्भावो गोत्वम्। गोता। त्वान्तं क्लीबम्। तलन्तं स्त्रियाम्। आ च त्वात् ५।१।१२०। 'ब्राह्मणस्त्वः' इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते। अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्। चकारो नञस्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः। स्त्रियाः भावः स्त्रैणम्' स्त्रीत्वम्, स्त्रीता। पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता। पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा ५।१।१२२ र ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१। हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् इष्ठेमेयस्सु परतः। टेः ६।४।१५५। भस्य टेर्लोपः स्यात् इष्ठेमेयस्सु। पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्। पृथोर्भावः प्रथिमा। पार्थवम्। म्रदिमा। मार्दवम्।

प्रथिमा, प्रार्थवम्—पृथोर्भावः प्रथिमा। अत्र 'पृथ्वादिभ्यः—' इति इमनिचि इचो लोपे 'र ऋतो—' इति ऋकारस्य रेफे भत्वात् 'टेः' इति

तेन—तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से क्रियागत तुल्यता के प्रतिपादन में वति प्रत्यय होता है। तत्र—सप्तमीसमर्थ तथा षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से इवार्थ में वति प्रत्यय होता है।

तस्य—षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से भावार्थ में त्व तथा तल् प्रत्यय होते हैं।

त्वान्तं—त्वप्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग होते हैं।

आ च—यहाँ से आगे 'ब्राह्मणस्त्वः' सूत्र तक त्व तथा तल् प्रत्ययों का अधिकार समझना चाहिए।

पृथ्वा—षष्ठीसमर्थ पृथु आदि शब्दों से भावार्थ में इमनिच् प्रत्यय विकल्प से होता है। र ऋतो—इष्ठन्, इमनिच् तथा इयसुन् प्रत्ययों के परे हलादि लघुसंज्ञक 'ऋ' के स्थान में 'र' आदेश होता है।

पृथु—पृथ्वादि शब्दों के ही ऋ को रभाव होता है।

टेः—इष्ठन् आदि प्रत्ययों के परे 'टि' का लोप होता है।

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५।१।१२३। चादिमनिच्। शौक्ल्यम्, शुक्लिमा। दार्ढ्यम्, द्रढिमा। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४।** चाद्भावे। जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम्। मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम्। ब्राह्मण्यम्। आकृतिगणोऽयम्। **सख्युर्यः ५।१।१२६।** सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम्। **कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७।** कापेयम्। ज्ञातेयम्। **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८।** सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्। **इति त्वतलधिकारः।**

—: ० :—

यकारोत्तरवर्ति-ऋकारलोपे 'प्रथिमन्' इति जाते तद्धितान्तत्वात् सौ हल्ङ्यादिना सोर्लोपे उपधादीर्घे नलोपे 'प्रथिमा' इति। पक्षे 'इगन्ताच्चे'ति आदिवृद्धौ रपरत्वे भत्वात् 'ओर्गुणः' इति गुणे अवादेशे विभक्तिकार्ये 'पार्थवम्' इति।

पौरोहित्यम्— पुरोहितस्य भावः कर्म वेति विग्रहः। अत्र 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' इति यकि भत्वादलोपे 'किति च' इति वृद्धौ विभक्त्यादि कार्ये तत्सिद्धिः।   इति त्वतलधिकारः।

—: ० :—

इगन्ता—लघु हो पूर्व में जिस इक् का तदन्त प्रातिपदिक से भाव-कर्म अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

वर्ण—षष्ठीसमर्थ रूप विशेष वाचक शब्द तथा दृढादि शब्दों से भावार्थ में ष्यञ् तथा इमनिच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

गुण—षष्ठीसमर्थ गुणवाचक तथा ब्राह्मण आदि शब्दों से 'क्रिया' अर्थ में तथा भावार्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है।

सख्यु—भाव तथा कर्म अर्थों में षष्ठीसमर्थ सखि शब्द से 'य' प्रत्यय होता है।

कपि—षष्ठीसमर्थ कपि तथा ज्ञाति शब्दों से भाव और कर्म अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है।

पत्यन्त—षष्ठीसमर्थ पतिशब्दान्त प्रातिपदिक से तथा पुरोहित आदि शब्दों से भाव और कर्म अर्थों में यक् प्रत्यय होता है।

त्वतलधिकारप्रकरण समाप्त।

—: ० :—

अथ भवनाद्यर्थकाः

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ४।२।१। भवन्त्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् । **व्रीहिशाल्योर्ढक्** ५।२।२। व्रैहेयम् । शालेयम् । **हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्** ५।२।२३। ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशः स्यात् विकारार्थे खञ्च निपात्यते । दुह्यत इति दोहः क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनं नवनीतम् । **तदस्य सञ्जातं तारिकादिभ्य इतच्** ५।२।३६। तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः । पण्डितः । आकृतिगणोऽयम् । **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ् मात्रचः**५।२।३७। तदस्येत्यनुवर्तते । ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्। ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् । **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्**५।२।३९।यत्परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् । **किमिदंभ्या वो घः** ५।२।४०। आभ्यां वतुप् स्यात् वकारस्य घश्च । **इदंकिमोरीश्की** ६।३।९०। दृग्दृश्वतुषु इदम ईश् किमः कीः । कियान् । इयान् । **संख्याया अवयवे तयप्** ५।२।४२। पञ्च अवयवा

कियान्—किं परिमाणमस्य कियान् । अत्र 'किमिदम्भ्यां वो घः' इति वतुपि वस्य घा देशे उपि गते 'किम् यत्' इति जाते 'आयनेयी'ति घस्य इयादेशे

धान्य—षष्ठीसमर्थ धान्य विशेषवाचक शब्दों से 'भवनं क्षेत्रम्' (क्षेत्रात्मक उत्पत्तिस्थान) अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ।

व्रीहि—षष्ठीसमर्थ व्रीहि तथा शालि शब्दों से क्षेत्रात्मक उत्पत्तिस्थान के अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है । **हैयं**—संज्ञा के प्रतिपादनार्थ ह्योगोदोह शब्द के स्थान में हियंगु आदेश तथा उससे खञ् प्रत्यय होता है । **तदस्य**—प्रथमा समर्थ तारकादि शब्दों से 'अस्य सजातम्' अर्थ में इतच् प्रत्यय होता है ।

प्रमा—प्रमाणार्थ शब्दों के रूप में प्रसिद्ध शब्दों से उत्पन्न प्रत्ययों का लोप हो जाता है। **यत्तदे**—परिमाणोपाधिक प्रथमासमर्थ यद् तथा एतत् शब्दों से षष्ठ्यर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है । **किमि** – किम् तथा इदम् से उत्तरवर्ती वतुप् के वकार के स्थान में घकारादेश हो जाता है । **इदं**—दृक्, दृश् तथा वतु शब्दों के परे इदम् तथा किम् शब्दों के स्थान में क्रमशः ईश् तथा की आदेश हो जाते हैं ।

अस्य पञ्चतयम् । द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५।२।४३। द्वयम्, द्वितयम् । त्रयम्, त्रितयम् । उभादुदात्तो नित्यम् ५।२।४४। उभयशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चोदात्तः । तस्य पूरणे डट् ५।२।४८। एकादशानां पूरणः एकादशः । नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ५।२।४८। डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नान्तात्किम् ? ति विंशतेर्डिति ६।४।१४२। विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपः स्यात् डिति परे । विंशः । असंख्यादेः किम् ? एकादशः । षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५।२।५१। एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः षष्ठः । कतिथः ।

'इदंकिमोरिश्की' इति किमः क्यादेशे भत्वे अलोपे नुमि उमि गते उपधादीर्घे विभक्तिकार्ये 'कियान्' इति । एवमेव—इदं परिमाणमस्य 'इयान्' इति । अत्र इदमः इशादेशः इति विशेषः ।

विंशः—विंशतीनां पूरणः विंशः । अत्र 'तस्य पूरणे डट्' इति डटि अनुबन्धलोपे 'ति विंशतेर्डिति' इति तिलोपे भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये विंशः इति

संख्या—अवयवार्थ में वर्तमान प्रथमा समर्थ संख्यावाचक शब्दों से षष्ठ्यर्थ में तयप् प्रत्यय होता है ।

द्वित्रि—द्वि तथा त्रि शब्दों से पूर्वसूत्र विहित तयप् के स्थान में विकल्प से अयच् आदेश होता है ।

उभा—उभ शब्द से विहित तयप् के स्थान में नित्य अयच् आदेश होता है और वह आदेश उदात्त हो जाता है ।

तस्य—षष्ठीसमर्थ संख्यावाचक शब्द से पूरणार्थ में डट् प्रत्यय होता है ।

नान्ता—जिसके पूर्वपद के रूप में कोई संख्यावाचक शब्द नहीं हो, ऐसे नकारान्त संख्यावाचक शब्द से विहित डट् के स्थान में मट् का आगम हो जाता है ।

ति वि—भसंज्ञक विंशति शब्द के 'ति' का लोप होता है, डिति के परे ।

षट्—षट् प्रत्यय के परे होने से षट्, कति, कतिपय तथा चतुर् शब्दों को थुक् का आगम हो जाता है ।

कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डुट् । चतुर्थः । कतिपयथः । **द्वेस्तीयः** ५।२।५४। डटोऽपवादः । द्वयोः पूरणो द्वितीयः । **त्रेः सम्प्रसारणं च** ५।२।५५। तृतीयः । **श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते** ५।२।८४। श्रोत्रियः, वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः । **पूर्वादिनिः** ५।२।८६। पूर्वं कृतमनेन पूर्वी । **सपूर्वाच्च** ५।२।८७। कृतपूर्वी । **इष्टादिभ्यश्च** ५।२।८८। इष्टमनेन इष्टी । अधीती ।

इति भवनाद्यर्थकाः ।

—:०:–

श्रोत्रियः—छन्दोऽधीते इत्यर्थे 'श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते' इति निपातनात् घन्प्रत्यये अनुबन्धलोपे घस्य इयादेशे छन्दः स्थाने श्रोत्रादेशे भत्वे अलोपे विभक्तिकार्ये 'श्रोत्रियः' इति ।

पूर्वी—पूर्वं कृतमनेनेति 'पूर्वी' । अत्र 'पूर्वादिनिः' इति इनि इलोपे भत्वे अलोपे 'पूर्विन्' इति, तस्मात् सौ 'सौ च' इति इत्युपधादीर्घे हल्ङ्यादिना सलोपे 'पूर्वी' इति । एवं कृतं पूर्वमनेनेति 'कृतपूर्वी' । अत्र 'सपूर्वाच्च' इति इनिः इति विशेषः ।

इति भवनाद्यर्थकाः ।

—:०:—

द्वेस्तीयः—द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय और प्रकृति को संप्रसारण भी हो जाता है ।

त्रेः सम्प्र—त्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय और प्रकृति को सम्प्रसारण भी हो जाता है ।

श्रोत्रि—वेदाध्येता अर्थ में श्रोत्रिय शब्द का निपातन होता है ।

पूर्वा—पूर्व शब्द से तृतीयार्थ में इनि प्रत्यय होता है ।

सपू—पूर्वशब्दान्त प्रातिपदिक से भी तृतीयार्थ में इनि प्रत्यय होता है ।

इष्ट—इष्ट आदि प्रातिपदिकों से भी तृतीयार्थ में इनि प्रत्यय होता है ।

भवनाद्यर्थकप्रकरण समाप्त ।

—:०:—

अथ मत्वर्थीयाः

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४। गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति गोमान्। **तसौ मत्वर्थे** १।४।१९। तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे। वसोः सम्प्रसारणम्। विदुष्मान्। गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः। शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः। कृष्णः। **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्**५।२।९६। चूडालः। चूडावान्। प्राणिस्थात्किम्? शिखावान् दीपः। प्राण्यङ्गादेव, नेह—मेधावान्। **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** ५।२।१००। लोमादिभ्यः शः। लोमशः। लोमवान्। रोमशः। रोमवान्। पामादिभ्यो नः। पामनः। अङ्गात्कल्याणे। अङ्गना। लक्ष्म्या अच्च। लक्ष्मणः। पिच्छादिभ्य इलच्। पिच्छिलः, पिच्छवान्। **दन्त उन्नत उरच्** ५।२।१०६। उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः। **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्** ५।२।१०९। केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्।

केशवः—केशाः सन्त्यस्येति केशवः, केशवान्। अत्र 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' इति वे विभक्तिकार्ये 'केशवः' इति। पक्षे मतुपि 'केशवान् इति।

तदस्या—प्रथमा समर्थ अस्त्यर्थोपाधिक प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में विकल्प से मतुप् प्रत्यय होता है।

गुण—गुणवाचक शब्दों से मतुप् का लुक् होता है।

प्राणि—आकारान्त प्राणिस्थ वाचक शब्दों से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्यय होता है।

लोमा—लोमादि प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'श' प्रत्यय, पामादि से 'न' प्रत्यय तथा पिच्छ आदि से इलच् प्रत्यय होते हैं।

अंगा—अंग शब्द से 'न' प्रत्यय होता है, कल्याण अर्थ में।

लक्ष्म्या—लक्ष्मी शब्द से 'न' प्रत्यय होता है और लक्ष्मी को अकारान्त आदेश भी हो जाता है।

दन्त—उन्नतोपाधिक दन्त से उरच् प्रत्यय होता है।

केशा—केश शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से 'व' प्रत्यय होता है।

(अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते)। मणिवः (अर्णसो लोपश्च) अर्णवः। **अत इनिठनौ** ५।२।११५। दण्डी। दण्डिकः। **व्रीह्यादिभ्यश्च** ५।२।११६। व्रीहिः। व्रीहिकः। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** ५।२।१२१। यशस्वी, यशस्वान्, मायावी; व्रीह्यादिपाठादिनिठनौ। मायी। मायिकः। मायावान्। मेधावी। स्रग्वी। **वाचो ग्मिनिः** ४।२।१२४। वाग्मी। **अर्शआदिभ्योऽच्** ५।२।१२७। अर्शोऽस्य विद्यते अर्शसः। आकृतिगणोऽयम्। **अहंशुभमोर्युस्** ५।२।१४०। अहंकारवान्। शुभयुस्तु शुभान्वितः।

इति मत्वर्थीयाः।

—: ० :—

दण्डी, दण्डिकः—दण्डोऽस्यास्तीति विग्रहः। अत्र 'अत इनिठनौ' इति इनि मत्वे अलोपे विभक्त्यादिकार्ये, 'दण्डी' इति। ठनि तु ठस्येकादेशे मत्वे अलोपे विभक्त्यादिकार्ये 'दण्डिकः' इति।

यशस्वी, यशस्वान्—यशोऽस्यास्तीति विग्रहः। अत्र 'अस्मयामेधास्रजो विनिः' इति विनि मत्वे इलोपे सौ 'सौ च' इति दीर्घे सोर्लोपे 'यशस्वी' इति। पक्षे—'तदस्यास्त्यस्मिन्—' इति मतुपि 'मादुपधायाश्च–' इति मस्य वत्वे सौ 'अत्वसन्तस्य–'इति दीर्घे 'उगिदचाम्–' इति नुमि सुलोपे संयोगान्तलोपे च कृते 'यशस्वान्' इति।

इति मत्वर्थीयाः।

—: ० :—

अन्ये—प्रकृत्यन्तर से भी मत्वर्थ में 'व' प्रत्यय होता है।

अत—अकारान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि तथा ठन् प्रत्यय होते हैं।

व्रीह्या—व्रीहि आदि शब्दों से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

अस्मा—असन्त, माया, मेधा तथा स्रज् शब्दों से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है।

अर्श—अर्शस् आदि शब्दों से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय होता है।

अहं—अहं तथा शुभम् शब्दों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है।

मत्वर्थीयप्रकरण समाप्त।

—: ० :—

अथ प्राग्दिशीयाः

प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१। दिक्शब्देभ्य इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः। **किं-सर्वनाम-बहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** ५।३।२। किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते। **पञ्चम्यास्तसिल्** ५।३।७। पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात्। **कु तिहोः** ७।२।१०४। किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः। कुतः। कस्मात्। **इदम इश्** ५।३।३। प्राग्दिशीये परे। इतः। **एतदोऽन्** ५।३।५। एतदः प्राग्दिशीये। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। अतः। अमुतः। यतः। बहुतः। द्व्यादेस्तु। द्वाभ्याम्। **पर्यभिभ्यां च** ५।३।९। आभ्यां तसिल् स्यात्। सर्वोभयार्थाभ्यामेव। परितः, सर्वत इत्यर्थः। अभितः, उभयत इत्यर्थः। **सप्तम्यास्त्रल** ५।३।१०। कुत्र। यत्र। तत्र।

कुतः — कस्मादिति कुतः। अत्र 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिलि इलो लोपे सुब्लुकि 'प्राग्दिशो विभक्तिः' इति तसिलो विभक्तित्वे 'कु तिहोः' इति किमः कु आदेशे कु तस्' इति जाते 'कृद्धितसमासाश्च' इति प्रातिपदिकात् सुबुत्पत्तौ 'तद्धितश्चे'ति अव्ययत्वात् सुब्लुकि सस्य रुत्वे विसर्गे 'कुतः' इति।

प्राग्दि — दिकशब्देभ्यः' सूत्र से पूर्व सूत्र तक विहित प्रत्ययादि की विभक्ति-संज्ञा होती है।

किंसर्व — किम् तथा द्व्यादिभिन्न सर्वनाम और बहु शब्दों से ही 'दिक्शब्देभ्यः' सूत्र से पूर्व प्रत्ययों का विधान समझना चाहिए।

पञ्च — पञ्चम्यन्त किम्, सर्वनाम तथा बहु शब्दों से तसिल् प्रत्यय विकल्प से होता है।

कुति — किम् के स्थान में 'कु' आदेश होता है, तादि और त्रिभक्ति के परे।

अन् — एतद् के स्थान में 'अन्' आदेश होता है, प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे।

पर्य — सर्व और उभय के अर्थ में वर्तमान परि तथा अभि से तसिल् प्रत्यय होता है।

सप्त — सप्तम्यन्त किमादि शब्दों से त्रल् प्रत्यय विकल्प से होता है।

बहुत्र । **इदमो हः** ५।३।११। त्रलोपाऽवादः । इह । **किमोऽत्** ५।३।१२। वाग्रहण मपकृष्यते । सप्तम्यन्तात् किमोऽद्वा स्यात् । पक्षे त्रल् । **क्वाति** ७।२।१०५। किमः क्वादेशः स्यादति । क्व । कुत्र । **इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते** ५।३।१४। पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । एवं दीर्घायुः । देवानां प्रियः । आयुष्मान् । **सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा** ५।३।१५। सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् । **सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि** ५।३।४। दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले सदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किम् ? सर्वत्र देशे । **इदमोर्हिल्** ५।३।१६। सप्तम्यन्तात् । काले इत्येव । **एतेतौ रथोः** ५।३।४। इदम्शब्दस्य एत इत् इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे ।

सदा—सर्वस्मिन् काले इति सदा । 'सर्वैकान्य–' इति दाप्रत्यये सुब्लुकि 'सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि' इति विभाषया सर्वस्य सादेशे विभक्तिकार्ये 'सदा' इति । पक्षे 'सर्वदा' इत्यपि ।

इदमो—सप्तम्यन्त इदम् शब्द से 'ह' प्रत्यय विकल्प से होता है ।

किमो—सप्तम्यन्त किम् शब्द से अत् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

क्वाति—अत् प्रत्यय के परे किम् के स्थान 'क्व' आदेश होता है ।

इतरा—पञ्चमी, सप्तमी विभक्ति से इतर जो प्रथमादि विभक्ति, तदन्त से भी त्र, तसिल् आदि प्रत्यय होते हैं ।

सर्वे—कालार्थ में वर्तमान सप्तम्यन्त—सर्व, एक, अन्य आदि शब्दों से स्वार्थ में 'दा' प्रत्यय होता है ।

सर्व—दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे सर्व को 'स' आदेश विकल्प से होता है ।

इदमो—सप्तम्यन्त इदम् शब्द से काल अर्थ में हिल् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

अस्मिन्काले एतर्हि । काले किम्? इह देशे । **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** ५।३।२१। कर्हि, कदा । यर्हि, यदा । तर्हि, तदा । **एतदः** ५।३।५ एत इत एतौ स्तो रेफादौ च प्राग्दिशीये । एतस्मिन्काले एतर्हि । **प्रकारवचने थाल्** ५।३।२३। प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे । तेन प्रकारेण तथा । यथा । **इदमस्थमुः** ५।३।२४ थलोपाऽपवादः **(एतदोऽपि वाच्यः)** । अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम् । **किमश्च** ५।३।२५। केन प्रकारेण कथम् ।

इति प्राग्दिशीयाः ।

—: ० :—

कदा, कर्हि—कस्मिन् काले कर्हि, कदा । अत्र 'अनद्यतने–' इति र्हिलि सुब्लुकि किमः कादेशे अव्ययत्वात् सुब्लुकि 'कर्हि' इति पक्षे दाप्रत्यये 'कदा' इति चेति । एवं तस्मिन् काले तर्हि, तदा ।

इति प्राग्दिशीयाः ।

:— ० :—

अन—अनद्यतन कालवाची सप्तम्यन्त किम् सर्वनाम आदि शब्दों से र्हिल् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

एते—रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे इदम् के स्थान में एत और इत आदेश होते हैं ।

प्रकार—प्रकारवृत्ति किमादि शब्दों से स्वार्थ में थाल् प्रत्यय होता है ।

इदम—प्रकारवृत्ति इदम् शब्द से स्वार्थ में थमु प्रत्यय होता है ।

एत—प्रकारवृत्ति एतत् शब्द से भी स्वार्थ में थमु प्रत्यय होता है ।

किम्—प्रकारवृत्ति किम् शब्द से भी स्वार्थ में थमु प्रत्यय होता है ।

प्राग्दिशीयप्रकरण समाप्त ।

:— ० :—

अथ प्रागिवीयाः

अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५। अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः। अयमेषामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः। लघुतमः, लघिष्ठः। **तिङश्च** ५।३।५६। तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्याद् **तरप्तमपौ घः** १।१।२२। एतौ घसंज्ञौ स्तः। **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** ५।३।११ किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। किंतमाम्। प्राह्णेतमाम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** ५।३।५७। द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवादः। अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः, लघीयान्। उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः, पटीयांसः। **प्रशस्यस्य श्रः** ५।३।६०। अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः परतः। **प्रकृत्यैकाच्** ६।४।१६३। इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठः, श्रेयान्। **ज्य च** ५।३।६१। प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्याद्

श्रेष्ठः—अतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः। अत्र 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इति प्रशस्यशब्दाद् इष्ठनि 'प्रशस्यस्य श्रः' इति प्रशस्यस्य स्थाने श्रादेशे 'टेः' इति टिलोपे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'आद्गुणः' इति गुणे विभक्तिकार्ये 'श्रेष्ठः' इति।

श्रेयान्—अयमनयोः अतिशयेन प्रशस्यः श्रेयान्। अत्र 'द्विवचनविभज्यो-'

अति—अतिशय अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं। **तिङ**—अतिशय अर्थ में तिङन्त से तमप् होता है।

तरप्त—तरप् और तमप् प्रत्ययों की घसंज्ञा होती है।

किमे—किम्, एकारान्त, तिङन्त तथा अव्यय से विहित जो 'घ' संज्ञक (तरप्, तमप्) प्रत्यय, तदन्त शब्दों से आम् प्रत्यय होता है, यदि प्रत्ययान्त से द्रव्य का प्रकर्ष प्रतीत न होता हो।

द्विव—दो में एक के अतिशय उत्कर्ष विवक्षित होने पर अतिशय वाचक प्रातिपदिक तथा तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं। **प्रशस्य**—इष्ठन् तथा ईयसुन् प्रत्यय के परे प्रशस्य शब्द के स्थान में 'श्र' आदेश हो जाता है।

प्रकृ—भसंज्ञक एकाच् प्रकृतिवत् होता है—इष्ठन्, इमनिच् तथा ईयसुन् के परे। **ज्य**—इष्ठन् और ईयसुन् के परे प्रशस्य के स्थान में 'ज्य' होता है।

इयष्ठेसोः। ज्येष्ठः। **ज्यादादीयसः** ६।४।१६०। ज्यादुत्तरस्येयसुन्। आकारादेशः। आदेः परस्य। ज्यायान्। **बह्वोर्लोपो भू च बहोः** ६।४।१५८। बहोः परयोरिष्ठेमेयसोर्लोपः स्यात् बहोश्च भूरादेशः। भूमा। **इष्ठस्य यिट् च** ६।४।१५९। बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद् यिडागमश्च। भूयिष्ठः। **विन्मतोर्लुक्** ५।३।६५। विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः। अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। अतिशयेन त्वग्वान् त्वचिष्ठः, त्वचीयान्। **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** ५।३।६७। ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः। विद्वद्देश्यः। विद्वद्देशीयः। पचतिकल्पम्। **विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्** ५।३।६८। ईषदसमाप्ति-

---

इति ईयसुनि प्रशस्यस्य श्रादेशे टिलोपं प्रबाध्य 'प्रकृत्यैकाच्' इति प्रकृतिभावे गुणे 'श्रेयस्' इति जाते तद्धितान्तत्वात् सौ नुमि 'अत्वसन्तस्ये'ति दीर्घे सलोपे संयोगान्तलोपे च कृते तत्सिद्धिः।

ज्यायान्—द्वयोर्मध्ये अतिशयेन प्रशस्यः ज्यायान्। अत्र 'द्विवचनविभज्योपपदे–' इति ईयसुनि उनो लोपे 'ज्य च' इति प्रशस्यस्य स्थाने ज्यादेशे 'ज्यादादीयसः' इति अन्त्यस्यादादेशे प्राप्ते 'आदेः परस्य' इति इकारस्याकारादेशे सवर्णदीर्घे च कृते 'ज्यायस्' इति जाते तद्धितान्तत्वात् सौ नुमि उपधादीर्घे सकारद्वयस्य लोपे च कृते तत्सिद्धिः।

भूयिष्ठः—अतिशयेन बहुः भूयिष्ठः। अत्र 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इति

ज्यादा—'ज्य' से पर ईयस् के स्थान में आकारादेश होता है।

बहो—बहु शब्द से उत्तरवर्ती इष्ठन्, इमनिच् तथा इयसुन् का आदि लोप हो जाता है और बहु शब्द के स्थान में 'भू' आदेश भी हो जाता है।

इष्ठस्य—बहु शब्द से उत्तरवर्ती इष्ठन् को यिट् का आगम और बहु शब्द के स्थान में 'भू' आदेश भी हो जाता है।

विन्—अजादि प्रत्ययों के परे विन् तथा मतुप् प्रत्ययों को लुक् हो जाता है।

ईषद्—थोड़ी सी कम से सम्पन्न अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से कल्पप्, देश्य तथा देशीयर् प्रत्यय होते हैं।

विभा—थोड़ी-सी कमी से विशिष्ट अर्थ में वर्तमान सुबन्त से बहुच् प्रत्यय

विशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद् बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः। ईषदूनः पटुर्बहुपटुः। पटुकल्पः। सुपः किम्? यजतिकल्पम्। प्रागिवात्कः ५।३।७०। इवे प्रतिकृता-वित्यतः प्राक्काधिकारः। **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः** ५।३।७१। कापवादः तिङश्चेत्यनुवर्तते। **अज्ञाते** ५।३।७३। कस्यायमश्वोऽश्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वकैः। **कुत्सिते** ५।३।७४। कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः। **किंयत्तदो र्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** ५।३।९२। अनयोः कतरो वैष्णवः। यतरः। ततरः। **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** ५।३।९३। बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात्। जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे। कतमो भवतां कठः। ततमः। वाग्रहणमकजर्थम्। यकः। सकः।

इति प्रागिवीयाः।

—:०:—

इष्ठनि 'इष्ठस्य यिट् च' इति इष्ठनः इकारस्य लोपे यिटि च कृते यकारस्ये-त्संज्ञायां लोपे 'बहोर्लोपो भू च' इति बहोः स्थाने 'भू' इत्यादेशे विभक्तिकार्ये 'भूयिष्ठः' इति।

इति प्रागिवीयाः।

—:०:—

विकल्प से होता है, और वह प्रत्यय प्रकृति के पूर्व ही स्थान पाता है।

प्राग्—'इवे प्रतिकृतौ' सूत्र से पूर्व तक 'क' प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये। **अव्य**—अव्यय तथा सर्वनामों से प्रागिवीय अर्थों में अकच् प्रत्यय होता है और वह प्रत्यय प्रकृतिगत 'टि' से पूर्वस्थानापन्न होता है।

अज्ञा—सामान्यतया ज्ञात और विशेष रूप से अज्ञात अर्थ में सर्वनाम प्रातिपादिक तथा तिङन्त से यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

कुत्सि—कुत्सितार्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। **किं यत्**—दो में से एक का निर्धारण में किम्, यद् तथा तद् शब्दों से डतरच् प्रत्यय होता है।

वा बहू—बहुतों के बीच एक के निर्धारण के गम्यमान होने पर जाति परिप्रश्न में वर्तमान किम्, यद् तथा तद् से डतमच् प्रत्यय होता है।

प्राग्वीयप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ स्वार्थिकाः

इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६। कन् स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिरश्वकः । सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् । अश्वकः । **तत्प्रकृतवचने मयट्** ५।४।२१। प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम् । तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये-प्रकृतमन्नमन्नमयम् । द्वितीये तु—अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्वं । **प्रज्ञादिभ्यश्च** ५।४।३८। अण् स्यात् । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः । बान्धवः । **बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्**५।४।४२। बहूनि ददाति बहुशः(**आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्**) आदौ आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः । **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** ५।४।५०। **(अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्)** विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे । **अस्य च्वौ** ७।४।४२। अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ । वेर्लोपे च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम् । अकृष्णः कृष्णः संपद्यते तं करोति कृष्णीकरोति । ब्रह्मीभवति । ब्रह्मीस्यात् ।

बहुशः बहूनि ददाति बहुशः । अत्र 'बह्वल्पार्था–' इति शसि 'बहुशस्' इति जाते तद्धितान्तत्वात् सौ सुब्लुकि सस्य रुत्वे विसर्गे तत्सिद्धिः ।

इवे—सादृश्य विशिष्ट प्रतिमा के अर्थ में सादृश्य प्रतियोगिभूत पदार्थ वाचक शब्द से कन् प्रत्यय होता है ।

तत्प्र—प्रकृतोपाधिक (अत्यन्त प्रस्तुत) अर्थ में वर्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय होता है ।

प्रज्ञा - प्रज्ञादि से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

अल्पा—बहु तथा अल्पार्थक जो कारकाभिधायक शब्द उससे शस् प्रत्यय विकल्प से होता है । **आद्या**—आद्यादि से तसिल् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

कृभ्व—सम्पूर्वक पत् धातु से कर्ता के प्रतिपादक प्रातिपदिक से कृ, भू, एवं अस् धातुओं के योग में 'च्वि' प्रत्यय होता है, अभूततद्भाव अर्थ में ।

अस्य—च्वि प्रत्यय के परे अवर्ण को ईत्व होता है ।

विशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद् बहुच्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः। ईषदूनः पटुर्बहुपटुः। पटुकल्पः। सुपः किम् ? यजतिकल्पम्। **प्रागिवात्कः** ५।३।७०। इवे प्रतिकृता-वित्यतः प्राक्काधिकारः। **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः** ५।३।७१। कापवादः तिङश्चेत्यनुवर्तते। **अज्ञाते** ५।३।७३। कस्यायमश्वोऽश्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वकैः। **कुत्सिते** ५।३।७४। कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः। **कियत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** ५।३।९२। अनयोः कतरो वैष्णवः। यतरः। ततरः। **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** ५।३।९३। बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात्। जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे। कतमो भवतां कठः। ततमः। वाग्रहणमकजर्थम्। यकः। सकः।

इति प्रागिवीयाः।

—:०:—

इष्ठनि 'इष्ठस्य यिट् च' इति इष्ठनः इकारस्य लोपे यिटि च कृते यकारस्येत्संज्ञायां लोपे 'बहोर्लोपो भू च' इति बहोः स्थाने 'भू' इत्यादेशे विभक्तिकार्ये 'भूयिष्ठः' इति।

इति प्रागिवीयाः।

—:०:—

विकल्प से होता है, और वह प्रत्यय प्रकृति के पूर्व ही स्थान पाता है।

प्राग्—'इवे प्रतिकृतौ' सूत्र से पूर्व तक 'क' प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये। **अव्य**—अव्यय तथा सर्वनामों से प्रागिवीय अर्थों में अकच् प्रत्यय होता है और वह प्रत्यय प्रकृतिगत 'टि' से पूर्वस्थानापन्न होता है।

अज्ञा—सामान्यतया ज्ञात और विशेष रूप से अज्ञात अर्थ में सर्वनाम प्रातिपादिक तथा तिङन्त से यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

कुत्सि—कुत्सितार्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। **किं यत्**—दो में से एक का निर्धारण में किम्, यद् तथा तद् शब्दों से डतरच् प्रत्यय होता है।

वा बहू—बहुतों के बीच एक के निर्धारण के गम्यमान होने पर जाति तथा परिप्रश्न में वर्तमान किम्, यद् तथा तद् से डतमच् प्रत्यय होता है।

प्रागिवीयप्रकरण समाप्त।

—:०:—

अथ स्वार्थिकाः

इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६। कन् स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिरश्वकः । सर्व-प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् । अश्वकः । **तत्प्रकृतवचने मयट्** ५।४।२१। प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम् । तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये-प्रकृतमन्नमन्नमयम् । द्वितीये तु—अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व । **प्रज्ञादिभ्यश्च** ५।४।३८। अण् स्यात् । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः । बान्धवः । **बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्** ५।४।४२। बहूनि ददाति बहुशः (**आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्**) आदौ आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः । **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्य-कर्तरि च्विः** ५।४।५०। (**अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्**) विकारात्मतां प्राप्नु-वत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे । **अस्य च्वौ** ७।४।३२। अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ । वेर्लोपे च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम् । अकृष्णः कृष्णः संपद्यते तं करोति कृष्णीकरोति । ब्रह्मीभवति । ब्रह्मीस्यात् ।

बहुशः बहूनि ददाति बहुशः । अत्र 'बह्वल्पार्था-' इति शसि 'बहुशस्' इति जाते तद्धितान्तत्वात् सौ सुब्लुकि सस्य रुत्वे विसर्गे तत्सिद्धिः ।

इवे—सादृश्य विशिष्ट प्रतिमा के अर्थ में सादृश्य प्रतियोगिभूत पदार्थ वाचक शब्द से कन् प्रत्यय होता है ।

तत्प्र—प्रकृतोपाधिक (अत्यन्त प्रस्तुत) अर्थ में वर्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय होता है ।

प्रज्ञा - प्रज्ञादि से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

अल्पा—बहु तथा अल्पार्थक जो कारकाभिधायक शब्द उससे शस् प्रत्यय विकल्प से होता है । **आद्या**—आद्यादि से तसिल् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

कृभ्व—सम्पूर्वक पत् धातु से कर्ता के प्रतिपादक प्रातिपदिक से कृ, भू, एवं अस् धातुओं के योग में 'च्वि' प्रत्यय होता है, अभूततद्भाव अर्थ में ।

अस्य—च्वि प्रत्यय के परे अवर्ण को ईत्त्व होता है ।

(अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्)। दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः। **विभाषा साति कार्त्स्न्ये** ५।४।५२ च्विविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये। **सात्पदाद्योः** ८।३।१११। पदाद्योः सस्य षत्वं न स्यात्। दधि सिञ्चति। कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति। **च्वौ च** ७।४।६४ च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्। अग्नीभवति। **अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** ५।४।५७ द्व्यजेवावरं द्व्यजवरं न्यूनं न तु ततो न्यूनमनेकाजिति यावत् तादृशमर्द्धं यस्य तस्माड्डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे। (डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्)। इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् (नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्)। डाच् परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्। इति तकारपकारयोः पकारः। पटपटाकरोति। अव्यक्तानुकरणात्किम्? ईषत्करोति। द्व्यजवरार्धात्किम्? श्रत्करोति। अवरेति किम्? खरटखरटाकरोति। अनितौ किम्? पटितिकरोति। **इति स्वार्थिकाः। इति तद्धिताः।**

—: ० :—

पटपटाकरोति—पटत् पटत् करोतीति 'पटपटाकरोति'। अत्र 'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्' इति डाचः प्रागेव द्वित्वे 'अव्यक्तानुकरणात्–' इति डाचि अनुबन्धलोपे तस्य परमाम्रेडितम्' इति आम्रेडितसंज्ञायां 'नित्यमाम्रेडिते–' इति पररूपे भत्वात् टिलोपे तत्सिद्धिः। इति तद्धितप्रकरणम्।

—: ० :—

अव्य—च्वि प्रत्यय के परे अव्यय को ईत्व नहीं होता है।

विभा—'अभूततद्भावे' सूत्रोक्त परिस्थिति में यदि कृत्स्नता की प्रतीति चिकीर्षित हो तो साति प्रत्यय विकल्प से होता है। **सात्प**—पद के आदि सकार तथा साति प्रत्यय के सकार को षत्व नहीं होता है। **च्वौ च**—च्वि प्रत्यय के परे पूर्व को दीर्घ होता है।

अव्य—द्वित्व करने के बाद आधे भाग में कम से कम दो स्वर हों, वैसे अव्यक्त-शब्दानुकरणवृत्ति प्रातिपदिक से डाच् प्रत्यय होता है, यदि 'इति' शब्द परवर्ती न हो। **डाचि**—डाच् प्रत्यय की विवक्षा में ही डाच् से पूर्व द्वित्व ततः डाच् प्रत्यय होता है। **नित्य**—डाच् प्रत्यय परक आम्रेडित के पूर्व तथा पर वर्ण के स्थान में पररूप होता है। तद्धितप्रकरण समाप्त।

—: ० :—

अथ स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्

स्त्रियाम् ४।१।३। अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत् । **अजाद्यतष्टाप्** ४।१।४। आजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप्स्यात् । अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । मेधा । इत्यादि । गङ्गा । सर्वा । **उगितश्च** ४।१।६। उगिदन्तात्प्रातिपदिकास्त्रियां ङीप् स्यात् । भवती, भवन्ती । पचन्ती । **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** ४।१।१५। अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात् । कुरुचरी । नदट्-नदी । देवट्-देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी । ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । प्रास्थिकी । लावणिकी । यादृशी । इत्वरी । **नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्**)। स्त्रैणी । पौंस्नी । शाक्तिकी । आढ्यंकरणी । तरुणी । तलुनी । **यञश्च** ४।१।१६। यञन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । अकारलोपे कृते । **हलस्तद्धितस्य** ६।४।१५०। हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोपः स्यात् इति परे । गार्गी । **प्राचांष्क तद्धितः**

गार्गी—गर्गस्यापत्यं गार्गी । 'अत्र गर्गादिभ्यो यञ्' इति गर्गशब्दात् यञि अनुबन्धलोपे आदिवृद्धौ भत्वात् 'यस्येति च' इति अलोपे 'गार्ग्य' इति तस्मात्

स्त्रियां—'समर्थानां' सूत्र पर्यन्त 'स्त्रियाम्' सूत्र का अधिकार है ।

अजा—अजादि और अकारान्त वाच्य स्त्रीत्व द्योत्य रहने पर टाप् प्रत्यय होता है । **उगि**—उगिदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होता है ।

टिड्ढा—अनुपसर्जन टिदाद्यन्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग द्योत्य रहने पर ङिप् होता है । **नञ्**—अनुपसर्जन जो नञादि तदन्त जो अदन्त प्रातिपदिक उससे स्त्रीत्व द्योत्व रहने पर ङीप् होता है ।

यञश्च—यञन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व द्योतक रहने पर ङीप् होता है ।

हल—हल् से पर उपधाभूत तद्धित सम्बन्धी यकार का ईकार के परे लोप होता है ।

४।१।१७। यञन्तात् ष्फो वा स्यात् स च तद्धितः। **षिद्गौरादिभ्यश्च** ४।१।४१। षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात्। गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरी। अनडुही, अनड्वाही। आकृतिगणोऽयम्। **वयसि प्रथमे** ३।१।२१। प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी। **द्विगोः** ४।१।२१। अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् स्यात्। त्रिलोकी। अजादित्वात्-त्रिफला। त्र्यनीकासेना। **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** ४।१।३९। वर्णवाची योऽनुदात्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद्वा ङीप् तकारस्य नकारादेशश्च। एता, एनी। रोहिता, रोहिणी। **वोतो गुणवचनात्** ४।१।४४। उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात्। मृद्वी,

---

स्त्रीत्वविवक्षायां 'यञश्च' इति ङीपि 'यचि भम्' इति भत्वे अलोपे 'हलस्तद्धितस्य' इति यलोपे विभक्तिकार्ये 'गार्गी' इति।

कुमारी—प्रथमवयोवाचकात् कुमारशब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'वयसि प्रथमे' इति ङीपि अनुबन्धलोपे भत्वात् 'यस्येति च' इत्यलोपे प्रातिपदिकत्वात् सौ हल्ङ्यादिना सुलोपे 'कुमारी' इति। अप्रादुर्भूतयौवनेत्यर्थः।

एनी—श्वेतपर्यायवाचकात् एतशब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'वर्णादनुदात्तात्—' इति ङीपि तस्य नत्वे भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये 'एनी' इति। पक्षे अदन्तत्वाट्टापि 'एता' इति।

प्राचां—यञन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व द्योत्य रहने पर विकल्प से 'ष्फ' प्रत्यय होता है और वह 'ष्फ' तद्धित संज्ञक होता है।

षिद्-षिदन्त और गौरादि गणपठित प्रातिपदिक से स्त्रीत्व द्योत्य रहने पर ङीष् होता है।

वयसि—प्रथम वयोवाची अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व द्योत्य रहने पर ङीष् होता है।

द्विगोः—अदन्त द्विगु से स्त्रीलिंग में ङीप् होता है।

वर्णा—वर्णवाची जो अनुदात्तान्त तदन्त जो अनुपसर्जन प्रातिपदिक उससे स्त्रीलिंग में ङीप् और साथ ही 'त' को 'न' आदेश भी विकल्प से हो जाता है।

वोतो—उदन्त गुणवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में विकल्प से ङीष् होता है।

मृदुः । **बह्वादिभ्यश्च** ४।१।४२। एभ्यो वा ङीष् स्यात् । बह्वी, बहुः । (**कृदिकारादक्तिनः**) । रात्रिः, रात्री । (**सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके**) । शकटी, शकटिः । **पुंयोगादाख्यायाम्** ४।१।४८। या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् स्यात् । गोपस्य स्त्री गोपी । (**पालकान्तान्न**) गोपालिका । अश्वपालिका । **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** ७।३।४४। प्रत्ययस्थात्ककारात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपः परो न चेत् । सर्विका । कारिका । अतः किम् ? नौका । प्रत्ययस्थात्किम् ? शक्नोतीति शका । असुपः किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी । (**सूर्याद्देवतायां चाप् वाच्यः**) सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवतायां किम् ? (**सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च**) यलोपः ।

सूर्या—सूर्यस्य स्त्री देवता 'सूर्या' । अत्र स्त्रीत्वविवक्षायां 'सूर्याद्देवतायां चाप् वाच्यः' इति चापि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'सूर्या' इति । सूर्यस्य स्त्री मानुषीति विग्रहे तु 'पुंयोगात्–' इति ङीषि भत्वात् अलोपे 'सूर्याऽगस्त्ययोश्छे च ङ्यां च' इति यलोपे विभक्तिकार्ये 'सूरी' (कुन्ती) इति ।

बह्वा—बह्वादि गणपठित शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् विकल्प से होता है ।

कृदि—क्तिन् से भिन्न कृत्संज्ञक इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में विकल्प से ङीष् होता है ।

सर्व—किन्ही आचार्यों के मतों से-क्तिन्नर्थ भिन्न कृत-अकृत् सभी इकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् होता है— ऐसा समझना चाहिए ।

पुंयो—जो पुंवाचक शब्द पुंल्लिग से स्त्रीलिंग में प्रवृत्त होता है उससे ङीष् होता है ।

पाल— पालकान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ङीष् नहीं होता है ।

प्रत्य—प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार को 'आप्' के परे इत्व हो जाता है यदि वह 'आप्' सुप् से पर नहीं हो ।

सूर्या—देवता अर्थ में सूर्य शब्द से पुंयोग में चाप् प्रत्यय होता है ।

सूर्याऽग—छ तथा ङी प्रत्यय के परे सूर्य तथा अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो जाता है ।

सूरी। कुन्ती। मानुषीयम्। **इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवन-मातुलाचार्याणामानुक्** ४।१।४९। एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च। इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी। (**हिमारण्ययोर्महत्त्वे**)। महद्धिमं हिमानी। महदरण्यमरण्यानी। (**यवाद्दोषे**)। दुष्टो यवो यवानी। (**यवनाल्लिप्याम्**)। यवनानां लिपिर्यवनानी। **मातुलोपाध्याययोरानुग्वा**) मातुलानी, मातुली। उपाध्यायानी, उपाध्यायी। (**आचार्यादणत्वं च**)। आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। (**अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे**) अर्याणी, अर्या। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। **क्रीतात् करणपूर्वात्**

इन्द्राणी—इन्द्रस्य स्त्री 'इन्द्राणी' अत्र 'इन्द्रवरुण—' इति ङीषि आनुगागमे च कृते उकि गते सवर्णदीर्घे नस्य णत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

क्षत्रियाणी—क्षत्रियात् क्षत्रियायां स्वभार्यायामुत्पन्ना स्त्री 'क्षत्रियाणी' अत्र स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे' इति ङीषि आनुकि च कृते अनुबन्धलोपे भत्वादल्लोपे णत्वे विभक्त्यादिकार्ये तत्सिद्धिः। पक्षे अदन्तत्वात् टापि। 'क्षत्रिया' इति। पुंयोगे तु—क्षत्रियस्य स्त्री 'क्षत्रियी' इति बोध्यम्।

इन्द्र—इन्द्रादि शब्दों से स्त्रीलिंग में आनुक् का आगम तथा साथ ही ङीष् भी होता है।

हिमा—हिम और अरण्य शब्दों से महत्त्व अर्थ में ङीष् और आनुक् का आगम होता है। **यवा**—यव शब्द से दोष अर्थ में ही ङीष् और आनुक् होते हैं।

यवना—यवन् शब्द से लिपि अर्थ में ही ङीष् और आनुक् होते हैं।

मातु—मातुल और उपाध्याय शब्दों से स्त्रीलिंग में आनुक् विकल्प से होता है।

आचा—आचार्य शब्द से पर आनुक् सम्बन्धी नकार को णत्व नहीं होता है।

अर्य—अर्य और क्षत्रिय शब्दों से ङीष् और आनुक् स्वार्थ में विकल्प से होता है। **क्रीतात्**—करण पूर्वक अदन्त क्रीतान्त प्रातिपादिक से ङीष् होता है।

४।१।५०। क्रीतान्ताददन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात् । वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न धनक्रिता । **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** ४।१।५४। असंयोगोपधमुपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्ताददन्तात् ङीप् वा स्यात् । केशानतिक्रान्ता–अतिकेशी अतिकेशा । चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । असंयोगोपधात् किम् ? सुगुल्फा । उपसर्जनात्किम् ? सुशिखा । **न क्रोडादिबह्वचः** ४।१।५६।क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष् । कल्याणक्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । **नखमुखात्संज्ञायाम्** ४।१।५८।ङीष् न स्यात् । पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८।४।३। पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायां न तु गकारव्यवधाने । शूर्पणखा । गौरमुखा । संज्ञायां किम् ? ताम्रमुखी-कन्या । **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** ४।१।६३ जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात् । नटी । वृषली । कठी । बह्वृची । जातेः किम् ? मुण्डा । अस्त्रीविषयात्किम् ? बलाका । अयोपधात् किम् ?

चन्द्रमुखी—चन्द्र इव सुखं यस्याः सा चन्द्रमुखी । अत्र स्त्रीत्वविवक्षायां 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' इति ङीषि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये 'चन्द्रमुखी' इति । पक्षे अदन्तत्वाट्टापि 'चन्द्रमुखा' इति ।

स्वाङ्गा—स्वांग जो अनुपसर्जन तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्वविवक्षा में विकल्प से ङीष् होता है ।

न क्रो—क्रोड आदि शब्दान्त तथा बह्वजन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् नहीं होता है ।

नख—नख तथा मुख शब्दान्त प्रातिपदिक से संज्ञा में स्त्रीत्वविवक्षा में भी ङीष् नहीं होता है ।

पूर्व—पूर्वपदस्थ निमित्त से पर नकार को संज्ञा में णकार होता है–पर णकार व्यवधान में नहीं होता ।

जाते—नित्य स्त्रीलिंग से भिन्न जातिवाची अयोपध से स्त्रीलिंग में ङीष् होता है ।

क्षत्रिया । (योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः) । हयी । गवयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्येति यलोपः । मानुषी (मत्स्यस्य ङ्याम्) । यलोपः । मत्सी । **इतो मनुष्यजातेः** ४।१।६५। ङीष् स्यात् । दाक्षी । **ऊङुतः** ४।१।६६। उदन्तादयोपधान्मनुष्य जातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात् । कुरूः । अयोपधात्किम् ? अध्वर्युर्ब्राह्मणी । **पङ्गोश्च** ४।१।६८। पङ्गूः । **श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च**) । श्वश्रूः । **ऊरूत्तरपदादौपम्ये** ४।१।६९ उपमानवाचिपूर्वपदमूरूत्तरपद यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात् । करभोरूः । **संहितशफलक्षणवामादेश्च** ४।१।७०। अनौपम्यार्थं सूत्रम् । संहितोरूः । शफोरूः । लक्षणोरूः । वामोरूः । **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** ४।१ ७३। शार्ङ्गरवादेरञो

मानुषी—मनुष्यशब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'योपधप्रतिषेधे—' इति ङीषि भत्वादलोपे 'हलस्तद्धितस्य च' इति यलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

श्वश्रूः—श्वशुरस्य स्त्री इत्यर्थे पुंयोगलक्षणे ङीषि प्राप्ते तमपवाद्य 'श्वशूरस्ये'ति ऊङि शकारोत्तरवर्त्युकारस्य अकारस्य च लोपे विभक्तिकार्ये 'श्वश्रूः' इति ।

योप—योपध के प्रतिषेध में हयादि का ङीष् प्रतिषेध नहीं होता है ।

मत्स्य—मत्स्यशब्दावयव यकार का ङी के परे लोप होता है ।

इतो—मनुष्यजातिवाची इकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग में ङीष् होता है ।

ऊङुतः—मनुष्य जातिवाची ऊकारान्त अयोपध से स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय होता है । **पङ्गो**—पङ्गुशब्द से स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय होता है ।

श्वशु—स्त्रीलिंग में श्वशुर शब्द से उकार और अकार का लोप तथा चकारात् ऊङ् प्रत्यय होता है ।

ऊरू—उपमा के समान होने पर ऊरूत्तर पदक प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय होता है ।

संहित—संहित, शफ, लक्षण तथा वाम आदि पूर्वपद वाले ऊरूत्तरपदक प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय होता है ।

शार्ङ्ग—शार्ङ्गरव आदि अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा से ङीन् प्रत्यय होता है ।

योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । शार्ङ्गरवी । वेदी । ब्राह्मणी । (नृनरयोर्वृद्धिश्च) नारी । यूनस्तिः ४।१।७७। युवन्शब्दात् स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात् । युवतिः । इति स्त्रीप्रत्ययाः ।

शास्त्रान्तरेऽप्रविष्टानां बालानां चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

इति श्रीवरदराजकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता ।

—: ० :—

युवतिः—युवन्-शब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति सूत्रं प्रबाध्य 'यूनस्तिः' इति तिप्रत्यये 'स्वादिषु–' इति पदत्वात् नलोपे विभक्तिकार्ये 'युवतिः' इति ।

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ।

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः

—: ० :—

नृनर—नृ तथा नर शब्दों से ङीन् तथा आदि अच् को वृद्धि का विधान समझना चाहिए ।

यूनस्तिः—युवन् शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में तद्धित संज्ञक 'ति' प्रत्यय होता है ।

साहित्य, न्याय, वेदान्तादि शास्त्रान्तर में प्रवेश करने वाले पिपठिषु बालकों का उपकार करने वाली वरदराजाचार्य विरचित यह लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्त हुई ॥ १ ॥

लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्त ।

—: ० :—

सूत्राऽनुक्रमणिका